ॐ

परमात्मने नमः

श्री सीमन्धर–कुन्दकुन्द–कहान दिगम्बर जैन साहित्य स्मृति संचय

ध्येयपूर्वक ज्ञेय

श्री समयसार परमागम की गाथा ३२० की
जयसेनाचार्यकृत तात्पर्यवृत्ति टीका तथा
अमृतचन्द्राचार्य रचित समयसार कलश २७१ पर
परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
स्वानुभव मुद्रित प्रवचन

: गुजराती संकलनकार :
डॉ. देवेन्द्रभाई एम. दोशी
सुरेन्द्रनगर (गुज.)

: हिन्दी अनुवाद व सम्पादन :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला–भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई–400 056
फोन : (022) 26130820

: सह–प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

प्रथम संस्करण : 1000 प्रतियाँ

ISBN No. :

न्यौछावर राशि : 20 रुपये मात्र

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट,**
   सोनगढ़ (सौराष्ट्र) – 364250, फोन : 02846-244334
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
3. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.)
4. **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट,**
   ए-4, बापूनगर, जयपुर, राजस्थान-302015, फोन : (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
6. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
   श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
7. **श्री सीमन्धर-कुन्दकुन्द-कहान आध्यात्मिक ट्रस्ट**
   योगी निकेतन प्लाट, 'स्वरुचि' सवाणी होलनी शेरीमां, निर्मला कोन्वेन्ट रोड
   राजकोट-360007 फोन : (0281) 2477728, मो. 09374100508

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक :

जिनवाणी का रहस्य

अहो उपकार जिनवर का कुन्द का ध्वनि दिव्य का
जिन-कुन्द ध्वनिदाता अहो, श्री गुरु कहान का॥

भरतक्षेत्र का सूर्य, सिद्धान्तों में शिरोमणि, अद्वितीय जगत चक्षु श्री समयसारजी परमागम शास्त्र की 320 वीं गाथा है, इस गाथा को स्वर्ण के पत्र पर अक्षरों को हीरे से जड़ाकर... द्रव्यश्रुत प्राभृत का जितना मूल्यांकन करें, उतना कम ही है।

जीवन्त विहरमान स्वामीश्री सीमन्धर प्रभु की दिव्य देशना को ज्ञान मंजूषा में अभिसिंचित करके... आत्म सुधारस प्रवाहित करनेवाले श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव हुए, आपश्री ने 320 गाथा के मूल में ही ब्रह्माण्ड के भावों को संचित किया। एक हरिगीत में... सम्पूर्ण ही माल भर दिया। गाथा में रहे हुए सागरसम गम्भीर... गहन भावों के रहस्य का उद्घाटन श्री जयसेनाचार्यदेव ने तात्पर्यवृत्ति टीका में किया। आचार्यवर श्री कुन्दकुन्ददेव के हृदय में प्रविष्ट होकर गाथा में भरे हुए अर्थगाम्भीर्य को सरल भाषा में चरम सीमा तक मूर्तिमान किया। निरपेक्ष शुद्धात्मा की मुक्ता को निरपेक्षरूप से दिग्दर्शन करके... परमार्थ जीव का वास्तविक स्वरूप दर्शाया। यह पारमेश्वरी विद्यारूप भगवान स्वरूप की भेंट भव्यात्माओं को समर्पित करके भरतक्षेत्र को धर्माढ्य बनाया।

श्री तात्पर्यवृत्ति टीका में रहे हुए उच्चतम निहित भावों को अध्यात्मयोगी पूज्य श्री सद्गुरुदेव कानजीस्वामी ने निज अन्तर्लक्ष्यी स्वानुभव के बल से प्रकाशित किया। शुद्धात्म सरिता का विशुद्ध प्रवाह कलकल करता हुआ प्रवाहित होने लगा और आसन्न भव्यजीवों के अन्तराचल में आत्मस्थ होकर केलि करने लगा। चैतन्यरस से सराबोर वाणी धारा जाननहार के मधुर निनाद को सर्जित.. वाचक-वाच्य की एक्यता के पवित्र संगम को दर्शाती हुई अविच्छिन्न प्रवाहित होने लगी।

गाथा 320 अर्थात् निरपेक्ष ध्येय तत्त्व को दर्शानेवाली गाथा। अनादि से अप्रतिबुद्ध

जीवों को कर्ताबुद्धि भी दो प्रकार से वर्तती है। कर्ताबुद्धि का शीघ्र नाश हो, उसका सफल ऑपरेशन इन प्रवचनों में किया है। अकर्ता-ज्ञाता आत्मा को करनेवाला मानना, वह प्रथम भूल है। पर्याय सत्-अहेतुक-निरपेक्ष होने पर भी उसे मात्र सापेक्ष ही मानना, वह दूसरी भूल है। द्रव्यस्वभाव को, द्रव्यस्वभाव से जानने पर तो द्रव्यदृष्टि होती ही है, परन्तु द्रव्य को पर्याय से निरपेक्ष जानने से द्रव्यदृष्टि होती है। पर्याय को द्रव्य से निरपेक्ष जानने पर, उसके फल में, अकर्ता-ज्ञाताद्रव्य का श्रद्धान होता है और पर्यायदृष्टि मिटती है। ये दोनों प्रकार के दोष एक ही समय में अभावरूप होते हैं।

आचार्यदेव उपशम आदि चारों भावों को सावरण, कर्मकृत, सापेक्ष, औपाधिक कहते हैं। उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव आदि भावान्तरों को आत्मा अगोचर है... ऐसा कहकर परिणाम की महिमा पर वज्रपात किया है। त्रिकाली ध्रुव परमात्मा के स्वरूप को उद्‌घाटित करके, परिणति के झुकाव को स्वसन्मुख अर्थात् स्वमुखापेक्षी कराया है। ध्रुवभाव का आकर्षण, विश्वास दृढ़ीभूत होने पर मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी का अनुभाग सहज पंगु होकर क्षीणता को प्राप्त होता है।

इस टीका की विशेषता ऐसी है कि जैसे-जैसे आगे बढ़ते जायें, वैसे-वैसे ध्येय का स्वरूप चरमोत्कर्षता को प्राप्त होता जाता है। टीका का अन्तिम चरण अध्यात्म शिखर की उत्तुंगता पर आरोहित होकर सर्वोपरिता को प्राप्त है।

जगत को अनुभव से सिद्ध ऐसे चक्षु के सरल दृष्टान्त द्वारा ज्ञान का स्वरूप समझाया है। जिसे चक्षु का स्वभाव 'केवल देखना' समझ में आता है, उसे ज्ञान का स्वरूप 'मात्र जानना' सहजरूप से दृष्टिगोचर होता है।

जैसे नेत्र पदार्थों में मिले बिना, पदार्थों में तन्मय हुए बिना, पदार्थ से अत्यन्त भिन्न रहकर.. दूर रहकर मात्र देखता ही है; इसी प्रकार ज्ञान भी बन्ध-मोक्ष की रचना से दूर वर्तता हुआ 'मात्र जानता ही है' नेत्र के स्वरूप में कथंचित् कर्तापना और कथंचित् ज्ञातापना नहीं है; इसी प्रकार ज्ञान के स्वभाव में सर्व प्रकार से और सर्वथा जानना ही है। ज्ञान को निश्चय से, व्यवहार से और प्रमाण से किसी भी अपेक्षा से देखें तो जानना ही है, उसमें कहीं भी करना समाहित नहीं होता। ज्ञान में सर्व अपेक्षा को निकालकर नितान्त परिशुद्ध निरपेक्ष ज्ञानस्वभाव में कहीं भी करना और भोगना स्थान प्राप्त नहीं होता। ऐसा ज्ञानस्वभाव होने पर भी जिसे कथंचित् करना-भोगना और कथंचित् जानना - ऐसा दिखाई देता है, उसे देखने का स्वभाव

उसकी दृष्टि में से तिरोभूत होता है। कर्तृत्व-भोक्तृत्व के अभिप्राय में लेशमात्र 'जानना' रहता ही नहीं।

आत्मा का मूलस्वभाव, असाधारणस्वभाव ज्ञान है। ज्ञानस्वभावी आत्मा में राग का कर्तृत्व -भोक्तृत्व नहीं है; इसी प्रकार वीतरागभाव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व नहीं है। ज्ञान का स्वभाव मात्र जानना.. जानना.. जानना ही है। जाननस्वभाव के गर्भ में मात्र जानना ही है। 'मात्र जानना' वह सम्यक् एकान्तरूप है। 'मात्र जानता ही है' उसमें सकल कर्तृत्व-भोक्तृत्वपने की बुद्धि का अभाव है। मात्र जानता ही है, वह स्वरूपग्राही ज्ञान है, इसलिए स्वस्वरूप के साथ अभेद एकत्वपूर्वक परिणमित होता है। 'मात्र जानता है' उसमें संवर, निर्जरा, और मोक्ष के परिणाम के प्रति उदासीनता.. तटस्थता है। 'मात्र जानता ही है' उसमें ज्ञानस्वभाव की मध्यस्थता और विशालता भी सिद्ध होती है। 'मात्र जानता ही है', उसमें साधकदशा का निर्विकारी परिणमन घोषित होता है। मात्र जानना है, वह जाननेरूप में समझ में आ जाये तो निहाल हो जाये - ऐसा वस्तु का स्वरूप है।

आचार्यवर मूल गाथा में कहते हैं कि बन्ध-मोक्ष को जानता है, अर्थात् मैं बन्ध-मोक्ष से भिन्न हूँ - ऐसा जानता है। जिसने आत्मा को बन्ध से भिन्न जाना, उसने मोक्ष से भी भिन्न जाना। भजन में आता है '**बन्ध-मुक्ति से रहित ज्ञानमय इक ज्ञायक दिखा सार**' - साधक जीव की सविकल्पदशा की लक्ष्मण रेखा बाँधी है कि संवर-निर्जरा आदि परिणाम होते हैं, उन्हें भिन्न रहकर 'मात्र जानता ही' है। अर्थात् श्रुतज्ञान परिणत जीव भी.. जाननेवाले को, जाननेवाले की क्रिया का करनेवाला नहीं क्योंकि जानन क्रिया को मैं करता हूँ - ऐसी कर्ताबुद्धि का तो नाश हुआ है। शुद्ध ज्ञान परिणत जीव को अकर्ता-ज्ञाता की दृष्टि वर्तती होने से.. परिणामी द्रव्य भी.. विशेष अपेक्षा से साक्षात् अकर्ता-ज्ञाता है। '**जाने हि कर्मोदय निर्जरा बंध त्यों हि मोक्ष को..**' कुन्दकुन्ददेव के अन्तसः में रहे हुए सूक्ष्म भावों को साधक ही समझ सकता है और उन्हें सांगोपांग खोल सकता है अर्थात् साधक ही साधक को समझ सकता है।

जिनेश्वरदेव के निर्मल केवलज्ञान में उन्होंने जीव का परमार्थस्वरूप जैसा देखा है, वैसा उनकी वाणी में आया है। आत्मा अणकृत-अकर्ता.. अकारण होने से वह न किसी से किया गया है। आत्मा न किसी से जन्य है, न किसी का जनक है। हाँ, उत्पाद जन्मता है, व्यय मरता है.. ध्रुव शाश्वत रहता है। जो मुक्त होता है, उसे हम जीव नहीं कहते, उसे तो हम

मोक्षतत्त्व कहते हैं। मोक्ष का लक्षण क्षायिकभाव है, जबकि जीव का लक्षण परमपारिणामिकभाव है। इस प्रकार लक्षण भेद से अर्थात् भाव से भिन्नता है, वस्तुगत भिन्नता है। मुक्तस्वरूप जीव को ऐसी क्या आवश्यकता पड़ी कि वह मोक्ष को करे? वह कर नहीं सकता, ऐसा नहीं परन्तु मुक्तस्वरूप को मुक्ति की आवश्यकता ही नहीं। ऐसी मुक्तस्वभाव की अतिशयता, अबद्ध चैतन्य की चमत्कृति दिखाई दे, उसे बन्धन का भय नहीं और मुक्ति की चिन्ता नहीं।

श्री नियमसार में आता है कि आत्मा में क्षायिकभाव के स्थान नहीं हैं। जहाँ से क्षायिकभाव प्रगट होता है, वे स्थान अलग हैं और मेरी ठोस भूमि अलग है। मेरे कूटस्थ विज्ञानघन धरातल में उपजना-विनशना कुछ होता ही नहीं। उत्पाद-व्यय की चलाचलता मेरे शाश्वत् क्षेत्र में नहीं। परिणामों की हलचल, कोलाहलता शान्त.. अकृत जाननहार में नहीं। परिणामों का लेप, निर्लेप शुद्धभाव में नहीं। मैं स्वभाव से ही अस्खलित अपोहक हूँ।

भगवान आत्मा सदा अकार्यकारणत्व स्वभाव से विराजमान है... इसलिए वह सदा कर्मों से उपरम स्वरूप है। बन्ध और बन्धमार्ग, मोक्ष और मोक्षमार्ग के कारणरूप से कभी परिणमता ही नहीं।

प्रश्न – पर्याय प्रगट होती है और उसे आत्मा नहीं करे? यह क्या बात है? आचार्यदेव न्याय संयुक्त उत्तर देते हैं 'तदरूपो न भवति' आत्मा परिणामरूप होता ही नहीं, उनके कारणरूप कभी परिणमता नहीं। यह अकाट्य न्याय सुनते ही पात्र जीव की कर्ताबुद्धि और कारणपने की बुद्धि छूट जाती है।

प्रश्न – आत्मा को अकर्ता जाननहार कहा तो वह मोक्ष की पर्याय का अकर्ता है, वैसा जाननहार है? श्रीगुरु निष्कारण करुणा से उत्तर देते हैं – नहीं, मोक्ष की पर्याय को न करे वैसा और उतना ही अकर्ता.. जाननहार नहीं बताना। – 'स्वभाव से अकर्ता है, स्वभाव से ही अकारक है'।

ध्रुव जाननहार को जाननहाररूप से जानती ज्ञानपर्याय सत् निरपेक्ष है। अखण्ड जाननहार को जाननहाररूप से जानती पर्याय की योग्यता प्रमाण बन्ध-मोक्ष आदि ज्ञेयों को जानती है। निरपेक्ष ज्ञानपर्याय को बन्ध-मोक्ष को जानने के लिये बन्ध-मोक्ष की अपेक्षा नहीं है। वह ज्ञानपर्याय तो अकृत ऐसे कृतकृत्य स्वभाव में मैंपना करके स्थायीपने को प्राप्त हो चुकी है। जाननहार.. जाननहार से अभेदभाव से परिणमकर कहती है कि-मैं तो पूर्ण तृप्त

जाननहार हूँ, मैं तो मुक्त जाननहार हूँ, निरपेक्ष जाननहार में संवृत होती परिणति ऐसा भाती है कि मैं निरपेक्ष जाननहार हूँ, निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिकभाव की ध्रुवता को स्पर्श कर कहती है – मैं तो निरालम्बी निष्क्रिय हूँ।

इस प्रकार आत्मा आत्मज्ञान का करनेवाला तो नहीं ही परन्तु... आत्मज्ञान में आत्मज्ञान भी ज्ञात नहीं होता। आत्मज्ञान में तो मैं पूर्ण जाननहार हूँ... ऐसा ज्ञात होता है। आत्मदर्शन कहो, या जैनदर्शन कहो, वह वास्तव में अकर्तावाद है। **आत्मा अकर्ता है, यह जैनदर्शन की पराकाष्ठा है। आत्मा अकारण है, यह अनुभव ज्ञान की पराकाष्ठा है।**

ध्येयपूर्वक ज्ञेय पुस्तक में पूज्य गुरुदेवश्री ने निरपेक्ष ध्येय का स्वरूप जिस प्रकार से प्रतिपादित किया है... उससे निःशंक कहा जा सकता है कि सर्व शास्त्रों के कहने का सार अर्पित किया है। कोई द्रव्यलिंगी ग्यारह अंग का पाठी हो या कोई महा विद्वान हो या कोई शास्त्र का जाननेवाला मनीषी हो... परन्तु अज्ञानी कहीं न कहीं त्रिकाली स्वभाव में पर्याय के अस्तित्व को शामिल करके दृष्टि का विषय मानता-मनाता आया है—

1. किसी ने निर्मल पर्याय सहित के आत्मा को दृष्टि का विषय कहा।

2. किसी ने कर्मोपाधि निरपेक्ष सामान्य उपयोग लक्षण जो सक्रिय है, उसे दृष्टि के विषय में सम्मिलित करके उसे ध्येयभूत परमात्मा कहा।

3. किसी ने स्वकाल में... द्रव्य की नित्यता में उत्पाद-व्यय को तो भिन्न रखा परन्तु पर्याय के ध्रौव्य अंश को अंशी ध्रुव परमात्मा में अभेद करके... उसे दृष्टि का विषय प्रतिपादित किया।

4. किसी ने समयसार गाथा २ के आधार से समय नामक पदार्थ, जिसमें जानना और परिणमना होता है, उसमें सदृश एकरूप जो जानना.. जानना.. जानना.. सामान्य धाराप्रवाहरूप होता है, उसे कूटस्थ आत्मा में स्थापित कर उसे दृष्टि का विषय बताया।

हुण्डावसर्पिणी काल में पूज्य गुरुदेवश्री की अनुपस्थिति में दृष्टि का विषय विवादग्रस्त हो गया है। आत्मार्थी जीव दुविधा में पड़े हैं, इसलिए इस पुस्तक में 320 गाथा पर पूज्य गुरुदेवश्री के जो प्रवचन हैं, वे शिविर के समय हुए प्रवचन हैं, उनमें उस समय के समस्त पण्डितों की भी उपस्थिति थी और पूज्य गुरुदेवश्री के 320 गाथा के दिनांक 20-8-70 के बारहवें प्रवचन में भी उद्गार प्रस्फुटित हो गये हैं कि **ऐसे प्रवचन तथा ऐसा स्पष्टीकरण**

पूर्व में कभी हुआ ही नहीं। ऐसे इन प्रवचनों में ध्येय का स्वरूप.. स्पष्ट.. मिलावटरहित पराकाष्ठा से प्रतिपादित हुआ है।

विदित हो कि ये प्रवचन समसार के 16 वीं बार के प्रवचनों में प्रवचन क्रमांक 450-A से 450-J तक डीवीडी में उपलब्ध हैं।

320 वीं गाथा और 271 वें कलश की सन्धि है। 329 गाथा के मूल में कहा कि बन्ध-मोक्ष को जानता है। बन्ध-मोक्ष को करता नहीं, उसके निषेध के लिये कहा कि बन्ध-मोक्ष को जानता है, इतना व्यवहार लिया। जबकि 271 कलश में राजमलजी साहब ने उस व्यवहार का भी निषेध किया। मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान - ऐसे तीन भेद का निषेध किया। मैं तो चेतना सर्वस्व ऐसा अभेद स्वज्ञेय हूँ। ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय पर तो नहीं, परन्तु ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय, ज्ञानपर्याय भी नहीं। जो ज्ञानपर्याय ध्रुव परमात्मा में मैंपना करती हुई परिणमति है, उस समय जानने में पूरा परिणामी आत्मा ज्ञान का ज्ञेय होता है। परिणामी स्वज्ञेय में ध्येय के या ज्ञेय के भेद समाहित नहीं होते। परिणामी अभेद स्वज्ञेय में निर्मल पर्याय का भेद दिखायी नहीं देता। ज्ञानस्वरूप तो ज्ञानस्वरूप है।

श्रद्धा का विषय सम्पूर्ण रूप से जीवों को निर्धारण होने पर भी.. सम्यग्दर्शन क्यों नहीं होता? ज्ञाताबुद्धि की भूल को इस 271 कलश में दर्शाया है। ज्ञानपर्याय का विषय भी उपादेयभूत परमात्मा बनता है, तब ज्ञानपर्याय का निश्चय प्रगट होता है। जब श्रद्धा की पर्याय का निश्चय और ज्ञानपर्याय का निश्चय दोनों एकसाथ प्रगट होते हैं, तब वहाँ आत्मानुभव दशा होती है।

द्रव्यलिंगी मुनि-ग्यारह अंग का पाठी कहाँ थाप खाता है? उसकी सूक्ष्म भूल क्या है? इत्यादि प्रश्नों का निराकरण करनेवाले और स्वज्ञेय की सूक्ष्मतमरूप से समालोचना करनेवाले इन छह प्रवचनों को ज्ञेय के विभाव में सुरक्षित किये हैं।

जयसेनाचार्य की तात्पर्यवृत्ति की 320 गाथा पर 1970 के वर्ष में हुए बारह प्रवचनों को ध्येय के विभाग में समाविष्ट किया है। इन प्रवचनों का सूक्ष्म अध्ययन होने पर उनमें रहे हुए विराट भाव प्रगट होने से प्रज्ञा सूक्ष्म होने पर निरपेक्ष ध्येय का स्वरूप विशेष स्पष्ट हुआ। ये प्रवचन सन् 1994 के अन्त में सर्वप्रथम भाईश्री लालचन्दभाई के हाथ में आये.. और सुनने के साथ ही उन्हें भाव आया कि ये प्रवचन पुस्तकाकाररूप से प्रकाशित करनेयोग्य है। 1995 में वे प्रवचन राजकोट मण्डल द्वारा पुस्तकाकाररूप हुए।

इन प्रवचनों का गुजराती संकलन डॉ. देवेन्द्रभाई दोशी, सुरेन्द्रनगर द्वारा किया गया है। जिसका हिन्दी रूपान्तर एवं सी.डी. के साथ मिलान करके, मूल अंश को बोल्ड टाइप में रखते हुए यह संस्करण श्री देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां-राज० ने तैयार किया है। हम उन सभी को धन्यवाद ज्ञापित करते हैं।

प्रस्तुत प्रवचन—ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा ग्रन्थ के सुन्दर मुद्रण कार्य के लिए .... के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

ध्येयपूर्वक ज्ञेय पुस्तक में रहे हुए ध्येय-ज्ञेय के भावों को समझकर.. धारण करके.. निर्धारण करके यथार्थ निर्णय करके और ध्येयपूर्वक ज्ञेय स्वानुभव के निर्विकल्प स्वरूप को प्राप्त करो। ऐसी मंगल भावनापूर्वक...

निवेदक

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,

मुम्बई

एवं

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृतने पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह–समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन–प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अतः भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल **'श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर'** का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश–टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश–विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर–घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल–वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर,

पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त

पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

ध्येयपूर्वक ज्ञेय

विभाग-१ (ध्येय का स्वरूप)

श्री समयसारजी शास्त्र की गाथा ३२० की जयसेनाचार्य कृत टीका पर प्रवचन

प्रवचन क्रमांक	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
१	१०-८-१९७०	७
२	११-८-१९७०	२६
३	१२-८-१९७०	४४
४	१३-८-१९७०	६३
५	१४-८-१९७०	७५
६	१५-८-१९७०	९४
७	१६-८-१९७०	११३
८	१६-८-१९७०	१३२
९	१७-८-१९७०	१४९
१०	१८-८-१९७०	१६५
११	१९-८-१९७०	१८४
१२	२०-८-१९७०	२०३
विभाग-२ (ज्ञेय का स्वरूप) समयसार कलश टीका, कलश नं० २७१ पर प्रवचन		
प्रवचन क्रमांक	दिनांक	पृष्ठ क्रमांक
१	०५-१-१९६६	२२२
२	०६-१-१९६६	२४०
३	२८-८-१९६८	२४९
४	३०-८-१९६८	२६५
५	०५-१२-१९७४	२७७
६	२९-०९-१९७७	२८८
श्री समयसार शास्त्र के कलश २७१ पर प्रवचन रत्नाकर भाग ११ में से संकलित प्रवचन		
१	ईस्वी सन् १९७७	३०३
परिशिष्ट		३११

ॐ

परमात्मने नमः

ध्येयपूर्वक ज्ञेय

समयसार परमागम गाथा ३२० आचार्य जयसेन कृत संस्कृत टीका पर
पूज्य गुरुदेवश्री के बारह विशिष्ट प्रवचनों का संकलन

अथ तमेव अकर्तृत्वभोक्तृत्वभावं विशेषेण समर्थयति-

दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणदि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥

दृष्टिः यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदकं चैव।
जानाति च बन्धमोक्षं कर्मोदयं निर्जरां चैव॥

[दिट्ठी संय पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव] यथा दृष्टिः कर्त्री दृश्यमग्निरूपं वस्तुसंधुक्षणं पुरुषवन्न करोति तथैव च तप्तायः पिंडवदनुभवरूपेण न वेदयति। तथा शुद्धज्ञानमप्यभेदेन शुद्धज्ञानपरिणत जीवो वा स्वयं शुद्धोपादानरूपेण न करोति न च वेदयति। अथवा पाठांतरं [दिट्ठी खयंपि णाणं] तस्य व्याख्यानं - न केवलं दृष्टिः क्षायिक-ज्ञानमपि निश्चयेन कर्मणामकारक तथैवावेदकमपि। तथाभूतः सन् किं करोति ? [जाणदि य बंधमोक्खं] जानाति च। कौ ? बंधमोक्षौ। न केवलं बंधमोक्षौ [कम्मुदयं णिज्जरं चेव] शुभाशुभरूपं कर्मोदयं सविपाकाविपाकरूपेण सकामाकामरूपेण वि द्विधा निर्जरां चैव जानाति इति।

एवं सर्वविशुद्धिपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादान-भूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्व-भोक्तृत्व-बंधमोक्षादिकारण-परिणाम-शून्यो जीव इति

सूचितं। समुदाय-पातनिकायां पश्चाद्गाथाचतुष्टयेन जीवस्याकर्तृत्वगुण-व्याख्यानमुख्यत्वेन सामान्यविवरणं कृतं। पुनरपि गाथाचतुष्टयेन शुद्धस्यापि यत्प्रकृतिभिर्बंधो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमित्यज्ञानसामर्थ्य-कथनरूपेण विशेषविवरणं कृतं। पुनश्च गाथाचतुष्टयेन जीवस्याभोक्तृत्वगुणव्याख्यान-मुख्यत्वेन व्याख्यानं कृतं। तदनन्तरं शुद्धनिश्चयेन तस्यैव कर्तृत्वबंधमोक्षादिककारण-परिणामवर्जनरूपस्य द्वादश-गाथाव्याख्यानस्योपसंहाररूपेण गाथाद्वयं गतं॥ इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ मोक्षाधिकार-संबंधिनी चूलिका समाप्ता। अथवा द्वितीय-व्याख्यानेनात्र मोक्षाधिकार समाप्तः।

किं च विशेषः - औपशमिकादिपंचभावानां मध्ये केन भावेन मोक्षो भवतीति विचार्यते। तत्रौपशमिक-क्षायोपशमिकक्षायिकौदयिकभावचतुष्टयं पर्यायरूपं भवति, शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूप इति। तच्च परस्परसापेक्षं द्रव्यपर्यायद्वयात्मा पदार्थो भण्यते।

तत्र तावज्जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वत्रिविधपरिणामिक-भावमध्ये शुद्धजीवत्व शक्तिलक्षणं यत्पारिणामिकत्वं, तच्छुद्धद्रव्यार्थिक-नयाश्रितत्वान्निरावरणं शुद्धपारिणामिक-भावसंज्ञं ज्ञातव्यं तत्तु बंधमोक्ष-पर्यायपरिणतिरहितं। यत्पुनर्दशप्राणरूपं जीवत्वं भव्याभव्यत्वद्वयं तत्पर्यायार्थिक-नयाश्रितत्वादशुद्धपारिणामिकभावसंज्ञमिति। कथम-शुद्धमिति चेत्, संसारिणां शुद्धनयेन सिद्धानां तु सर्वथैव दशप्राणरूप जीवत्व भव्याभव्यत्वद्वयाभावादिति।

तत्र त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षणपारिणामिकस्यतु यथासंभवं सम्यक्त्वादि-जीवगुणघातकं देशघातिसर्वघातिसंज्ञं मोहादिकर्म -सामान्यं पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादकं भवति इति विज्ञेयं। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्वशक्तर्व्यक्ति-भवति तदायं जीवः सहज-शुद्धपारिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्य-सम्यक् श्रद्धान-ज्ञानानुचरणपर्यायेण परिणमति। तच्च परिणमन-मागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिक-क्षायिकं भावत्रयं भण्यते। अध्यात्मभाषया पुनः शुद्धात्माभि-मुखपरिणामः शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसंज्ञां लभते।

स च पर्यायः शुद्धपारिणामिकभावलक्षणशुद्धात्मद्रव्यात्कथं -चिद्भिन्नः। कस्मात् भावनारूपत्वात्। शुद्धपारिणामिकस्तु भावनारूपो न भवति। यद्येकांतेन शुद्धपारिणामिकादभिन्नो भवति तदास्य भावनारूपस्य मोक्षकारणभूतस्य मोक्षप्रस्तावे

विनाशे जाते सति शुद्धपारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोति; न च तथा।

ततः स्थितं - शुद्धपारिणामिकभावविषये या भावना तद्रूपं यदौपशमिकादिभावत्रयं तत्समस्तरागादिरहितत्वेन शुद्धोपादान-कारणत्वात् मोक्षकारणं भवति, न च शुद्धपारिणामिकः।

यस्तु शक्तिरूपो मोक्षः स शुद्धपारिणामिकपूर्वमेव तिष्ठति। अयं तु व्यक्तिरूप मोक्षविचारो वर्तते।

तथा चोक्त सिद्धान्ते - 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' निष्क्रिय इति कोऽर्थः? बंधकारणभूता या क्रिया रागादि-परिणतिः तद्रूपो न भवति, मोक्षकारणभूता च क्रिया शुद्धभावना -परिणतिस्तद्रूपश्च न भवति। ततो ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति। कस्मात्? ध्यानस्य विनश्वरत्वात्। तथा योगीन्द्रदेवैप्युक्तं - णवि उपज्जइ णवि मरइ बंध ण मोक्खु करेइ। जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥

किंच विवक्षितैकदेशशुद्धनयाश्रितेयं भावना निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणक्षायो-पशमिकत्वेन यद्यप्येकदेशव्यक्तिरूपा भवति तथापि ध्यातापुरुषः यदेव सकल निरावरणमखंडैकप्रत्यक्षप्रतिभासमयम-विनश्वरंशुद्ध-पारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेवाहमिति भावयति, न च खंडज्ञानरूपमिति भावार्थः।

इदं तु व्याख्यानं परस्परसापेक्षागमाध्यात्मनद्वयाभि-प्रायस्या-निरोधेनैव कथितं सिद्ध्यतीति ज्ञातव्यं विवेकिभिः ॥३२०॥

उसी अकृर्तत्वभोक्तृत्वभाव को विशेषरूप से दृढ़ करते हैं -

ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो!
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बन्ध त्यों ही मोक्ष को॥

गाथार्थ - [यथा एव दृष्टिः] जैसे, नेत्र (दृश्य पदार्थों को करता-भोगता नहीं है किन्तु देखता ही है); [तथा] उसी प्रकार [ज्ञानम्] ज्ञान, [अकारकं] अकारक [अवेदकं च एव] तथा अवेदक है [च] और [बन्धमोक्षं] बन्ध, मोक्ष, [कर्मोदयं] कर्मोदय [निर्जरां च एव] तथा निर्जरा को [जानाति] जानता ही है।

[दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव] जिस प्रकार नेत्रकर्ता, दृश्यवस्तु को, संधुक्षण करनेवाला (अग्नि सुलगानेवाला) पुरुष अग्निरूप वस्तु को करता है उस प्रकार, करता नहीं है, और तपे हुए लौहपिण्ड की भाँति अनुभवरूप से वेदता नहीं है; उस प्रकार शुद्धज्ञान भी अथवा अभेद से शुद्धज्ञान, परिणत जीव भी, स्वयं शुद्ध-उपादानरूप से करता नहीं है और वेदता नहीं है अथवा पाठान्तर : 'दिट्ठी सयं पि णाणं' उसका व्याख्यान - मात्र दृष्टि ही नहीं, परन्तु क्षायिकज्ञान भी निश्चय से कर्मों का अकारक तथा अवेदक भी है। वैसा होता हुआ (शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है ? [जाणदि य बंधमोक्खं] जानता है। किसको ? बन्ध-मोक्ष को। मात्र बन्ध-मोक्ष को नहीं, [कम्मुदयं णिज्जरं चेव] शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को तथा सविपाक-अविपाकरूप से और सकाम-अकामरूप से दो प्रकार की निर्जरा भी जानता है।

सर्वविशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध-उपादानभूत शुद्धद्रव्यार्थिकनय से जीव, कर्तृत्व-भोक्तृत्व से तथा बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है, ऐसा समुदायपातनिका में कहा गया था। पश्चात् चार गाथाओं द्वारा जीव का अकर्तृत्वगुण के व्याख्यान की मुख्यता से सामान्य विवरण किया गया। तत्पश्चात् चार गाथाओं द्वारा 'शुद्ध को भी जो प्रकृति के साथ बन्ध होता है, वह अज्ञान का माहात्म्य है' - ऐसा अज्ञान का सामर्थ्य कहनेरूप विशेष विवरण किया गया। तत्पश्चात् चार गाथाओं द्वारा जीव का अभोक्तृत्वगुण के व्याख्यान की मुख्यता से व्याख्यान किया गया। तत्पश्चात् दो गाथाएँ कही गईं, जिनके द्वारा पहले बारह गाथाओं में शुद्धनिश्चय से कर्तृत्व-भोक्तृत्व के अभावरूप तथा बन्ध-मोक्ष के कारण एवं परिणाम के अभावरूप जो व्याख्यान किया गया था, उसी का उपसंहार किया गया। इस प्रकार समयसार की शुद्धात्मानुभूतिलक्षण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की टीका में मोक्षाधिकार सम्बन्धी चूलिका समाप्त हुई अथवा अन्य प्रकार से व्याख्यान करने पर, यहाँ मोक्षाधिकार समाप्त हुआ।

फिर विशेष कहा जाता है -

औपशमिकादि पाँच भावों में किस भाव से मोक्ष होता है, वह विचारते हैं।

वहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक तथा औदयिक - ये चार भाव, पर्यायरूप हैं और शुद्धपारिणामिक (भाव), द्रव्यरूप है। वह परस्पर सापेक्ष, ऐसा द्रव्यपर्यायद्वय (द्रव्य और पर्याय का युगल) सो आत्मा-पदार्थ है।

वहाँ, प्रथम तो जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व - ऐसे तीन प्रकार के पारिणामिकभावों में, शुद्धजीवत्व - ऐसा जो शक्तिलक्षण पारिणामिकपना, वह शुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रित होने से निरावरण और 'शुद्धपारिणामिकभाव' - ऐसी संज्ञावाला जानना; वह तो बन्धमोक्ष-पर्यायपरिणतिरहित है परन्तु जो दस-प्राणरूप जीवत्व और भव्यत्व अभव्यत्वद्वय, वे पर्यायार्थिकनयाश्रित होने से 'अशुद्ध-पारिणामिकभाव' संज्ञावाले हैं। प्रश्न - 'अशुद्ध' क्यों ? उत्तर- संसारियों को शुद्धनय से और सिद्धों को तो सर्वथा ही दस-प्राणरूप जीवत्व का तथा भव्यत्व-अभव्यत्वद्वय का अभाव होने से।

उन तीनों में, भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो यथासम्भव सम्यक्त्वादि जीवगुणों का घातक 'देशघाती' और 'सर्वघाती' - ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्मसामान्य पर्यायार्थिकनय से ढँकता है, ऐसा जानना। वहाँ जब कालादि लब्धि के वश, भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है तब यह जीव, सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य के, सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय से परिणमता है; वह परिणमन आगमभाषा से 'औपशमिक', 'क्षायोपशमिक' तथा 'क्षायिक' - ऐसे भावत्रय कहा जाता है, और अध्यात्मभाषा से 'शुद्धात्माभिमुख परिणाम', 'शुद्धोपयोग' इत्यादि पर्यायसंज्ञा पाता है।

वह पर्याय, शुद्धपारिणामिकभावलक्षण शुद्धात्मद्रव्य से कथंचित् भिन्न है। किसलिए ? भावनारूप होने से। शुद्धपारिणामिक (भाव) तो भावनारूप नहीं है। यदि (वह पर्याय) एकान्तरूप से शुद्ध-पारिणामिक से अभिन्न हो, तो मोक्ष का प्रसंग आने पर इस भावनारूप मोक्षकारणभूत (पर्याय) का विनाश होने से शुद्धपारिणामिकभाव भी विनाश को प्राप्त हो, परन्तु ऐसा तो होता नहीं है (क्योंकि शुद्धपारिणामिकभाव तो अविनाशी है)।

इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ - शुद्धपारिणामिकभावविषयक (शुद्धपारिणामिकभाव का अवलम्बन लेनेवाली) जो भावना, उस रूप जो औपशमिकादि तीन भाव वे समस्त रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध-उपादानकारणभूत होने से मोक्षकारण (मोक्ष के कारण) हैं परन्तु शुद्धपारिणामिक नहीं (अर्थात्, शुद्धपारिणामिक-भाव, मोक्ष का कारण नहीं है)।

जो शक्तिरूप मोक्ष है, वह तो शुद्धपारिणामिक है, प्रथम से ही विद्यमान है। यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है।

इसी प्रकार सिद्धान्त में कहा है कि – 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' अर्थात्, शुद्धपारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है। निष्क्रिय का क्या अर्थ है ? (शुद्धपारिणामिक -भाव) बन्ध के कारणभूत जो क्रिया-रागादिपरिणति, उसरूप नहीं है और मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया-शुद्धभावनापरिणति, उसरूप भी नहीं है; इसलिए ऐसा जाना जाता है कि शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं है। किसलिए ? क्योंकि ध्यान विनश्वर है (और शुद्धपारिणामिकभाव तो अविनाशी है)। श्री योगीन्द्रदेव ने भी कहा है कि – 'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ बन्धु ण मोक्खु करेइ। जिउ परमथे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥' (अर्थात्, हे योगी! परमार्थ से जीव, उपजता भी नहीं है, मरता भी नहीं है और बन्ध-मोक्ष नहीं करता – ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।)

फिर वह स्पष्ट किया जाता है – विवक्षित-एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना (अर्थात्, जिसे कहना चाहते हैं, ऐसी आंशिक शुद्धिरूप यह परिणति) निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से, यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि 'जो सकलनिरावरण-अखण्ड-एक-प्रत्यक्षप्रतिभासमय-अविनश्वर-शुद्ध-पारिणामिकपरमभावलक्षण निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' – ऐसा भावार्थ है।

यह व्याख्यान, परस्पर सापेक्ष ऐसे आगम-अध्यात्म के तथा नयद्वय के (द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय के) अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही कहा गया होने से सिद्ध है (निर्बाध है), ऐसा विवेकी जानें।

प्रवचन - १ , गाथा - ३२० दिनांक १०-८-१९७०

समयसार, ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका है। जरा सूक्ष्म है परन्तु समझने की चीज़ है। सबके पास पन्ने हैं, इसके लिये १५०० छपाये हैं, सबके पास रखेंगे (कि) किस शब्द का क्या अर्थ होता है ?

जयसेनाचार्य कृत तात्पर्यवृत्ति टीका — उसका अनुवाद

दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणदि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥

टीका-उसी अकृर्तत्वभोक्तृत्वभाव को विशेषरूप से दृढ़ करते हैं - क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसका (स्वरूप) त्रिकाली आनन्द और ध्रुव है। उसका ज्ञान नहीं, उसका भान नहीं, वह पुण्य-पाप, राग-द्वेष आदि का कर्ता होता है और उनका भोक्ता होता है। समझ में आया ? जिसकी दृष्टि द्रव्य / वस्तु, जो ध्रुव चैतन्य महास्वयंभूरमण समुद्र.. चैतन्य का महास्वयंभूरमण समुद्र, ध्रुव, नित्य, अविनाशी (है) ऐसा पर्याय से रहित; ऐसी त्रिकाली चीज़ है, उस पर जिसकी दृष्टि नहीं; वह राग और पर्याय -एक समय का परिणाम और राग पर दृष्टि होने से, वह राग-द्वेष, पुण्य-पाप का कर्ता और उसका भोक्ता अज्ञानी होता है। समझ में आया ?

वस्तु का स्वरूप, भगवान आत्मा का स्वरूप और वस्तु के स्वरूप का दृष्टिवान, वह राग आदि का कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं—ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? अमृतचन्द्राचार्य की टीका पढ़ ली है। किन्तु जयसेनाचार्य की टीका में बहुत सूक्ष्म भर दिया है। दो बार तो वहाँ राजकोट (में) व्याख्यान हो गया है, यहाँ भी एक बार हुआ है। थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु अब समझ में तो-ख्याल में तो ले कि जैनदर्शन में तत्त्व क्या है ? समझ में आया ?

यह आत्मा एक समय में पूर्णानन्द, शुद्ध चैतन्य ध्रुव सागर.. लो! यह तुम्हारा सागर आया।

मुमुक्षु : बहुत आनन्द आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे भगवान की जिसे दृष्टि नहीं, उसका जिसे ध्येय नहीं और दृष्टि का विषय द्रव्य को बनाकर परिणमन नहीं किया, वे सब मिथ्यादृष्टि हैं – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तो वह मिथ्या अर्थात् जिसकी (दृष्टि) सत्यस्वरूप भगवान आत्मा, ऐसी दृष्टि नहीं है, वह राग-द्वेष, उदय विकारभावरूप परिणमन करता है और वह मेरी चीज़ है—ऐसा करके उसका वेदन करता है, तो अनादि का कर्तृत्व और भोक्तृत्वभाव अज्ञान से उत्पन्न करके चार गति में उसके कारण परिभ्रमण करता है। समझ में आया? यहाँ तो जब धर्म होता है, तो कैसे होता है? वह बात चलती है। समझ में आया?

कहते हैं, देखो! **दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।** यह बात तो मूल पाठ में है परन्तु उसकी टीका करते हैं। दृष्टान्त दिया है। **जिस प्रकार नेत्र..** आँख-कर्ता। **दृश्यवस्तु का कर्ता नहीं होता।** आँख, आँख कहते हैं न? चक्षु, चक्षु देखनेवाली है, वह देखने की चीज़ को कर्ता-हर्ता, वह आँख नहीं है। समझ में आया? आँख है, वह देखनेवाली आँख / दृष्टा / कर्ता और वह दृश्य जो पदार्थ है, उसमें जाननेयोग्य अग्नि, शरीर, वाणी इत्यादि सब; उसको आँख करता नहीं है—ऐसा (मात्र) देखनेवाली है, परन्तु है, नहीं है, उसकी पर्याय उत्पन्न कर दे और पर की पर्याय को आँख अनुभव करे – ऐसा नहीं होता। यह तो दृष्टान्त है। यह तो अभी दृष्टान्त है, दृष्टान्त का सिद्धान्त बाद में लेंगे। पाठ में जो है, वह तो बाद में लेंगे। समझ में आया?

लोगों को समझने में सरल पड़े, इस कारण से आचार्य भगवान ने दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? यह समझने की चीज़ है। अनन्त काल से इसने चैतन्य ज्ञायक ज्योत भगवान आत्मा पर जोर नहीं दिया, दृष्टि वहाँ लगायी ही नहीं; परिणाम पर लक्ष्य या राग पर लक्ष्य या निमित्त पर लक्ष्य (या) एक समय की प्रगट अवस्था पर लक्ष्य, वह सब मिथ्यादृष्टि का लक्ष्य है। समझ में आया? मूल बात है भगवान!

कहते हैं, यह नेत्र-देखनेवाली आँख / चक्षु, देखनेवाली चीज़ को उत्पन्न नहीं करता। उत्पन्न करता है? करता है? आँख, भोक्ता भी नहीं है।

देखो, जिस प्रकार है न? जिस प्रकार है न? तो जिस प्रकार का अर्थ दृष्टान्त है; उस

प्रकार, यह बाद में सिद्धान्त आयेगा। समझ में आया? जिस प्रकार, उस प्रकार (दृष्टान्त-सिद्धान्त)। **जिस प्रकार नेत्र कर्ता,..** कर्ता अर्थात् नेत्र देखनेवाला कर्ता अर्थात् आँख / चक्षु, वह **दृश्यवस्तु को,..** अग्नि शरीर, बर्फ, वाणी आदि चीज़ को। **संधुक्षण करनेवाला (अग्नि सुलगानेवाला) पुरुष अग्निरूप वस्तु को करता है..** जैसे अग्नि जलानेवाला, सुलगानेवाला.. भाषा है न, यह भाषा है न? समझ में आया? संधुक्षण करते हैं न संधुक्षण? हमारे काठियावाड़ी भाषा में वह गोबर का चूरा होता है, बारीक चूरा, उसमें अग्नि लगती है, क्योंकि अच्छी कठिन लकड़ी हो तो अग्नि पकड़ नहीं सकती परन्तु यह चूरा होता है न, बारीक चूरा कहते हैं न? बारीक-बारीक, तो वह अग्नि पकड़ सकता है, तो यह संधुक्षण करनेवाला, देखो! अग्नि को जलानेवाला, संधुक्षण करनेवाला अर्थात् अग्नि को जलानेवाला पुरुष **अग्निरूप वस्तु को करता है..** अग्निरूप वस्तु को बनाता है अग्नि, उस प्रकार कर्ता नहीं, उस प्रकार आँख दृश्य पदार्थ की कर्ता नहीं। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : एक बार में समझ में आये ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बार आयेगा। कहाँ गये हीराभाई? यहाँ बैठे हैं। कहो, समझ में आया? हमारे दो पण्डित हैं न वे..

देखो, यहाँ अपने 'ज्ञानचक्षु में' आ गया है या नहीं? ज्ञानचक्षु - परन्तु यह सीधा समझे न पाठ से, तो जरा इसको ख्याल में आवे कि क्या चीज़ है। तो कहते हैं नेत्र / चक्षु करनेवाली.. क्या करनेवाली? देखने का कार्य करनेवाली। जैसे यह आँख देखने की चीज़ को, देखने का कार्य करे परन्तु देखने की चीज़ को बनावे, करे या देखने की चीज़ का आँख अनुभव करे - ऐसा नहीं होता। कहो, ठीक है? नन्दकिशोरजी! **संधुक्षण करनेवाला (अग्नि जलानेवाला)..** अग्नि जलानेवाला **पुरुष अग्निरूप वस्तु को करता है..** यह यहाँ बतलाना है न, इसलिए जरा। वास्तव में वह अग्नि को कोई करता नहीं, परन्तु यहाँ तो दृष्टान्त है न? लोग ख्याल करते हैं न कि लो भाई! इस भाई ने अन्दर गोबर के टुकड़े.. क्या कहते हैं? कण्डा, ऐसा चूरा करके अग्नि लगायी परन्तु अकेले अच्छे, कठोर ऐसे कठोर लकड़ियाँ हों तो उनमें अग्नि नहीं जलती, अग्नि नहीं पकड़ सके तो चूरा करके अग्नि जलायी, अग्नि की-ऐसा लोग देखते हैं, ऐसा दृष्टान्त दिया है। जैसे अग्नि जलानेवाला। अग्निरूप वस्तु को करता है। **उस प्रकार, करता नहीं है,..** आँख उस प्रकार से दृश्य वस्तु

को उत्पन्न करती है, कोई पर्याय (को उत्पन्न करती है) ऐसा नहीं है- ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आँख चीज़ को तो उत्पन्न नहीं करती परन्तु जो चीज़ / दृश्य है, उसकी किसी अवस्था को उत्पन्न कर दे - ऐसा नहीं है। समझ में आया?

(अग्निरूप) वस्तु को करता है उस प्रकार,.. (आँख) **करता नहीं है,..** चक्षु कर्ता नहीं है, समझ में आया? जैसे अग्नि जलानेवाला अग्नि उत्पन्न करता है, वैसे चक्षु किसी पदार्थ को उत्पन्न करती है - ऐसा नहीं है। पृष्ठ सामने है न?

और तपे हुए लौहपिण्ड की भाँति.. अग्नि से उष्ण हुआ ऐसा लोहे का गोला। अग्नि से तप्तायमान हुआ लोहे का गोला। **पिण्ड की भाँति अनुभवरूप से वेदता नहीं है;..** वह लोहा उष्णता को वेदता-अनुभव करता है। अनुभव करता है का अर्थ—लोहा उष्ण हो गया है। समझ में आया? लोहे का गोाला अग्निमय उष्ण हो गया है; तो गोला उसका वेदन करता है, उसमें तन्मय हो गया है न? इस प्रकार आँख पर चीज़ को कुछ भी भोगती और करती नहीं है। कहो, बराबर है? इस रूप को वेदता नहीं, कौन? आँख, हों!

'जिस प्रकार' था न वह अब 'उस प्रकार' चक्षु के दृष्टान्त से, जलानेवाला अग्नि को जलाता है, ऐसे आँख परद्रव्य की पर्याय की उत्पत्ति नहीं करती और लोहा गोला अग्नि से तपा हुआ उष्णता को वेदता है अर्थात् तन्मय होता है; वैसे आँख किसी भी चीज़ को करती नहीं तथा उसको वेदती भी नहीं। अग्नि को देखने से अग्नि का वेदन है उसे? नहीं। समझ में आया? यह दृष्टान्त हुआ।

अब सिद्धान्त **उस प्रकार शुद्धज्ञान भी..** अब ऐसा क्या किया है, पाठ में तो ऐसा है, सुनो! '**दिट्ठी सयं पि णाणं**' दृष्टि है, वह स्वयं त्रिकाली जो ध्रुवज्ञान है। आहाहा! तो दृष्टि शब्द उसमें नहीं लिया, परन्तु उसका अर्थ यह हुआ कि जो सम्यग्दृष्टि है, उसकी जो दृष्टि है, वह ध्रुवज्ञान / त्रिकाली ज्ञान पर उसकी दृष्टि पड़ी है। समझ में आया? आहाहा! समझ में आया या नहीं वकीलजी? दृष्टि, शुद्धज्ञान अर्थात् त्रिकाली ज्ञान ध्रुव चैतन्य भगवान नित्यानन्द अविनाशी, एक समय की पर्याय से भी खाली-दूर। समझ में आया? यह शिक्षा तो केवलज्ञान के व्यायाम की बात है, भाई! यह केवलज्ञान कैसे उत्पन्न हो?— उसकी—केवलज्ञान उत्पन्न करनेवाले की दृष्टि कहाँ है? समझ में आया? उस धर्मी जीव

की दृष्टि, धर्मी ऐसे त्रिकाली ज्ञायकभाव पर दृष्टि है तो उसको यहाँ शुद्ध ज्ञान कहा। किसको ? त्रिकाली ज्ञानभाव को। समझ में आया ? है सामने पन्ने ? इसके लिये तो पन्ने बनाये (छपाये) हैं। भगवान ! यहाँ तो कहते हैं कि जैसे आँख, पर का कर्ता-भोक्ता नहीं; वैसे दृष्टिवन्त जीव, जो दृष्टि जिसकी ध्रुवज्ञान त्रिकाल ज्ञान पर पड़ी है, ऐसा धर्मी जीव.. वह धर्मी इसको कहते हैं कि त्रिकाली ज्ञान पर दृष्टि है, उसे धर्मी कहते हैं। समझ में आया ? यह तो मूल मुद्दे की बात है। जरा कठिन पड़े परन्तु भाषा में कोई कठिनाई न आवे, ऐसी सरल आती है परन्तु इसे समझने की दरकार तो करनी चाहिए या नहीं ? समझा सकता है कोई दूसरा ? समझ में आया ?

कहते हैं कि जिस प्रकार चक्षु, उस प्रकार शुद्धज्ञान.. दृष्टि नहीं लिया। पाठ में तो दृष्टि है। '**दिट्ठी सयं पि णाणं**' (दिट्ठी का अर्थ नेत्र किया) ठीक, नेत्र किया। परन्तु यहाँ दृष्टि लेना है। यहाँ जैसे दृष्टि वहाँ है, ऐसे यहाँ णाणं, णाणं का अर्थ जो त्रिकाल ज्ञान, ऊपर कहा है न वापस, नीचे (लेख) किया है भाई तुमने। मात्र दृष्टि ही नहीं परन्तु क्षायिकज्ञान भी.. वहाँ लिखा है देखो ! नीचे। यह बात तो हो गयी है पहले। इस क्षायिकज्ञान का अर्थ दृष्टि है। क्या कहा समझ में आया ?

धीमे से-शान्ति से यह तो अन्तर की चीज़ है। यह कहते हैं कि दृष्टि में यहाँ तो भाई ने कहा न, यहाँ दृष्टि में तो नेत्र का उतारा है परन्तु दृष्टि में तो दृष्टि ही उतारी है। यहाँ शुद्धज्ञान में.. क्योंकि बाद में कहते हैं कि मात्र दृष्टि ही नहीं, परन्तु केवलज्ञान भी अकर्ता-अभोक्ता है—ऐसा ही दृष्टिवन्त अकर्ता-अभोक्ता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब ध्रुव अविनाशी जिसका अंश जो त्रिकाल, उस पर जिसकी दृष्टि है, उसका नाम सम्यग्दर्शन है - दृष्टि का विषय। मिथ्यादर्शन का विषय एक समय की पर्याय और राग, वह कोई विषय हुआ नहीं वास्तव में तो। समझ में आया ?

मिथ्याश्रद्धा-मिथ्यादृष्टि का विषय वास्तव में यह इसका विषय ही नहीं है, ऐसा होने पर भी विषय कहना पड़ता है। कारण, विषय क्या उसका ? दृष्टि का विषय जो पूर्ण है—ऐसा विषय आना चाहिए; तो ऐसा मिथ्यादृष्टि का विषय वह है नहीं तो वास्तव में उसका विषय नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा ! भाई क्या कहा ? समझ में आया ? (मिथ्यादृष्टि का कुछ विषय ही नहीं है) ऐई !

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि का कोई विषय ही नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय ही नहीं तथापि उसने विषय बनाया है। दृष्टि में वस्तु जो त्रिकालरूप प्रभु है, वह दृष्टि में आना चाहिए क्योंकि वह वस्तु ही त्रिकालध्रुव है—ऐसी दृष्टि का विषय वह तो यथार्थ है। मिथ्यादर्शन का कोई विषय ही नहीं क्योंकि एक समय की पर्याय, वह वास्तव में वस्तु ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

स्ववस्तु की अपेक्षा से-भगवान त्रिकाली द्रव्य ध्रुव की अपेक्षा से एक समय की पर्याय, राग और निमित्त वह सब अवस्तु है अर्थात् वास्तव में मिथ्यादृष्टि का विषय ही यथार्थ नहीं है। समझ में आया? अवस्तु हो गयी, लो! ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया? धीरे-धीरे समझना, हों! समझ में आये ऐसी बात है। भाषा तो बहुत सादी है, भले भाव जरा (गम्भीर है)। लो, भाई! हमारे जयकुमारजी कहते हैं, भाव गम्भीर है। भाव तो साहेब भगवान, यह तेरी लीला! आहाहा! चैतन्य भगवान त्रिलोकनाथ जिसमें परिणाम भी जिसे स्पर्श नहीं करते, स्पर्श नहीं करते। समझे? छूते ही नहीं हैं। एई! और वास्तव में तो परिणाम और वर्तमान निर्मल पर्याय भी स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य-अद्रव्य हो गया। इसलिए जगत में मिथ्यादृष्टि का विषय नहीं है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि का विषय हो सकता है, और है। आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, शुद्ध वस्तु नित्य प्रभु की दृष्टि हुई, वह दृष्टि नाम नहीं लिया परन्तु बाद में ले लिया कि हमने दृष्टि के विषय की बात की। ऐसे यहाँ क्षायिकज्ञान की बात समझना, उसमें से दृष्टि निकाल लिया। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान और दृष्टि दोनों शामिल लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : शामिल लेना, ज्ञान और दृष्टि, ये कहा न? 'णाणं' जो त्रिकाली ज्ञान है, वही दृष्टि का विषय है। दृष्टि की बात मैंने पहले की, अब ज्ञान की बात करूँगा—ऐसा करके कहेंगे। करेंगे अर्थात् ऐसा करके कहेंगे। हिन्दी में थोड़ी-थोड़ी गुजराती अन्दर आती है। समझ में आया? आहाहा! अमृत का सागर डोलता है। समझ में आया?

भगवान अमृत का नाथ स्वयंभूरमण समुद्र अन्दर डोलता है। स्वयंभूरमण समुद्र जैसे है एक ही, एक ही चीज़ स्वयंभू शब्द में ऐसा आया एक ही चीज़, एक वस्तु भगवान

पूर्णानन्द प्रभु, वही वस्तु जगत में है। इसके अतिरिक्त एक समय की पर्यायादि कोई वस्तु नहीं, अवस्तु है। अवस्तु है। आहाहा! अवस्तु की दृष्टि को ही मिथ्यात्व कहते हैं। लालचन्दजी! आहाहा! यह दिगम्बर सन्तों की मस्ती है। आहाहा! समझ में आया? यह बात जैनदर्शन–दिगम्बर दर्शन के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं नहीं होती। जहाँ अन्दर से अकेला समुद्र डोला है, भगवान! सुन तो सही! तू कहाँ रुक गया है और कहाँ तेरी चीज़ है! समझ में आया? तू कहाँ रुक गया है एक समय के राग में, या पर्याय में, भगवान! वह तेरी चीज़ नहीं, वह वस्तु ही नहीं पूरी, ऐसा यहाँ कहते हैं।

मुमुक्षु : अवस्तु है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अवस्तु है। यथार्थ यदि विषय हो, तब तो मिथ्यात्व कहने में आता ही नहीं। आहाहा! आता है न भाई! उसमें–बन्ध अधिकार में!

मुमुक्षु : मिथ्यादृष्टि का कोई विषय ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय ही नहीं। न्याय से देखो तो यह है। यदि उसका विषय हो तो अज्ञान कैसे कहलाये? समझ में आया? थोड़ा–थोड़ा समझना और नहीं (समझ में आये) तो रात्रि को (रात्रिचर्चा में) पूछना। रात्रि को तो सब मौन रहते हैं न!

मुमुक्षु : पूछने में डर लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्यों? सब मौन रहते हैं, मौन रहते हैं सब तो थोड़ा–थोड़ा अन्दर से न समझ में आवे वहाँ सामने प्रश्न करना। पौन घण्टा रखा है न रात्रि को। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा.. जैसे दृष्टि पर को–अग्नि को नहीं करती और अग्नि को नहीं भोगती; वैसे भगवान आत्मा, यह शुद्धज्ञान, वह दृष्टि का विषय और वही वस्तु.. समझ में आया? शुद्ध ध्रुवज्ञान, ज्ञायकभाव, त्रिकाल ज्ञानभाव, ध्रुवभाव, वही वस्तु, वही सत्ता, वही आत्मा और उस आत्मा की दृष्टि करनेवाला–दृष्टि का विषय यथार्थ है तो वह दृष्टि यथार्थ सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

कहते हैं **शुद्धज्ञान भी..** यह में कहेंगे कि दृष्टि का विषय कहा तुम्हें, तो इसमें कहाँ आया? दृष्टि तो आयी नहीं इसमें? बाद में कहेंगे देखो, है न? मात्र दृष्टि नहीं परन्तु क्षायिकज्ञान भी निश्चय से.. समझ में आया? उसका अर्थ ही यह है कि यह पूर्ण ज्ञान जो

शुद्ध चैतन्यद्रव्य है, वही दृष्टि का विषय है, तो दृष्टि की ही बात हमने की थी। शुद्धज्ञान त्रिकाली भगवान, जिसमें केवलज्ञान की पर्याय तो अनन्तवें.. अनन्तवें.. अनन्तवें.. भाग गिनने में आती है, केवलज्ञान पर्याय, द्रव्य के आश्रय से। (अपेक्षा से)। द्रव्य का पलड़ा इतना जोरवाला है.. जोरदार पूरा पलड़ा है कि केवलज्ञान की पर्याय भी उससे अनन्तवें भाग ऊँचे रहती है और इसका पलड़ा नीचे बैठ जाता है। समझ में आया ? केवलज्ञान को तो यहाँ सद्भूत व्यवहार कहा न भाई! सद्भूत व्यवहार.. व्यवहार.. व्यवहार..; व्यवहार अर्थात् वास्तव में अवस्तु। ले! ऐई!

मुमुक्षु : परिणाम सब व्यवहार ही होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणाम, व्यवहार अभूतार्थ, असत्यार्थ। असत्यार्थ का विषय करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान सत्य प्रभु सच्चिदानन्द वस्तु स्वयं निज स्वयंभूस्वरूप.. स्वयंभू, वहाँ प्रवचनसार में लिया है, वह तो पर्याय में लिया है। यहाँ तो स्वयंभू अपने से है-अनादि अनन्त—ऐसा शुद्धज्ञान भी, अथवा यह तो शुद्धज्ञान नहीं, उसका अर्थ यह है कि **अभेद से शुद्धज्ञान, परिणत जीव भी,..** त्रिकाली ज्ञान भी जैसे राग का कर्ता और भोक्ता नहीं, उसका अर्थ यह हुआ कि जिसकी दृष्टि में शुद्धज्ञान पूर्ण है—ऐसा आया, वह शुद्ध परिणत जीव भी इसमें लेना। आहाहा! समझ में आया ? पहले समझ तो करे कि क्या चीज़ है ?

मुमुक्षु : समझ न करे तो इसे परिणत कहाँ से आया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह शुद्धज्ञान त्रिकाल शुद्धज्ञान है, उसकी दृष्टि में आये बिना यह शुद्धज्ञान इसे कहाँ से आया ? समझ में आया ? शुद्ध है परन्तु शुद्ध है, वह किसकी सत्ता में ? ख्याल में आये बिना ? तो कहते हैं कि हमने बात तो ऐसी की है कि शुद्धज्ञान भी-त्रिकाल ज्ञान भी जो दृष्टि का विषय है वह भी, राग और पुण्य और पाप, दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय को नहीं करता। समझ में आया ? और व्यवहाररत्नत्रय आदि राग और दुःख को भी नहीं भोगता। आहाहा!

शुद्धज्ञान भी अथवा.. यह तो शुद्धज्ञान जिसकी दृष्टि में आया, उसे शुद्धज्ञान की परिणति पर्याय में प्रगट हुई है। समझ में आया ? अभेद से, क्योंकि दृष्टिवन्त ने वस्तु को

दृष्टि में लिया तो यह परिणति है, वह द्रव्य की अभेद हो गयी; शुद्धपरिणति-सम्यग्दर्शन की पर्याय, द्रव्य से अभेद हो गयी। अभेद का अर्थ ?—पर्याय और द्रव्य दो एक नहीं हो जाते परन्तु वह पर्याय जो परसन्मुख में एकता थी, वह स्वसन्मुख से एकता हुई, इस अपेक्षा से अभेद में शुद्धज्ञान परिणत जीव भी.. समझ में आया ?

मुमुक्षु : एकता होती नहीं और फिर एकता कहना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : एकता का अर्थ यह है कि जो पर्याय ऐसे राग के साथ में एकता थी-एकता मानी थी न, ऐसे राग के साथ पर्यायबुद्धि में पर के साथ, विकल्प के साथ दोष के साथ (एकता मानी थी), वह जो पर्याय थी, वह पर्याय यहाँ (अन्दर) झुक गयी तो ऐसे (पर में) एकत्व था, वह ऐसे (अन्दर में) एकत्व हुआ - ऐसा कहने में आता है। परन्तु पर्याय और द्रव्य एक हो जाते हैं - ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

धर्मात्मा की मस्ती का विषय यह है ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : दृष्टि का फेर..

पूज्य गुरुदेवश्री : हें.. दृष्टि का फेर। पूरा फेर है भगवान! यह तो बाहर की सिरपच्ची में पड़ा है तो उसमें तो कुछ धूल भी नहीं है। भगवान प्रभु अन्दर बिराजता है, पूर्णानन्द का नाथ ध्रुव पर मार थाप (कर दृष्टि); वह अभेददृष्टि हो गयी। अभेद हुई तो परिणमन में शुद्धता आ गयी। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् आनन्द की परिणति प्रगट हुई। यह कहा है। **अभेद से शुद्धज्ञान, परिणत..** अकेला शुद्धज्ञान ध्रुव नहीं रहा परन्तु ध्रुव की दृष्टि हुई, इसलिए परिणति में भी शुद्धता-सम्यग्दर्शन, आनन्द आदि आ गये। ऐसा जीव.. समझ में आया ? **शुद्धज्ञान, परिणत जीव भी,..** गजब ! भाई ! अभेद, वह शुद्धज्ञान परिणत ! पहले शुद्धज्ञान कहा था न ? यह शुद्धज्ञान परिणत, वह त्रिकाली है, वह परिणमा। आगे इनकार करेंगे कि परिणति पर्याय की है। समझ में आया ?

शुद्धज्ञान जो पहले कहा, वह तो त्रिकाली.. ध्रुव त्रिकाली। अब यहाँ कहते हैं कि जब दृष्टि वहाँ हुई.. पर्यायबुद्धि छूट गयी, राग के निमित्त का लक्ष्य छूट गया, वह परिणाम में रमता था, वह दृष्टि छूट गयी; दृष्टि यहाँ आ गयी तो वह पर्याय, शुद्धज्ञान त्रिकाल के साथ अभेद हुई और शुद्धज्ञान परिणमित हुआ - ऐसा कहा। परिणमित हुई है तो पर्याय। भाई !

आगे कहेंगे कि ध्रुव कहीं परिणमता नहीं। जो शुद्धज्ञान त्रिकाल ध्रुव है, वह परिणमता नहीं–परन्तु समझाना कैसे? कि परिणति बदल गयी। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो एक पल में समझ जाये ऐसा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बात हो गयी है। बहुत बार आता है न! धीरे-धीरे तो आता है न यह।

कहते हैं कि **अभेद से शुद्धज्ञान,..** ऊपर शुद्धज्ञान लिया था, वह तो त्रिकाली है, भाई! शुद्धज्ञान तो त्रिकाली–ध्रुव है। फिर कहेंगे ध्रुव परिणमता नहीं, पर्याय परिणमति है। ध्रुव तो ऐसा का ऐसा कूटस्थ कायम रहता है, परन्तु यहाँ विकारी परिणति जो मिथ्यात्व में थी.. समझ में आया? विकार मेरा है—ऐसा अनुभव करता था, तब तक मिथ्यादृष्टि था। समझ में आया?

शुद्ध चैतन्य की दृष्टि हुई तो परिणति शुद्धज्ञान परिणमित हुआ। जो अकेला राग आदिरूप परिणमता था, विकाररूप परिणमन होता था, वह दुःखरूप–विकार दुःखरूप कर्ता अन्दर का सब दुःखरूप था सब। तो यहाँ कहा कि शुद्धज्ञान जो त्रिकाल है.. आगे इनकार करेंगे कि त्रिकाल ध्रुव परिणमता नहीं, पर्याय परिणमती है, परन्तु यहाँ समझाना है कि शुद्ध ध्रुव जो है, वह दृष्टि हुई तो परिणमन हुआ, तो ध्रुव परिणमा–ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ए अमुलखचन्दजी! यह मार्ग है। देखो तो सही! आहाहा! वे सिरपच्ची में पड़े हैं–यह व्रत करना और दया पालना और यह करना.. अरे! सुन तो सही!

मुमुक्षु : यह व्रत समझ में आता है और सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समझ सरल अज्ञान है अनादि का, इसमें क्या है?

मुमुक्षु : संसार बढ़ाने के लिये वहाँ रहना पड़ता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : संसार बढ़ाने के लिये, परन्तु वह कहीं इसका स्वरूप है? संसार इसका स्वरूप है? राग इसका स्वरूप है? वह सब इसमें कहाँ? आत्मा नहीं, वह तो अनात्मा बढ़ गया। आहाहा! समझ में आया?

शुद्धज्ञान भी.. अथवा ऐसा तुरन्त ही लिया। **अभेद से शुद्धज्ञान, परिणत जीव**

भी,.. अर्थात् जहाँ चैतन्यभगवान दृष्टि में लिया; जो दृष्टि में राग और पर्याय लिया था, उस दृष्टि ने ध्रुव को लिया। वह पर्याय अपेक्षा से पलटा खाता है–गुलांट खाता है–ऐसा कहा। ध्रुव तो है वह है। समझ में आया? गजब बात भाई! ऐसी समझ करे, तब इसे सम्यग्दर्शन हो। अब ऐसा अभी इसका–सम्यग्दर्शन का ठिकाना नहीं और उसके पहले व्रत और चारित्र..

मुमुक्षु : अचारित्र।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! यह तो सर्वज्ञ का पंथ है, वीतरागमार्ग का यह पंथ है। समझ में आया? तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमात्मा तीर्थंकर हुए एक समय की पर्याय में, तो वे कहते हैं कि पर्याय से भी मेरी चीज़ तो भिन्न है। यह वस्तु कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? उस वस्तु का–पूर्णानन्द का भान होकर पर्याय में पूर्णता आयी, तो कहते हैं कि भगवान! तुम भी शुद्ध चैतन्यद्रव्य हो, उसकी दृष्टि लगा तो तुझे भी जो अशुद्धपरिणति–जो मिथ्यात्व, राग–द्वेष का परिणमन–विकार का परिणमन पर्याय में जो था, वह दुःखरूप परिणाम था, वह वस्तु नहीं; वह वस्तु का परिणमन नहीं। समझ में आया?

चैतन्य ज्ञायकभाव शुद्धज्ञान भी, अभेददृष्टि से ऐसा भान होकर शुद्धपरिणति / पर्याय हुई। सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र जो है, वह शुद्धज्ञानपरिणत; शुद्धज्ञान त्रिकाल और परिणत में ये तीन बोल आये। समझ में आया? शुद्धज्ञान, यह ध्रुव और उसके साथ परिणति, वह पर्याय; वह पर्याय सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र एक साथ में। समझ में आया? आगे कहेंगे—उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक। समझे? उस भावरूप परिणति है। जब से प्रगट होता है उसको उपशम में, तो भी उसको आगमभाषा में उपशम, क्षयोपशम क्षायिक कहा और अध्यात्मभाषा में उसको शुद्धात्माभिमुखपरिणाम अथवा शुद्धोपयोग कहा। उसका यह अर्थ हुआ कि सम्यग्दर्शन प्रगट होने में अन्दर शुद्धोपयोग है। आहाहा! समझ में आया? आगे बहुत स्पष्टीकरण करेंगे।

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, यह तीन मोक्ष का मार्ग है तो उसको अध्यात्मभाषा में शुद्धात्माभिमुखपरिणाम (कहा है)। शुद्धात्माभिमुखपरिणाम उपशमभाव में भी हुआ, क्षयोपशम में भी हुआ और क्षायिक में भी हुआ। अतः शुद्धात्माभिमुखपरिणाम, वह शुद्धोपयोग हुआ। पण्डितजी! यह तो अकेला माल आयेगा। धीरे–धीरे आता है न? समझ

में आया? दृष्टान्त तो आँख का दिया थोड़ा, दृष्टान्त तो दृष्टान्त के लिये दृष्टान्त नहीं है, सिद्धान्त के लिये दृष्टान्त है।

श्रोता : समझना सरल पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे जरा समझने के लिये सरल पड़ता है।

भगवान! तेरी चीज़ जो परमानन्द की मूर्ति, अकेला सुख का सागर, ऐसे सुख के सागर पर जहाँ दृष्टि पड़ी, तब इसके परिणमन में आनन्द का-दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणमन हुआ। वह शुद्धज्ञान परिणमा। वह आनन्द था, वह परिणमा—ऐसा अभी कहने में आता है। पोपटभाई! थोड़ा-थोड़ा ख्याल में तो लो, ख्याल में तो लो कि यह कुछ कहते हैं और यह कोई मार्ग है। समझ में आया? ऐसे ही ओघे-ओघे (ऊपर-ऊपर से) अनादि से चलता है, ऐसा नहीं चलता मार्ग। भाई! मार्ग तो अन्दर का व्यक्त होना चाहिए।

मुमुक्षु : ओघे-ओघे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे-ओघे अर्थात् जाना हो पश्चिम में और जाये पूर्व में, ऐसे -ऐसे विचार किये बिना चले कि अरे? यहाँ कहाँ निकले, अपने को तो ऐसे जाना था। भान बिना चलना, वह ओघे-ओघे (कहलाता है)।

मुमुक्षु : हिन्दी में बताओ महाराज, हिन्दी में।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओघे, तुम्हारी क्या भाषा होगी, हमें क्या पता पड़े? ओघे-ओघे तुम्हारी भाषा में समझ लेना।

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ओघ संज्ञा आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आती है किन्तु कोई भाषा होगी न हिन्दी में? ओघ अर्थात् कुछ भी समझे बिना कुटारा किये करना।

मुमुक्षु : दूसरे करते हों ऐसा किये करना, उसका नाम ओघ।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका नाम ओघ।

मुमुक्षु : समझे बिना दूसरे करते हों, वैसा करना, गाडरिया प्रवाह।

पूज्य गुरुदेवश्री : भेड़ है न? भेड़ का दृष्टान्त दिया जाता है। यह भेड़ है न भेड़?

भेड़ तो, भेड़ चलती है न एक, तो दूसरा भेड़ उसकी तरह नीचे देखकर चलता है परन्तु इस कुएँ में गिरेगा इसका तो पता नहीं। ऐसा।

मुमुक्षु : इसका मतलब ओघे-ओघे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसका नाम ओघे-ओघे। भेड़ चलती है न ऐसे नीचे कुएँ में नजर रखकर। दूसरा भी उसकी कुएँ में नजर है। वह जहाँ कुएँ में पड़े तो यह भी कुएँ में पड़े। भेड़िया जहाँ चले वहाँ चले, अज्ञानी जहाँ चले वहाँ चले। मार्ग का कुछ पता नहीं होता (भेड़चाल)। भेड़चाल, ऐसे कुछ होता अवश्य है न सर्वत्र। (भेड़चाल) बराबर।

कहते हैं कि **शुद्धज्ञान भी..** ऐसे उस नेत्र के साथ कहना है न? नेत्र के साथ दृष्टान्त है न इसलिए 'भी', **शुद्धज्ञान भी..** त्रिकाली शुद्धज्ञान **अथवा अभेद से शुद्धज्ञान, परिणत..** ज्ञान की प्रधानता से बात की है, बाकी सारा द्रव्य जो ध्रुव है, उसको यहाँ शुद्धज्ञान कहने में आया है। ज्ञानप्रधान कथन लेना है न? ज्ञान महा असाधारण गुण है न? तो ज्ञायक से लिया है, ज्ञायक। ऐसे नहीं तो है तो सब गुण उसमें है, शुद्धज्ञान त्रिकाल ध्रुववस्तु, ऐसी दृष्टि करनेवाला शुद्धज्ञानपरिणत। शुद्ध ध्रुव त्रिकाल, उसमें वर्तमान परिणमन सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का, स्व के आश्रय से-ध्रुव के आश्रय से जो परिणति हुई, वह **जीव भी,..** नेत्र के दृष्टान्त के साथ शुद्धज्ञान भी और यह शुद्धज्ञानपरिणत जीव भी, ऐसा। **स्वयं शुद्ध-उपादानरूप से करता नहीं है..** यह उपादान पर्याय की बात है। आगे आयेगा उपादान ध्रुव का। समझ में आया?

क्या कहते हैं? आत्मा, वस्तु जो त्रिकाल है। ध्रुव की-अपनी महासत्ता का जहाँ दृष्टि में स्वीकार किया, तब सम्यग्दृष्टि हुआ, तब उसके परिणमन में निर्मलता आयी, शुद्ध परिणमन हुआ तो वह शुद्ध परिणमनवाला जीव स्वयं शुद्ध उपादानरूप से-उस निर्मल शुद्ध पर्याय से-शुद्ध निर्मल पर्याय से.. यह शुद्ध उपादान अर्थात् पर्याय। आगे शुद्ध उपादान द्रव्य आयेगा। समझ में आया?

तुम्हारे कल आया था न? त्यक्त और अत्यक्त आया था या नहीं? परिणाम त्यक्त है और त्रिकाली, वह अत्यक्त है। वहाँ छोड़ना-फोड़ना की बात (नहीं है)। कोई प्रश्न करता था न? छोड़ने की बात है? भगवान आत्मा ध्रुव कायम रहता है। अत्यक्त अर्थात्

कभी दूसरा-दूसरेरूप नहीं होता और परिणाम है, वह त्यक्त-एक समय का परिणाम छूट जाता है, दूसरा आता है। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि इस शुद्ध उपादानरूप से द्रव्य और गुण तो नहीं अब यहाँ। समझ में आया?

धर्मी जीव को पर्याय में जो शुद्ध उपादान प्रगट हुआ, परिणति प्रगट हुई.. समझ में आया? **शुद्ध-उपादानरूप से करता नहीं..** आहाहा! द्रव्य-गुण तो करता नहीं, परन्तु धर्मी की निर्मलपर्याय हुई, वह राग का कर्ता और राग का भोक्ता नहीं। इस महाव्रत के विकल्प का वह कर्ता नहीं-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : और भोक्ता भी नहीं, ऐसे ही होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर तो यह विकार है, परद्रव्य है। समझ में आया? लोगों को ऐसा हो जाता है कि अपने को ऐसा समझ में आये? न समझ में आये ऐसा हो.. यह तो मूल चीज़ है। मूल चीज़ समझ में न आये तो तुझे जाना कहाँ है? करना क्या है? समझ में आया? शास्त्र बहुत पढ़ लिये और शास्त्र ऐसा तो हो गया उसमें? उसमें तो कुछ है नहीं। है तो इस आत्मा में है अन्दर सब बात। समझ में आया? शास्त्र पढ़ लिया तो वह ज्ञान भी ज्ञान नहीं। वह शुद्धपरिणति नहीं। आहाहा! परिणति समझे? पर्याय, अवस्था शुद्ध नहीं। अरे! गजब बात भाई!

चैतन्य भगवान पूर्णानन्द आत्मा का परिणमन हुआ, दृष्टि हुई तो वह पर्याय है। दृष्टि-पर्याय में परिणमन हुआ, परिणमन हुआ ऐसा। दृष्टि लगाई तो परिणमन हुआ। ऐसा स्वयं शुद्ध उपादान धर्मी जीव की दृष्टि ध्रुव पर होने से उसकी परिणति में सम्यग्ज्ञान और शुद्धता होने से वह शुद्धता परिणति, व्यवहाररत्नत्रय को भी करती नहीं। लालचन्दजी! गजब बात भाई!

मुमुक्षु : सत्य बात गुरुदेव!

पूज्य गुरुदेवश्री : आँख का दृष्टान्त दिया है न। वह तो जानता है। न समझ में आये ऐसी पहले शल्य नहीं रखना। यह तो केवलज्ञान लेने की ताकतवाले आत्मा को न समझ में आये, ऐसा कैसे? आत्मा को हीन माने, अपने को पामर माने..

मुमुक्षु : द्रव्य पामर कैसे होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पामरता नहीं होती। प्रभु! तुझे पामरता नहीं होती। तू तो प्रभु का प्रभु है। आहाहा! प्रभु का प्रभु अर्थात् केवलज्ञान आदि प्रभु हुए, उसका भी प्रभु, उससे भी अधिक तेरा द्रव्य है। शोभालालजी! आज चार दिन तो हो गये, तुम्हारे भगवानदास तो आये नहीं।

मुमुक्षु : आज आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक।

यह हिन्दी चलती है तो हिन्दी तो पीछे रुक गयी। कहते हैं, यह स्वयं अर्थात् ? जो आत्मा शुद्ध ध्रुव की दृष्टि हुई, सम्यग्दर्शन हुआ—ऐसी शुद्धपरिणति हुई, वह जीव भी स्वयं अपने से—शुद्ध उपादानरूप से निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के वीतरागी परिणाम ध्रुव के आश्रय से हुए, वे परिणाम भी करता नहीं है। आहा! इस राग का करता नहीं, जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस भाव का भी कर्ता धर्मी नहीं है। उसकी-धर्मी की पर्याय कर्ता नहीं है। समझ में आया ?

वह जीव भी.. एक रखा है वहाँ, क्योंकि परिणति का पहला बोल है न ? समझ में आया ? परिणति का पहला बोल, इसलिये वहाँ एक रखा है। इस पूरे अधिकार में इस परिणति के तेरह बोल आयेंगे और ध्रुव के नौ बोल आयेंगे। कहते हैं कि करता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी राग करना और ऐसा करना और ऐसा करना.. अभी तो पर का कर्ता.. वे तो-एक पण्डित तो ऐसा कहते हैं (कि) पर का कर्ता न माने वह दिगम्बर जैन नहीं। गजब बात चलती है। ऐसा करके यहाँ के-सोनगढ़वालों को छोड़ देना है। ऐसा कि यह नहीं। अरे भगवान! तू कहे इसलिए टूट जायेंगे ? आहाहा! सुन तो सही, दिगम्बर जैन किसे कहते हैं ? जिसकी दृष्टि और जिसका निर्मल ज्ञान, व्यवहाररत्नत्रय को न करे, उसका नाम दिगम्बर जैन है। समझ में आया ? आहाहा!

पर का कर्ता तो कहीं रह गया! पर की दया पालूँ और पर की हिंसा करे, अमुक और अमुक.. वह तो कहीं रह गया। यहाँ तो कहते हैं कि उसकी पर्याय में विकृतभाव है, वह विकृत वस्तु ही परद्रव्य है। जहाँ स्वद्रव्य ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई और उसका परिणमन अर्थात् निर्मलता पर्याय में व्यक्त हुई, वह निर्मल व्यक्त पर्याय शुद्ध उपादान कहने

में आती है। 'क्षणिक शुद्ध उपादान।' समझ में आया? ध्रुव-त्रिकाली उपादान आगे आयेगा? स्पष्ट किये बिना तो समझ में आता नहीं और यह तो अकेला मक्खन है। जैनदर्शन का अकेला रहस्य-मक्खन है। कहते हैं। मक्खन समझते हैं न? मक्खन। आहाहा! धर्मी जीव तो उसको कहते हैं कि जिसके परिणमन में निर्मलता आयी है। जैसा द्रव्य निर्मल और शुद्ध है, ऐसी पर्याय में निर्मलता आयी है, वह निर्मलपर्याय, मलिनपर्याय को नहीं करती। समझ में आया? आहाहा! वह निर्मलपर्याय, दोष को नहीं करती। है?

मुमुक्षु : निर्मलपर्याय किस प्रकार करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : और निर्मलपर्याय, राग को नहीं वेदती, अनुभव नहीं करती; अनुभव तो आनन्द का हुआ, यह परिणति उसकी है, यह व्यवहार है; निश्चय तो ध्रुव है, क्योंकि परिणाममात्र व्यवहार है न? आहाहा! गजब!

मुमुक्षु : यह तो एक समय की पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा व्याख्यान किस प्रकार का? कोई कहता है कि भाई! व्रत करना, महाव्रत करना, यह करना और ऐसा खाना, ऐसा पीना.. यह सब क्या? यह सुन तो सही यह सब। आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के नाथ में एकाकार होना, उसमें लिपट जाना, वह तेरा व्रत है; बाकी सब अन्दर अव्रत है। समझ में आया?

ओहो! आचार्यों ने कितना काम किया है! दिगम्बर सन्त जंगल में रहते हैं। जंगल में रहकर परमेश्वर के साथ बातें करके, परमेश्वर को नीचे उतारा है।

मुमुक्षु : स्वयं ही परमेश्वर हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर तू रहे और सिद्ध न हों हम यहाँ। यह परमेश्वर हम यहाँ आहाहा! **शुद्ध-उपादानरूप से करता नहीं है और वेदता नहीं है..** धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव, व्यवहार के विकल्प को करता नहीं और व्यवहार के विकल्प को भोगता नहीं, क्योंकि उसकी पर्याय में वह चीज़ नहीं; द्रव्य-गुण में तो नहीं। आहाहा! आहाहा! है यह बात **''दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदयं''** इतना कहा। समझ में आया?

अथवा अब दूसरा '**दिट्ठी सयं पि णाणं**' यह किसलिए लिखा है? जैसे केवलज्ञान -क्षायिकज्ञान है, वह भी कोई रागादि है ही नहीं तो कर्ता नहीं, ऐसे। यहाँ तो है, तथापि कर्ता

नहीं—ऐसा सिद्ध करने को केवलज्ञान का दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? **अथवा पाठान्तर : 'दिट्ठी सयं पि णाणं' उसका व्याख्यान.. मात्र दृष्टि ही नहीं,..** देखो! उसमें-ज्ञान में दृष्टि का विषय लिया था.. समझ में आया? वहाँ तो दृष्टि तो आयी नहीं है। समझ में आया? **मात्र दृष्टि ही नहीं,..** अर्थात् दृष्टि जो है, वह शुद्ध चैतन्य पर पड़ी है; इसलिए वह दृष्टि और दृष्टि का विषय, वह राग का कर्ता और भोक्ता नहीं, परन्तु इतनी बात नहीं है। यहाँ तो कहते हैं ज्ञान का विषय, **परन्तु क्षायिकज्ञान भी..** उस ज्ञान की परिणति में राग होने पर भी परिणति (में) करता नहीं—ऐसा सिद्ध करने को केवलज्ञान का दृष्टान्त लिया है। जैसे केवलज्ञान, राग का कर्ता और भोक्ता नहीं है; वैसे नीचे सम्यग्दृष्टि जीव-शुद्धपरिणतिवन्त (जीव भी) राग का कर्ता और भोक्ता नहीं है। समझ में आया?

मात्र दृष्टि ही नहीं, परन्तु क्षायिकज्ञान भी.. क्षायिकज्ञान भी अर्थात्? वह तो सही भाई...

मुमुक्षु : तब तो कहलाये न, 'भी' कब कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : भी कहा है न! भीखाभाई! यह बहुत सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : पूरा-पूरा लक्ष्य रखता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा?

मुमुक्षु : पूरा-पूरा लक्ष्य देता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लक्ष्य तो वहाँ-द्रव्य में देना चाहिए - ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पहले तो आपकी वाणी में लक्ष्य रखना न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले-बाद कुछ है ही नहीं। कहो, समझ में आया? आहा..हा..!

कहते हैं, मात्र दृष्टि ही नहीं, अर्थात् शुद्धज्ञान त्रिकाली की जो दृष्टि हुई, उसका जो ज्ञान परिणत हुआ वह राग और विकल्प का कर्ता नहीं है। उसी प्रकार **क्षायिकज्ञान भी..** आहाहा! क्षायिकज्ञान अर्थात् केवलज्ञान; केवलज्ञान-केवलदर्शन परमात्मा पूर्ण दशा.. अपूर्ण दशावाले भी कर्ता-भोक्ता नहीं, वैसे पूर्ण तो कर्ता-भोक्ता नहीं, उनके साथ में मिलाया इसे। समझ में आया? आहा! यह सम्यग्ज्ञानदीपिका में आता है। यह बोल। सम्यग्ज्ञानदीपिका है न!

मुमुक्षु : जी हाँ, अभी प्रकाशित हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्ज्ञानदीपिका ?

मुमुक्षु : हाँ, भावनगर से, भावनगर में प्रकाशित हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह प्रकाशित हुई हिन्दी, हिन्दी; हीरालाल की ओर से ?

मुमुक्षु : हाँ, वर्तमान हिन्दी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एक बोल है कि कोई भी प्राणी, सिद्ध से एक क्षणमात्र टिंकारमात्र भी भिन्न रहे तो मिथ्यादृष्टि-पापी-संसारी है। एक जरा भी सिद्ध से भिन्न रहे अर्थात् जैसे सिद्ध हैं, वे जानते और देखते हैं—ऐसा जानना-देखना छोड़कर एक टिंकारमात्र भी विकल्प का कर्ता हो तो मिथ्यादृष्टि-पापी-संसारी है - ऐसा दृष्टान्त दिया है सम्यग्ज्ञानदीपिका में। वह धर्मदास क्षुल्लक (ने दिया है)। यहाँ तो यह बात बहुत बार आ गयी है। समझ में आया ? आहाहा!

इतना अधिक अन्तर ? यही यहाँ दृष्टान्त दिया है। कहते हैं, केवलज्ञानी भी कुछ कर्ता और भोक्ता नहीं, वैसे सम्यग्ज्ञानी भी उनके जैसा ही है। ज्ञाता-दृष्टा (ही है) वह भी राग और विकल्प आदि का कर्ता-भोक्ता नहीं है। धन्नालालजी! आहाहा! कहते हैं कि मात्र दृष्टि ही नहीं परन्तु क्षायिकज्ञान भी, ज्ञान का लिया है न ?

'**दिट्ठी सयं पि णाणं**' यह वापस ज्ञान, दृष्टि का विषय और ज्ञान पूरा किया और यहाँ फिर पर्याय में ज्ञान पूरा हुआ, उस पर्याय में जो ज्ञान पूर्ण-केवलज्ञान हुआ वह **भी निश्चय से कर्मों का अकारक..** है। वास्तव में तो उनको तो है ही नहीं-ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ को रागादि है नहीं तो कर्ता परिणमन है ही नहीं - ऐसा कहना है। क्या कहते हैं ? कि सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी को राग का परिणमन नहीं है, भाई! क्या कहा, समझ में आया ? यह दृष्टान्त क्यों दिया उसके साथ ? (केवलज्ञानी को) ऐसे राग का परिणमन नहीं, इसलिए कर्ता नहीं; वैसे शुद्धज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव को भी राग का परिणमन नहीं। समझ में आया ? गजब बात की भाई!

क्षायिकज्ञान भी वास्तव में रागादि का अकारक, अर्थात् रागरूप परिणमन ही नहीं, लो! और **अवेदक..** वह भी राग का वेदक नहीं। वहाँ भी अकेला आनन्द का वेदन है,

केवलज्ञान में तो अकेला ज्ञान पूर्ण और आनन्द का वेदन; वह भी जैसे करता अर्थात् परिणमन नहीं; वैसे सम्यग्दृष्टि का दृष्टि ध्रुव पर परिणमन होने से उसको भी राग का परिणमन और राग का वेदन है नहीं।

यह चीज ऐसी है—ऐसा पहले ख्याल में, दृष्टि में तो ले! आहाहा! अरे भगवान! कितने ही ऐसा कहते हैं—यह तुम केवली के साथ बातें करते हो, सिद्ध के साथ? नीचेवाले को तुम सिद्ध जैसा बना देते हो—ऐसा कितने ही कहते हैं? यह तो केवलज्ञान होने की, केवलज्ञान की वार्ता है। यहाँ तो केवलज्ञानी की बातें हैं भाई! केवलज्ञानी कहो या अकेला केवलज्ञान। तू त्रिकाल है, यह उसकी बात है ले! बहुत से ऐसा कहते हैं कि यह तो केवलज्ञान की बातें हैं। आहाहा! बड़ी-बड़ी बातें कहते हैं। बड़ी नहीं, यह तो तेरे हित की बातें हैं। सुन न अब! समझ में आया? बहुत से ऐसा कहते हैं। नहीं बाहर से आते है वे? (-ऐसा कहते हैं)। केवलज्ञान की बातें करते हैं, सिद्ध की-शुद्धनय की। यह तो केवलज्ञान हो वहाँ हो। यहाँ नीचे कहाँ शुद्धनय होता है?

अवेदक - **कर्मों का अकारक तथा अवेदक भी है।** इस प्रकार उसके साथ में लिया। जैसे शुद्धपरिणत जीव अकारक और अवेदक है, वैसे यह भी अकारक और अवेदक है-यह भी अकारक और अवेदक।

मुमुक्षु : उसके साथ अवेदक भी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अवेदन, उसको राग का वेदन नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : अकारक पूरा नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : वेदन, वेदन भी। समझ में आया? इतना भी नहीं। आगे विशेष कहेंगे.. लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

समयसार, ३२० गाथा। जयसेनाचार्य की टीका। गाथा का तात्पर्य क्या है, वह टीका लेंगे। तात्पर्य क्या है तात्पर्य? सारे जैनदर्शन का तात्पर्य सार क्या है?-वह बात चलती है। जरा सूक्ष्म है। अनन्त काल से... कहते हैं कि यहाँ तो धर्म की शुरुआत कही है परन्तु आत्मा ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव—ऐसा होने पर भी, अनादि से पुण्य और पाप, विकल्प जो राग अशुद्ध विकार, उसरूप परिणमता है। उसके कर्तारूप परिणमता है और भोक्तारूप-भोक्तारूप से परिणमता है, वह अधर्म है। बाह्य के साथ कोई धर्म-अधर्म की चीज़ को सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी निज चीज़, जाननस्वभाव-आनन्दस्वभाव को भूलकर, पुण्य और पाप के विकल्प-शुभ-अशुभराग का कर्ता होकर उसको भोगे, उसका नाम अधर्म, उसका नाम अशुद्धविकार का परिणमन, उसका नाम संसार है।

मुमुक्षु : उसमें दुःख तो नहीं होवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है, वह दुःख है। इस विकाररूप परिणमना, वही दुःख है। अधर्म है तो दुःख यही है। समझ में आया?

भगवान आत्मा नित्यानन्द, नित्य अविनाशी ज्ञान और आनन्द का भण्डार प्रभु है, ऐसी चीज़ को छोड़कर / भूलकर; पर का कर्ता होता तो नहीं माने तो भी चैतन्य। यहाँ तो अपनी पर्याय में वस्तु की दृष्टि बिना, अपनी चैतन्य महाप्रभु सत्ता होनेवाला पदार्थ, उसकी सत्ता का स्वीकार नहीं करके, अनादि से उसकी-अज्ञानी की दृष्टि शुभ और अशुभ विकल्प—दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, काम, क्रोध—ऐसे विकल्प अर्थात् राग का परिणमन करता है, वह कर्ता और उसका भोक्ता है, वह दुःख का भोक्ता है। समझ में आया? परचीज़ तो भोगने में आती ही नहीं, वह तो जड़ है। यह शरीर है, जड़ है, स्त्री का शरीर भी जड़, मिट्टी, माँस और हड्डियाँ हैं; दाल, भात, रोटी, सब्जी भी जड़, मिट्टी-धूल है। उसका प्रभु आत्मा (जो कि) रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित चीज़ (है, वह) ऐसी जड़ चीज़

को कैसे करे और कैसे भोगे ? समझ में आया ? वह तो कर्ता भी नहीं और जड़ शरीर का, दाल, भात, रोटी का भोक्ता भी आत्मा नहीं। समझ में आया ?

अज्ञान में भी (कोई) पर का कर्ता-भोक्ता नहीं। (मात्र) अपनी चीज़ जो शुद्ध चैतन्य है, उसे भूलकर राग और पुण्य-पाप के विकल्प-शुभाशुभभाव के सन्मुख देखकर, चैतन्य को पीठ देकर-अपने सम्पूर्ण निर्मलस्वभाव को पीठ देकर विकार के परिणमन में कर्तारूप होकर, विकार का भोक्ता है। वह अशुद्धता का परिणमन, वह कर्ता और भोक्ता, वही संसार, वही दु:ख, वही चार गति में रुलने का बीज है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

अब धर्म कैसे होता है, यहाँ तो यह बात चलती है। यहाँ तो आया, जैसे दृष्टि... चक्षु पर... जैसे अग्नि जलानेवाला अग्नि जलाता है, वैसे चक्षु किसी भी परपदार्थ को करती नहीं। चक्षु करे ? (नहीं); और जैसे लोहे का गोला उष्ण होकर, लोहा उष्णता में तन्मय होकर, लोहा उष्णता को भोक्ता है; वैसे आत्मा, पर को भोगता नहीं है। यह आँख भोक्ता नहीं। आँख पर की कर्ता नहीं और आँख पर की भोक्ता नहीं।

जैसे अग्नि जलानेवाला अग्नि जलाता है, वैसे आँख पर की कर्ता नहीं हो सकती। इसी तरह लोहे का गोला उष्ण हो जाता है; वैसे आँख, पर की भोक्ता नहीं हो सकती। ठीक है ? वैसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द वस्तु ध्रुव चैतन्य (है), वह राग का भी कर्ता नहीं और पुण्य—दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प है, उसका भी कर्ता नहीं, उसका भोक्ता ही नहीं। आँख के दृष्टान्त से। आँख समझे न ? चक्षु। समझ में आया ?

दूसरा भी दृष्टान्त देंगे। कल तो क्षायिकज्ञान का ही दिया कि जैसे दृष्टिवन्त धर्मात्मा शुद्ध भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति; विकार और शरीरादि से रहित और अपने आनन्दादि शक्ति / गुण से सहित (है), ऐसे अन्तर्मुख ध्रुवस्वरूप पर दृष्टि पड़ने से उसके परिणमन में क्या आया ? शुद्ध परिणमन हुआ। जो मिथ्या परिणाम था, राग और द्वेष, पुण्य और पाप का कर्ता होकर उसको भोक्ता था, वह अज्ञानभाव था, वह दु:खभाव था। उस स्थान में जब शुद्ध चैतन्यवस्तु जैन वीतरागमूर्ति आत्मा की दृष्टि करके जो शुद्धपरिणमन हुआ तो शुद्ध जीव भी राग का कर्ता-भोक्ता नहीं; वैसे शुद्धज्ञानपरिणत जीव भी कर्ता-भोक्ता नहीं। समझ में आया ? समझ में आवे वैसी बात है, हों ! भाषा तो सादी है परन्तु अब (भाव तो गम्भीर है)। धन्नालालजी ! समझ में आता है बापू ! यह तो बापू ! प्रभु का मार्ग

अन्दर का और लॉजिक से-न्याय से तो कहने में आता है। अब पकड़ना न पकड़ना, यह तो उसकी योग्यता प्रमाण है। देखो! हमारे पण्डितजी भी, आहा..हा..! भगवान!

कहते हैं जैसे चक्षु / आँख पर की कर्ता-भोक्ता नहीं; वैसे शुद्धज्ञान, त्रिकाली ज्ञानानन्द भगवान आत्मा और ज्ञानानन्द की दृष्टि हुई, (वह) शुद्धपरिणमनवाला धर्मी (हुआ) वे दोनों-यहाँ तो दृष्टि की बात पहले की है। भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब, चैतन्य-सूर्य—ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि होकर; जैसे राग और.. पुण्य मेरा मानकर परिणमन करता था, वह दु:ख था, मलिन था। मैं त्रिकाल ध्रुव, शुद्ध आनन्दकन्द हूँ—ऐसी दृष्टि होकर शुद्ध-पवित्र मलिनतारहित आनन्द की परिणति / शान्ति की अवस्था हुई, उसका नाम धर्म और वह धर्म है। धर्मी जीव अथवा धर्म परिणत पर्याय, उस राग और पुण्य-पाप की क्रिया का कर्ता नहीं और राग की क्रिया का भोक्ता भी नहीं। आहा..हा..! पहले समझना तो चाहिए न कि क्या चीज़ है? कैसी है? यह जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं, वस्तु का स्वभाव है। जैन अर्थात्

जिन सोहि है आत्मा, अन्य सोहि है कर्म।
कर्म कटे जिनवचन से, ये जिनवचन का मर्म॥

भगवान परमात्मा, जो आत्मा सर्वज्ञ हुआ, वीतरागसर्वज्ञ हुआ तो कहाँ से हुआ? अपने स्वभाव में... पहले यह दृष्टान्त दिया था छोटी पीपर का-चौंसठ पहरी चरपराहट अन्दर पड़ी है और हरा रंग अन्दर पूरा पड़ा है, तो शक्ति की व्यक्तता होती है। है, उसमें से-प्राप्त की प्राप्ति है। है उसमें से आता है। यह चौंसठ पहरी चरपराहट जो बाहर में आयी और हरा रंग आया। काला रंग, पीपर है न काली, काली का व्यय होकर हरा रंग हुआ; चरपराहट अल्प थी, उसका नाश होकर चौंसठ पहरी अर्थात् रुपया-रुपया, सोलह आना (पूर्ण) चरपराहट प्रगट हुई। कहाँ से हुई?

मुमुक्षु : अन्दर में शक्ति थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में है। कुएँ में है, वह हौज में आता है। अवेड़ा (हौज का गुजराती शब्द) को तुम्हारे क्या कहते हैं? पानी आता है न बाहर में? अवेड़ा तो अपनी (गुजराती) भाषा है परन्तु हिन्दी... कुआँ होता है न कुआँ, उसमें से पानी निकलता है और बाहर पशुओं को पिलाते हैं।

मुमुक्षु : जानवरों को पीने के लिये हौज बनाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वह। पशु को पीने के लिये बाहर बनाते हैं परन्तु वह कुएँ में है, वह आता है या नहीं अन्दर में? या कुएँ में नहीं अन्दर में और बाहर आया? कुएँ में है पेशाब और यहाँ आया पानी – ऐसा है? समझ में आया? वैसे भगवान आत्मारूपी महा कुआँ–सागर–समुद्र है, उसमें ज्ञान और आनन्द सोलह आने–पूरा–पूरा–रुपया रुपया–सत्वरूप शक्तिरूप स्वभाव पड़ा है। समझ में आया?

जैसे पीपर को घोंटने से प्रगट होता है, वैसे भगवान आत्मा... यहाँ कहा शुद्धज्ञान, अकेला ज्ञायकभाव मैं। कोई कल पूछता था कि इस ज्ञायक की दृष्टि कैसे करना? परन्तु पहले यह समझे तो सही कि अनादि की दृष्टि इसकी पुण्य और पाप के विकल्प अर्थात् आस्रव और विकार पर पड़ी है। उस दृष्टि को अभी गुलांट खिलाना है। गुलांट समझे? परिवर्तन करना है, बदलना है। मैं तो ज्ञायक चिदानन्द ध्रुव आनन्द का धाम चैतन्यबिम्बस्वरूप अविकारी स्वभाव का सत्य एकरूप मैं हूँ – ऐसे शुद्ध की दृष्टि जब हुई, तो परिणमन अर्थात् वर्तमान प्रगट दशा में भी शुद्धता, आनन्दता, वीतरागता, पर्याय प्रगट हुई, उसका नाम धर्म है। समझ में आया? अरे! गजब धर्म, भाई! लोग कहते हैं सीधा सट्ट था, उसमें यह महंगा कर दिया। महंगा नहीं, यही चीज़ है। यह बात ही यह है परन्तु दुनिया समझे नहीं तो कुछ का कुछ धर्म का रूप दे दिया। ऐसा है नहीं। समझ में आया? धर्म का रूप ही दूसरा है।

कहते हैं, ऐसा शुद्धज्ञान पर का कर्ता–भोक्ता नहीं। राग का नहीं, व्रत का–विकल्प का कर्ता भी शुद्धज्ञान–धर्मपरिणत जीव (नहीं है)। जो अज्ञान था, तब तक तो कर्ता था, तब तो दुःखी था। स्वरूप का आनन्द और ज्ञान का अन्दर वस्तु की शक्ति का भान हुआ, अनुभव हुआ तो पर्याय में–प्रगट दशा में जो दुःख का अनुभव था, उसका नाश होकर आनन्द का अनुभव (हुआ)। शक्ति में जो आनन्द पड़ा है, वह आनन्द पर्याय में आया। वह आनन्दपरिणत जीव, राग को करता नहीं है।

रात्रि को कोई पूछता था न कि देव–समकिती युद्ध करते हैं, अमुक करते हैं...

मुमुक्षु : वह तो सरागसम्यग्दृष्टि ऐसा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सराग... भाई! यह तो सब व्यवहार की बात है। निश्चय में–

यथार्थ में तो धर्मी जीव अपने शुद्धरूप परिणमन में ही है। वह युद्ध का राग आया, उसमें वह है ही नहीं। उसका जाननेवाला, **अपनी पर्याय में अपने से अपने कारण से राग का ज्ञान करता है। अपनी सत्ता के सामर्थ्य से (राग का ज्ञान करता है)। राग है, इसलिए ज्ञान करता है-ऐसा भी नहीं**। अलौकिक बात है भगवान! शोभालालजी! आहा..हा..! भगवानदासजी! चार दिन से नहीं थे, आज पाँचवें दिन आये हैं। दरकार इतनी! लड़कों को सब ठीक करना हो न बाहर का-धूल-धाणी का।

मुमुक्षु : करने से कहाँ होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वहाँ मानता है न। श्रावण महीना है। पैसेवाले लोग सब आते हैं। ऐसा होगा कुछ, ऐसा होगा। (लड़का) ऐसा कुछ होगा। धुएँ को पकड़ना। यहाँ कहते हैं। ए ई! धुआँ समझे ? धुआँ। धुआँ न रहे, बाँथ में धुआँ नहीं रहता, वैसे परचीज़ अपने में नहीं रहती। परचीज़ को अपनी करने जाये तो नहीं रहती, वह तो उसके कारण से होता है।

यहाँ कहते हैं तेरे हितबुद्धि-धर्मबुद्धि करना हो तो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप है, चिदानन्दस्वरूप है-ऐसा अनुभवदृष्टि करके वेदन करना और वह पर का, राग आदि का कर्ता नहीं-एक बात। कहते हैं दृष्टि का विषयवन्त तो ऐसा है, परन्तु केवलज्ञानी परमात्मा भी राग के और पर के कर्ता नहीं हैं। नहीं हैं तो नहीं हैं, वह कर्ता नहीं-ऐसा बताया। यहाँ तो है तो भी कर्ता नहीं। केवलज्ञानी को तो राग है नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा अरिहन्तदेव वीतराग हुए, उनको तो राग नहीं है, तो वे राग के कर्ता नहीं और राग के भोक्ता नहीं; ऐसा दृष्टान्त देकर केवली के साथ साधक को मिलाया। समझ में आया ? बात ऐसी है भगवान!

कल एक न्याय कहा था। सम्यग्ज्ञानदीपिका में से एक न्याय कहा था। कहा था। वह कहा था। सम्यग्ज्ञानदीपिका है। संवत् १९४८ के साल में एक दिगम्बर क्षुल्लक हो गये हैं - धर्मदास क्षुल्लक हुए हैं। समझ में आया ? 'भेदज्ञान से भ्रम गयौ नहीं रही कुछ आस'। ऐसे संवत् ४८ में दो पुस्तकें बनायी हैं (१) सम्यग्ज्ञानदीपिका और (२) स्वात्मानुभव -मनन। हम तो बहुत साल से देखते हैं न! सम्यग्ज्ञानदीपिका ७८ के साल में देखा था। ७८, ४८ वर्ष हुए।

मुमुक्षु : वह तो दिगम्बर होने की तैयारी थी न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सत्य है। ७८ में जंगल में जाते थे अकेले पुस्तक लेकर, सम्यग्ज्ञानदीपिका थी। उसमें यह लिया है 'सिद्धसमान अपने आत्मा को न जाने और जैसे सिद्ध ज्ञाता-दृष्टा है, वैसे छोड़कर एक राग का भी कर्ता हो तो सिद्धसमान अपने को माना नहीं, वह संसारी-मिथ्यादृष्टि-पापी है' - ऐसा लिया है। धन्नालालजी! तुम्हारी बीड़ियाँ-बीड़ियाँ तो कहीं रह गयीं! भगवानदासजी! बड़े सेठ हैं, ऐसे सेठ बुन्देलखण्ड के, धूल में भी सेठ नहीं। सुन न अब। यहाँ तो आत्मा श्रेष्ठ भगवान। सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। चिदानन्द भगवान आनन्दकन्द प्रभु के सन्मुख देखकर... जो विमुख था, तब तो अज्ञानी था; अब सन्मुख देखकर जो अनुभव हुआ, वह राग का कर्ता नहीं और आनन्द का कर्ता है।

यह यहाँ तक आया। **वैसा होता हुआ...** है न, कौन सी लाईन है नीचे से? देखो! **(शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है ?** देखो! शुद्धज्ञानपरिणत जीव... नीचे से चौथी लाईन **(शुद्धज्ञानपरिणत जीव) क्या करता है ?** नीचे से चौथी लाईन। चौथी कहते हैं न? क्या कहते हैं? आहा..हा..! देखो! जैसे सर्वज्ञ परमात्मा वीतराग अरहन्त प्रभु जैसे जगत के साक्षी-देखने-जाननेवाले हैं; वैसे धर्मी जीव अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूप का ज्ञानरूप परिणमन हुआ, तो कहते हैं वह शुद्धपरिणत जीव क्या करता है। **[जाणदि य बंधमोक्खं] जानता है।** जानता है। **किसको ? बन्ध-मोक्ष को।** आहा! यह तो कहते हैं कि राग का भाव है, उसे भी जानता है और राग छूट जाये तो मोक्ष की पर्याय (हो), उसे भी ज्ञानी जानता है। राग करता भी नहीं और राग छोड़ता भी नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

भाई! भगवान! मार्ग तो... तात्पर्य कहते हैं न यहाँ? रहस्य है, जैनदर्शन का रहस्य है। जैनदर्शन, वह विश्ववस्तु जो है, उसका रहस्य है। विश्ववस्तु जो है आत्मा, परमाणु आदि। उस आत्मा का रहस्य यह है। समझ में आया? आहा..हा..! कहते हैं, जैसे सर्वज्ञ परमात्मा... उन्हें तो बन्ध है नहीं, मोक्ष है। वे तो जानते हैं। वैसे धर्मी जीव, सम्यग्दर्शन जहाँ से हुआ... लालचन्दजी! गजब बात! मैं तो चैतन्य आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानसत्ता स्वभाववाला मैं हूँ। राग और पुण्य-पाप आदि सत्ता मुझमें नहीं है। मैं राग से-पुण्य से खाली और अपने पूर्ण ज्ञान-आनन्दस्वभाव से भरा पड़ा हूँ। ऐसी चीज़ की जहाँ दृष्टि हुई,

तो कहते हैं कि वह बन्ध को जानता है। आहा..हा..! और मोक्ष को भी जानता है। मोक्ष को करना है, और ऐसा-वैसा अब नहीं। अरे! समझ में आया? यह क्या कहते हैं? समझ में आया? बन्ध को तो करना नहीं है, परन्तु मोक्ष का भी करना नहीं है। मोक्ष होता है, उसे जानते हैं -ऐसा कहते हैं। पण्डितजी!

मोक्ष अर्थात् पूर्ण निर्मलपर्याय, पूर्ण आनन्द की दशा। पूर्ण आनन्द की दशा अर्थात् मोक्ष; विकारी की दशा अर्थात् संसार। उसका अभाव होकर पूर्ण आनन्द-अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण ज्ञान (प्रगट हो), उसका नाम मोक्ष है। तो कहते हैं जब शुद्धज्ञानपरिणति, आत्मा (की) दृष्टि होकर अनुभव हुआ, वह तो मोक्ष को भी करता नहीं। हो जाता है। ऐ ई! ज्ञानी के व्यायाम की मस्ती भिन्न-भिन्न है, अलग प्रकार की है। ऐ ई! नन्दकिशोरजी! देखो! मार्ग जैनदर्शन का!

कहते हैं, वह तो बन्ध को और मोक्ष को जानता है। आहा..हा..! बन्ध के परिणाम और मोक्ष के परिणाम को जानता है, करता नहीं। यह क्या? समझ में आया? क्योंकि जहाँ शुद्धदृष्टि हुई और धर्म का शुद्ध परिणमन हुआ, फिर मोक्ष को करूँ... परिणाम तो परिणमता ही है, परिणाम तो परिणमता ही है, **वह तो धारावाही होता है। उसमें धारावाही होता है, उसमें मैं करूँ - ऐसा रहता नहीं।** पण्डितजी! यह गाथा जरा बहुत ऊँची है। समझ में आया? यह तो यहाँ क्लास (शिविर) होवे, तब थोड़ा लोगों के कान में तो पड़े। ऐसी मनुष्यदेह मिली और जैनदर्शन सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा हुआ मार्ग / चीज़ क्या है, वह चीज़ कान में भी न पड़े तो उसे विचार में कैसे ले और दृष्टि में कैसे परिणमावे? आहा..हा..! समझ में आया?

कहते हैं, अरे! धर्मी जीव, सम्यक्चीज़ वस्तु चैतन्यभगवान पूर्ण प्रभु वस्तु—ऐसी पूर्ण की दृष्टि हुई तो वह ध्रुवस्वभाव-भगवान दृष्टि में आया। कहते हैं कि ज्ञान में, बन्ध होता है, राग जरा (होता है उसे) जानते हैं। अपने में बन्ध - ऐसा नहीं। राग भी भिन्न, यह मोक्ष की पर्याय भी मेरे द्रव्य से भिन्न। आहा..हा..! समझ में आया? ऐसी बात है भगवान! आहा..हा..! मुझे पामर कहकर... पामर को प्रभु कहकर बुलाते हैं। वे सन्त ऐसा कहते हैं। ७२ गाथा में कहा था न? भगवान आत्मा! ऐसा कहा था। आहा..हा..! जैसे इसकी माँ, झूले में इसे सुलाने के लिये इसका गीत गाती है। समझ में आया? यदि इसकी निन्दा करे,

गाली दे तो नहीं सोयेगा, यह किसी समय देख लेना। ऐसा होवे तो भले बालक हो... समझ में आया ? परन्तु इसकी महिमा करे–म्हारो डिकरो डायो... यह तो हमारे काठियावाड़ी भाषा है। तुम्हारी कुछ भाषा होगी। डिकरो डायो; डायो समझे ? होशियार, सयाना, मामा के घर गया और छुआरा–खोपरा लाया – ऐसे गुणगान करे तब सो जाता है, सोता है। उसको गाली दे तो नहीं सोयेगा। मारा रोया ! बालक नहीं सोयेगा वह। अव्यक्तरूप से भी उसकी प्रशंसा रुचती है। ऐ शोभालालजी ! जैसे माता उसको सुलाती है, सन्त जगत को जगाते हैं – जाग रे जाग भगवान ! तू तीन लोक का नाथ आड़ में पड़ा, राग और पर्यायबुद्धि की आड़ में भगवान तुझे दिखाई नहीं देता। समझ में आया ?

'तिनके के ओट में पर्वत रे, पर्वत कोई देखे नहीं, तिनके की ओट में'। इतना बड़ा पर्वत हो, एक इतना तिनका रखा हो, पूरा पर्वत नहीं दिखता। ठीक है ? देखना तो यहाँ से (आँख से) है न ? आँख के ऊपर इतना तिनका रखे, लो न, इस चश्मे पर काला आवरण लगा दे तो पूरा पर्वत, पूरा समुद्र भी नहीं दिखता।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, इस राग और विकल्प की एकताबुद्धि में दिखता नहीं है। समझ में आया ? बाहर तो बहुत क्रिया करके मर गया, उसमें क्या है ? परन्तु यह विकल्प–राग उठता है, उसकी एकताबुद्धि अथवा पर्याय की एकताबुद्धि... आहा..हा.. ! उसमें भगवान तीन लोक का नाथ पूर्णानन्द प्रभु, उस तिनके की आड़ में जैसे पर्वत नहीं दिखता; वैसे राग की एकता में, पर्याय की बुद्धि में द्रव्यबुद्धि त्रिकाल नहीं दिखता। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि आहा..हा.. ! ऐसा जब भान हुआ... समझ में आया ? शुद्धचैतन्य ज्ञानस्वभावी पवित्रधाम आत्मा है—ऐसी दृष्टि में सम्यग्दर्शन शुद्धरूप से परिणमन हुआ... अभी चौथे गुणस्थान की बात है। आहा..हा.. ! समझ में आया ? इस चौथे का ठिकाना नहीं और पाँचवाँ तथा छठा लेकर बैठ गये। यह बारह व्रत है और प्रतिमा है... धूल भी नहीं है, सुन तो सही ! समझ में आया ? ऐ ई भगवानदासजी ! ऐसे सेठ हों और फिर सुविधाभोगी हों फिर कुछ त्याग करे तो ओहो..हो.. ! कहो, समझ में आया ? आहा..हा.. !

कहते हैं यह झूले में–अज्ञान में सोता है। ये परमात्मा सन्त इसे जगाते हैं। हे जाग

रे जाग नाथ ! यह निद्रा अब तुझे नहीं हो सकती। समझ में आया ? इस राग और पुण्य के विकल्प में भगवान सारा द्रव्य पड़ा है न प्रभु ! आहा..हा.. ! **एक समय की पर्याय अर्थात् व्यक्त दशा पर तेरी रुचि है तो द्रव्य नहीं दिखता।** समझ में आया ? और कहते हैं, जहाँ द्रव्य का भान हुआ... आठ वर्ष की बालिका हो, अरे ! मेंढ़क हों मेंढ़क, डेढ़का (गुजराती में) कहते हैं न ? मेंढ़क, मेंढ़क, मेंढ़क। भगवान के समवसरण में आत्मज्ञान पाता है। आत्मा है या नहीं ? भगवान के समवसरण में परमात्मा बिराजते हैं। अभी त्रिलोकनाथ सीमन्धर भगवान महाविदेहक्षेत्र में (बिराजमान हैं)। समझ में आया ? उन भगवान के समीप मेंढ़क (आत्मज्ञान पाते हैं)। आहा..हा.. ! मेंढ़क तो शरीर मेंढ़क है। आत्मा कहाँ मेंढ़करूप हो गया है ? समझ में आया ? इस ज्ञानस्वरूप भगवान का भान तो भगवान के समवसरण में मेंढ़क कर लेता है। वह भी ऐसा जानता है कि बन्ध और मोक्ष का तो मैं जाननेवाला हूँ। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : वह तो छोटा सा शरीर....

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा तो शरीर छोटा है। वस्तु (आत्मा) छोटी है ? कहो, यह क्या कहलाता है तुम्हारे ? उसने नहीं मारा था बम, एटम बम, बम मारा तो कहीं उस दो सौ-ढाई सौ योजन में भुक्का उड़ गया था कहीं (हिरोशिमा) कहाँ ? हाँ, बम इतना छोटा, बम में अनन्त परमाणु है – कहते हैं छोटा, छोटा वहाँ नहीं है। एक बम छोटा इतना लो राई जितना, उसमें भी अनन्त परमाणु-रजकण हैं।

ऐसी शक्ति पड़ी है कि ढाई सौ योजन का भुक्का उड़ा दिया। शक्ति इतनी है, वह तो निमित्त हुआ। यहाँ तो दृष्टान्त देना है, हों ! रजकण पर का चूरा कर सकता है ऐसा नहीं है। क्योंकि अपनी सत्ता को छोड़कर पर की सत्ता को छूता ही नहीं। आहा..हा.. ! परन्तु उसमें शक्ति इतनी है कि हजारों योजन में राख कर डाले, चूरा कर डाले; इसी प्रकार भगवान आत्मा (का) क्षेत्र भले छोटा हो, भगवान आनन्दधाम (है)। समझ में आया ? शुद्ध चैतन्यवस्तु, उस मेंढ़क की देह में भी तो आत्मा तो ऐसा ही है; जैसा यहाँ (अपना) आत्मा है, ऐसा वह आत्मा है। समझ में आया ?

वह भी आत्मा का सम्यग्दर्शन-शुद्धस्वभाव का परिणमन करता है तो वह बन्ध को जानता है। समझ में आया ? किसी ने प्रश्न किया है, निहालभाई से प्रश्न हुआ था कि तुम

कहते हो कि ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. भाई! प्रश्न है उसमें। ध्रुव नित्यानन्द को पकड़ो, परन्तु मेंढ़क कहाँ पकड़े त्रिकाल को? वह तो पर्याय को जानते, संवर-निर्जरा आदि की हुई उसे, सुख को वेदते हैं, प्रभु! सुख को-आनन्द को वेदते हैं न मेंढ़क? तो आनन्द का धाम क्या है—ऐसी दृष्टि हुए बिना सुख का वेदन नहीं हो सकता। समझ में आया? निहालभाई से किसी ने प्रश्न किया था। पुस्तक दी थी तुम्हें, पुस्तक छोटी, हाँ! बड़ी तो अभी सूक्ष्म है, तुम्हारा काम नहीं। अजर प्याला है। निहालभाई का अजर प्याला है। ऐ ई! कहाँ गये? ऐ राजमलजी! राजमलजी याद आये, तुम्हारे लिये ले गये थे, यह दलाली करके। समझ में आया?

भगवान आत्मा... उसने पूछा भाई! तुम ध्रुव... नित्य... नित्य... नित्य... ध्रुव की दृष्टि करो, ध्रुव की दृष्टि करो, त्रिकाल की दृष्टि करो तो सम्यग्दर्शन होगा; पर्यायदृष्टि छोड़ो तो (सम्यग्दर्शन होगा), मेंढ़क को क्या ध्रुव की दृष्टि हुई? उसको तो आनन्द का अनुभव है। तो कहते हैं कि भगवान! सुन तो सही! जो दुःख का वेदन था, राग और द्वेष का वर्तमान दशा की ओर के लक्ष्य से वेदन था, वह आनन्द का वेदन आया, वह कहाँ से आया? उस ध्रुव पर दृष्टि पड़ी, तब आनन्द का वेदन हुआ। समझ में आया? सूक्ष्म बात है भगवान! यह तो अकेला मक्खन है-प्रीतिभोज है, हरख जीमण, हरख जीमण समझे? विवाह के बाद नहीं करते? अन्तिम दिन का भोजन करते हैं न!

यहाँ कहते हैं ओ..हो..! वह तो जानता है। **किसको? बन्ध-मोक्ष को**। आहा..हा..! **मात्र बन्ध-मोक्ष को नहीं,...** इतना ही नहीं तब [**कम्मुदयं णिज्जरं चेव**]... कम्मुदयं णिज्जरं—दो बोल लिये हैं। कर्म उदय **शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को...** क्या कहते हैं? जैसा कर्म का उदय आवे, उसे भी जानता है। अशुभ का उदय हो तो ऐसा जाने, शुभ का हो तो ऐसा जाने, जानता ही है; उसे दूसरा कुछ है नहीं। अशुभ-शुभ कर्म में वह है ही नहीं। शुभ-अशुभ कर्म का उदय आया और शुभ-अशुभ के कारण से बाहर में प्रतिकूल-अनुकूल संयोग हुआ, उसे भी जानता ही है। कोई प्रतिकूल है और अनुकूल है-ऐसा है नहीं। आहा..हा..! देखो यह धर्म।

पहले निर्णय तो करो कि यह मार्ग ऐसा है, दूसरा मार्ग है नहीं। आहा..हा..! कहते हैं **शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को...** जैसा शुभ हो तो शुभ को जाने, वह तो ज्ञान की पर्याय,

शुभ आया तो जानने की पर्याय प्रगट हुई, उसी समय; समय तो एक है। कि यह शुभ है, तो ज्ञान की पर्याय हुई – ऐसा तो है नहीं। अपने में से ही ऐसा स्व का ज्ञान और राग शुभ हो या अशुभ हो, उदय शुभ हो या अशुभ हो, ऐसे जानने की पर्याय अपनी सत्ता से, अपने कारण से, राग की अपेक्षा रखे बिना अपनी पर्याय में जानने की पर्याय प्रगट होती है। आहा..हा.. ! इसमें थोड़े एक अक्षर का फेरफार हो तो सारा तत्त्व बदल जाये – ऐसी बात है। फिर से... हैं ? फिर से, ऐसा कहा...

मुमुक्षु : जादू की लकड़ी...

पूज्य गुरुदेवश्री : जादू की लकड़ी, जादू की लकड़ी कहते हैं। अब तो लकड़ी रही नहीं। पहले सूखड़ की थी। अब दूसरी यह प्लास्टिक की आ गयी। वह डाक्टर आया था न चन्दूभाई, उसने बनायी है। हाथ में पसीना न हो और शास्त्र को छूएँ नहीं, इस कारण से (बनायी है) उसमें लोग कहते हैं–बहुत लोग कि जिस पर लकड़ी फिरावे, उसके पास पैसा हो जाता है। समझ में आया ? पहले से पुण्य की ऐसी छाप है न ? आहा..हा.. ! तो कहते हैं, यहाँ तो यह तत्त्व की लकड़ी फिरे तो उसका कल्याण हो जाये, उसका नाम यहाँ जादू है। इस लकड़ी में क्या है, यह तो धूल है और पैसा मिले उसमें क्या है ? वह भी धूल है।

यहाँ कहते हैं, धर्मात्मा उसे कहते हैं–कर्मोदय को अपना न जाने, शुभ को अपना न जाने, अशुभ को अपना न जाने परन्तु शुभ–अशुभ की ज्ञान की पर्याय हो, उसे जाने ऐसा है बस। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म बात भाई ! जैनधर्म कैसा है, यह बात समझना जगत को कठिन हो गया है। जैनधर्म ऐसा है–पर की दया पाले वह जैनधर्म है, ऐसा है ?

मुमुक्षु : स्वयं ही जैन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं ही जैनस्वरूप है। सुन तो सही ! ऐ ई ! इसका अर्थ क्या ? कि जो पुण्य–पाप का राग है, वह तो दोष है, कृत्रिम–क्षणिक है, उससे रहित है– राग–द्वेषरहित ही चैतन्यद्रव्य है। जो है राग–द्वेषरहित है तो वीतरागता अन्दर में प्रगट है तो प्रगट होती है। जिनस्वरूप ही आत्मा है। समझ में आया ? ऐसा दृष्टि में भान हुआ तो कहते हैं कर्म उदय को जानता है। आहा..हा.. ! समझ में आया ?

वह आता है न ? 'काग बीट सम गिनत है सम्यग्दृष्टि लोग।' 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखा भोग, काग बीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोग।' आहा..हा.. ! मन्दिर में

लिखा है, इन्दौर में वह काँच का मन्दिर है न भाई का-सेठ का-सर हुकमचन्द का है, उसमें ऊपर लिखा है, अर्थ समझते नहीं।

धर्मी जीव, चाहे तो अनुकूलता का ढेर हो, 'काग बीट सम मानता है।' मनुष्य की विष्टा तो अभी सूकर ही खाता है, कौवे की विष्टा तो निकलते ही तुरन्त सूख जाती है कि सूकर नहीं खा सकता। समझ में आया? उज्जैन में डाला था, नहीं? ए ई! चाँदमलजी! उज्जैन में रखा था, बोर्ड लगाया था। वे भूल गये लगते हैं। मैंने कहा था, बोर्ड तो तुमने बनाया था ऊपर व्याख्यान हॉल में, उज्जैन में गये थे न? 'काग बीट सम मानत है' यह सारी बाहर की विभूति तो नाक का मैल है। समझ में आया?

जानता है, बस ज्ञान होता है। यह ज्ञान भी, वह चीज़ है तो होता है-ऐसा भी नहीं है। **जहाँ ज्ञान है, वहाँ से ज्ञान आता है और परिणमन होता है।** समझ में आया? ऐ ई अमीचन्दजी! ऐसा मार्ग बहुत कठिन, भाई! मार्ग सारे समाज को-सबको लागू पड़े ऐसा चाहिए न? एक को लागू पड़े... लागू पड़े क्या? (घटित हो) यह तो सबको घटित हो, मार्ग तो एक ही है। सब मुख से खाते हैं, कोई सिर में से खाता है? मार्ग तो एक ही है। बालक को, वृद्ध को, युवक को, स्वर्ग को, नारकी को, मेंढ़क हो या बड़ा चक्रवर्ती राजा हो, धर्म तो यह एक ही प्रकार का यही है। इसमें दूसरा कोई प्रकार नहीं है।

कम्मुदयं वह तो जानता है, वह तो जानता है, वह मेरेरूप से नहीं जानता। परद्रव्य का अपने में से अपने से ज्ञान होता है, उसे जानता है। आहा..हा..! सम्यग्दृष्टि लोग। **सविपाक-अविपाकरूप...** निर्जरा की व्याख्या। पहले कम्मुदयं का कहा न? पहले कर्म के उदय का लिया न? फिर अब **सविपाक-अविपाकरूप से और सकाम-अकामरूप से दो प्रकार की निर्जरा...** गजब बनाया है। क्या कहते हैं? अपना शुद्धस्वरूप निर्मल प्रभु-ऐसी प्रतीति और भान-शुद्ध परिणमन हुआ, उसका नाम धर्मी, उसका नाम सम्यग्दृष्टि है।

वह, **सविपाक...** समय-समय में, क्षण-क्षण में पूर्व का जो कर्म बँधा है, वह समय-अवधि होकर खिर जाता है। जो पूर्व में कर्म बँधा है, उसकी अवधि होकर स्थिति होकर खिर जाता है, उसका नाम सविपाक निर्जरा है। कर्म अपना पाक पूरा हुआ और खिर जाना, सविपाक—पाक-कर्म का रजकण जो पड़ा है, उसका पाक होकर, सविपाक =पाकसहित खिर जाना। उसमें आत्मा का कोई पुरुषार्थ नहीं है। समझ में आया? कहते

हैं, देखो ! जैसे यह मनुष्यगति में यहाँ अभी कर्म तो चारगति के बँधे पड़े हैं। आयुष्य नहीं, गति की बात मैं करता हूँ, तो यहाँ मनुष्यगति का उदय है और गति तो चार का अन्दर उदय है परन्तु विपाक फलरूप से यह एक है परन्तु वह भी विपाक होकर चार गति का उदय होकर खिर जाता है। तीन गति का उदय अभी खिर जाता है। क्या कहा ? हाँ, जैसा उदय आया, आकर खिर जाता है ऐसा वह खिर जाता है। निरन्तर गति का उदय होता है, चारों का ही चारों का ही उदय एक मनुष्य का तो प्रत्यक्ष है और तीन हैं, वे खिर जाते हैं। उदय आकर (खिर जाते हैं)। समझ में आया जरा ? आयुष्य एक होता है।

मुमुक्षु : संक्रमण होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : संक्रमण नहीं। वह तो गति का उदय आकर खिर जाता है बस, खिर जाता है, संक्रमण नहीं। सुनो ! **सविपाक...** स अर्थात् विपाक फलसहित, तो जैसा कर्म पूर्व में बाँधा था तो उसकी अवधि हो तो आया और खिर जाता है, उसका नाम सविपाक (निर्जरा कहलाता है)। उसमें कोई तपस्या या ज्ञानानन्द करना हो तो खिरे–ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया ? बँधा हुआ कर्म अपनी अवधि पूरी होने से समय–समय में उदय आकर खिर जाता है, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं।

मुमुक्षु : रोजाना नया–नया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नया ही है न ? आहा..हा.. ! अन्तर चीज़ की क्या चीज़ है ! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव, सौ इन्द्रों के पूज्य प्रभु ने क्या कहा था और हम क्या मानते हैं, उसकी कुछ खबर नहीं। समझ में आया ? ओघे–ओघे – कहा था न भेड़चाल ! भेड़चाल, कोई कहता था। कल बात हुई। भेड़ का आचार होता है न ? वैसे भेड़ का आचार होता है न ? वैसे भेड़िया आचार। दुनिया करे वैसा किये जाये परन्तु सत्य क्या है, उसकी खबर नहीं। है ? कोई कहते थे, भेड़चाल क्या ? भेड़िया घसाण।

मुमुक्षु : कोई करे वैसे किया करे वह...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो है, किन्तु शब्द क्या है ? वह तो हमें पता है न ? तुम्हारी भाषा क्या है ? घसाण, हाँ, वह भेड़िया घिसता है न यहाँ ! घसाण। आहा..हा.. ! ऐसे भेड़िया जैसे सब अनादि से घिसते हैं–ऐसा कहते हैं। अज्ञानी करते हैं और अज्ञानी

मनाते हैं, वैसे चले जाते हैं। वे नीचे नजर रखते हैं ने वह भेड़िया-चले जाते हैं, मार्ग क्या है उसका पता नहीं है।

धर्मी जीव अपना स्वरूप राग, पुण्य और शरीर से जब भिन्न जानने में आया... जब तक राग और शरीर मेरा है और मैं उस सहित हूँ—ऐसी दृष्टि थी, तब तक मिथ्यादृष्टि अधर्मी पापी था। समझ में आया? जब वह दृष्टि गुलांट खा गयी। समझ में आया? वे नट नहीं होते नट? नट नाचते हैं न? नट नाचते हैं न? ऐसे-ऐसे नाचते-नाचते जब गुलांट खाते हैं, नट नाचते हैं न? दुकान पर आते हैं न, हमारे वहाँ दुकान थी तो बहुत पैसा लेने को बहुत आते थे, तो ऐसा करके गुलांट मारते। ऐसे एक बार नाचकर, कहते हैं। राग और पर्याय की बुद्धि है, वह छोड़ दे। द्रव्यबुद्धि-त्रिकाली ज्ञायक में गुलांट खा।

मुमुक्षु : गुलांट कैसे खाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! कहते हैं न, ऐसे खाना। ऐसी (पर के ऊपर) दृष्टि है (तो ऐसी दृष्टि स्व के ऊपर) वह गुलांट (अर्थात् अभिप्राय बदलना) है।

बात बस यह, जो राग और पर्याय - एक समय की पर्यायबुद्धि है, वह द्रव्य पर बुद्धि करना।

मुमुक्षु : मुझे ऐसा कहना है कि गुलांट किस क्रिया से खायी जाती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया-फ्रिया क्या थी फिर! धूल की क्रिया?

मुमुक्षु : ज्ञान क्रिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ ठीक है, बराबर पूछते हैं। लोग क्रिया करते हैं न, क्रिया करते हैं न? क्रिया करते-करते ऐसी दृष्टि होगी? धूल में नहीं होगी। समझ में आया? अपना अभिप्राय जो पर के ऊपर है, वह स्व के ऊपर लेना। बस, दूसरी कोई क्रिया उसकी है नहीं। आहा..हा..! नन्दकिशोरजी! कोई ऐसी बात है। मार्ग ऐसा है। तुम्हारे गाँव में ऐसी बात तो नहीं चलती, हों! एक दिन में कहाँ से चले विदिशा में? कहाँ गये राजेन्द्र सिंह? क्या नाम है? राजेन्द्रकुमार कहाँ गये? ...कर्म के उदय को जानता है और सविपाक निर्जरा-कर्म की अवधि पूरी होने पर खिर जाये, उसे जानता है।

अविपाक... दूसरा शब्द। अविपाक का क्या अर्थ? उसमें भी है तो कालक्रम, हों!

समझ में आया? अभी कहीं पढ़ा था, यहाँ तो तत्त्वार्थ था परन्तु अन्यत्र कहीं था। यथाकाल, तो उसमें भी लेना, ऐसा कहते हैं। विपाक में भी यथाकाल है (ऐसा लिखा है)। वहाँ तो लिखा है परन्तु दूसरा कहीं लिखा है। किसी जगह लिखा है अवश्य? हाँ, यह योगसार में होगा। इस योगसार में होगा? योगसार है न, अमितगति आचार्य, अमितगति आचार्य का योगसार है, उसमें लिखा है। ऐसे कर्म की बात यथार्थभाव-वह सारा व्याख्यान हो गया है। योगसार, समयसार की शैली का है। योगसार, अमितगति आचार्य का (है) उस पर व्याख्यान हो गया है। उसमें ऐसा लिखा है जिस समय कर्म का उदय आनेवाला है, वह विपाक खिर जाता है, अविपाक भी उसके काल में ही आता है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ चैतन्य पर किया, शुद्धज्ञानानन्दमय हूँ—ऐसी दृष्टि और पुरुषार्थ स्व-सन्मुख किया तो उस खिरने को अविपाक निर्जरा कहने में आता है। उसमें क्रमबद्ध है न! पण्डितजी! उसमें क्रमबद्ध है।

मुमुक्षु : जो सविपाक निर्जरा है, वह मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों को होती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों को होती है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि की बात है। मिथ्यादृष्टि का यहाँ काम नहीं। सम्यग्दृष्टि को चार प्रकार की निर्जरा होती है। वह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

ज्ञानी को अपने चैतन्यस्वरूप का भान-अनुभव हुआ और आनन्द का वेदन हुआ, उसे भी सविपाक-अविपाक और सकाम, अकाम चार प्रकार के कर्म खिरते हैं। वे चारों ही प्रकारों को जानते हैं। यह तो चार की व्याख्या करते हैं। सविपाक अर्थात् कर्म की अवधि पूरी होने पर खिरते हैं, उसकी अवधि को अविपाक भी खिरा है परन्तु अपने स्वभावसन्मुख में आनन्द में महा लवलीन हुआ, अपनी दृष्टि में-वस्तु में एकाकार हुआ तो जो कर्म खिरा, एकदम खींचकर-खींचकर (खिरा) परन्तु उस समय खिरने की चीज़ वह खिर गयी परन्तु उसमें पुरुषार्थ का इस ओर में निमित्त पड़ा और खिर गया, वह अविपाक है। उसमें पाक यहाँ अनुभव में आया - ऐसा है नहीं। बहुत सूक्ष्म। फिर बात, फिर बात, फिर लेते हैं।

मुमुक्षु : अपनी समझ में तो कुछ नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसीलिये तो फिर से कहते हैं। कर्म-निर्जरा के दो प्रकार हैं। एक

तो अवधि पूरी हो और खिरते हैं। दूसरी भी अवधि तो है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ स्वसन्मुख किया है तो उस कारण वह पाक उस ओर का पर्याय में पाक के फल में एकताबुद्धि बिल्कुल नहीं रही, समझ में आया? उसके कारण उस कर्म की पर्याय जो है, वह खिर जाती है, उसे-धर्मी को अविपाक निर्जरा होती है। मिथ्यादृष्टि को अविपाक निर्जरा नहीं होती। मिथ्यादृष्टि को सविपाक निर्जरा होती है परन्तु अविपाक नहीं होती है। समकिती को दोनों होती है। आहा..हा..! गजब बात, भाई! समझ में आया? रात्रि को प्रश्न पूछना, जरा सूक्ष्म बात है। तत्त्वार्थसार में भी ऐसा लिया है। भाई ने उसका बहुत सरस अर्थ किया है। क्रम प्राप्त तो दोनों ही है, आया था न भाई! प्रश्न तुम्हें? क्रम प्राप्त तो दोनों ही है परन्तु यहाँ पुरुषार्थ कहा, तो वह पुरुषार्थ करने से खिरना वह तो कर्म का उदय आया और खिर गया, बस! अवधि पूरी होते खिर जाता है, बस! किन्तु यहाँ स्वभावसन्मुख आनन्दकन्द में जहाँ पुरुषार्थ किया – प्रयत्न किया-प्रयत्न किया वह भी पर्यायदृष्टि की बात है परन्तु प्रयत्न ध्रुव पर लग गया, उसका नाम पुरुषार्थ की जागृति और तपस्या कहने में आता है। यह तप (है)। अपवास-वपवास करना, वह तप है नहीं। आहा..हा..! यह तप का अर्थ 'तपन्ति इति: तप:' जैसे स्वर्ण / सोना स्वर्ण गेरु से शोभित होता है। गेरु होता है न गेरु? सोना, स्वर्ण शोभित होता है; वैसे भगवान आत्मा शुद्ध वीतराग पवित्र जो दृष्टि में आया है, उसमें पवित्रता की वृद्धि होती है, शुद्धता की वृद्धि होती है, उसे भगवान तपरूपी भावनिर्जरा कहते हैं। गजब बात, भाई!

गोंडल दरबार था न गोंडल दरबार? गोंडल बड़ा दरबार था तो उसका शिक्षा अधिकारी था चन्दूभाई पटेल। उसके प्रति बहुत प्रेम था तो अपनी बात बहुत सुनता था, वहाँ दरबार के पास जाकर कहे महाराज (ने) ऐसा कहा महाराज! अर्थ ऐसा कहा। तो गोंडल दरबार कहे, पीछे कहे शब्दकोश है उसका गोंडल में। भगवान गोमण्डल शब्दकोश ऐसी छह बड़ी पुस्तकें बनायीं तो महाराज के प्रत्येक शब्द के अर्थ में अन्तर पड़ता है तो अपने भी डालो। भगवत् शब्दकोश में उसमें कितने ही डाले हैं। समझे? गोमण्डल की है। अपने पास यहाँ पुस्तक है। बड़े शब्दकोश के (बड़े) हाँ, बड़ी पुस्तकें हैं। छह शब्द डाले हैं, थोड़ा दरबार को रस था, दरबार तो आ नहीं सके परन्तु उनका शिक्षा अधिकार था, चन्दूभाई पटेल, उसका यह चन्दूभाई पटेल दरबार के पास जाये, दरबार कहे, महाराज कहते हैं वह शब्द अपने शब्दकोश में डालना। तो शब्दकोश में ऐसा बहुत आया है। समझ में आया?

बन्ध-मोक्ष को जानता है; सविपाक और अविपाक को जानता है। आहा..हा..! कर्ता नहीं – ऐसा यहाँ कहना है, भाई! फिर से-सविपाक निर्जरा का तो कर्ता नहीं परन्तु अविपाक निर्जरा का भी कर्ता ज्ञानी नहीं। आहा..हा..! कर्म रजकण है न? गजब बात भाई! भगवान! तुझमें तो ज्ञान भरा है। तुझमें क्या पर को-कर्म को निर्जराऊँ ऐसा है? वह तो कर्म निर्जरित हो जाते हैं अविपाकरूप से, उसको जाननेवाला आत्मा है। आहा..हा..! भाई! कान में तो पड़े कि यह कोई वीतरागमार्ग है। समझ में आया? कोई चीज़ है वीतरागमार्ग मैं यह चीज़ समझे बिना रह गयी है और यह समझे बिना इसका छुटकारा नहीं होगा; चार गति का (परिभ्रमण) होगा मर जायेगा, भटक मरेगा। कहीं सुख है नहीं। ऐ सेठी! सेठ! कहीं सुख है नहीं धूल में, तुम्हारे छह लाख के बंगला संगमरमर का बड़ा बंगला-उसको पच्चीस लाख का है, वहाँ एक गोवा में शान्तिलाल खुशाल, चालीस लाख का, पैसा अधिक हो तो बड़ा हजीरा बनवावे। हजीरा समझ में आता है न? लोटियावोरा जिसमें दबाते हैं, उसे हजीरा कहा जाता है। वोरा कहते हैं न? वोरा नहीं कहते? लोटियावोरा नहीं होते? लोटियावोरा होते हैं। हजीरा है। जामनगर में बड़ा हजीरा है, नदी के किनारे वे लोटियावोरा नहीं होते? मुसलमान टोपी पहनते हैं न वोरा, उन्हें जहाँ दबावें, उसका नाम हजीरा कहते हैं। यहाँ भी भगवान कहते हैं आत्मा के भान बिना हजीरा में पड़े नेवला-चूहा जैसा है। ऐ ई! आहा..हा..!

कहते हैं भगवान आत्मा 'सकाम-अकाम निर्जरा' लो! कभी शब्द का भी पता नहीं होगा कि क्या होगा? पहले ऐसा कहा कि सविपाक अर्थात् कर्म का उदय आवे और खिर जाये, उसे भी जाने, बस जाने, करे नहीं और अविपाक-पुरुषार्थ से अपनी स्थिरता हुई, तो कर्म खिर जाते हैं, उसे अविपाक कहते हैं। उस अविपाक को ज्ञानी आत्मा करता नहीं; जानता है। **सकाम...** यह सकाम कहो या अविपाक कहो। यहाँ अविपाक, परमाणु की अपेक्षा से है और सकाम, अपने पुरुषार्थ की जागृति की अपेक्षा से है। आहा..हा..! फिर से-अविपाक निर्जरा है, वह कर्म के रजकण की अपेक्षा से है और सकाम निर्जरा है, वह अपने शुद्ध उपयोग में उग्र रमणता हुई, अपने पुरुषार्थ से (उग्र रमणता हुई), उस भाव को सकाम निर्जरा कहने में आता है। आहा..हा..! गजब बात भाई! समझ में आया? यह जरा सूक्ष्म है थोड़ा।

सकाम... अर्थात् पुरुषार्थ की जागृति से निर्जरा हुई। अपनी भावना से हुई। अपना शुद्ध भगवान आत्मा की दृष्टि तो है और उसमें उग्र पुरुषार्थ करके जो निर्जरा हुई, उसका नाम सकामभाव निर्जरा कहते हैं। आहा..हा..! गजब समाहित किया, थोड़े में भी!

अकाम निर्जरा... अकाम निर्जरा की व्याख्या कि इच्छा न होने पर भी प्रतिकूल संयोग में राग की मन्दता से सहन हुआ, उसका नाम अकाम निर्जरा कहते हैं। ऐसे ज्ञानी को भी अकाम निर्जरा होती है, मन्द कषाय। जैसे व्यापार में बैठे हो और भोजन का समय ग्यारह बजे का हो और जरा ग्राहक ऐसा आ गया तो भोजन दो-तीन घण्टे आगे चला गया; था ज्ञानी। समझ में आया? इच्छा नहीं थी कि मुझे दो बजे आहार लेना, दूध लेना, इच्छा तो दस बजे की थी परन्तु ऐसा कोई ग्राहक आया तो उसमें रुक गया तो इसमें कषाय की मन्दता हुई। इच्छा नहीं थी कि यह नहीं करना या दूध नहीं पीना ऐसा, परन्तु फिर भी ऐसे कारण में ऐसा संयोग आ गया तो उसमें मन्द कषाय का भाव रहा तो उसमें कर्म खिरे, उसका नाम अकाम निर्जरा कहते हैं। अरे!

ज्ञानी ऐसे बिल्कुल किसी का कर्ता नहीं। (जाननेवाला है)।

मुमुक्षु : अकाम और अविपाक क्या अन्तर है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं? क्या? अकाम और सविपाक। सविपाक तो उदय आकर खिर जाता है इतना; और अकाम में प्रतिकूल संयोग ऐसा आया, सहन करने की इच्छा नहीं थी; नहीं खाना—ऐसी इच्छा नहीं थी परन्तु खाना सहज दूर हो गया, उसमें कषाय की मन्दता आ गयी तो उसका नाम अकाम निर्जरा है। जैसे पशु। यहाँ तो समकिती की बात है। पशु, छप्पनियाँ के दुष्काल में बहुत दु:ख, पशु को घास नहीं मिलता था। समझ में आया? छप्पन, हमने तो बहुत नजरों से देखा है न, दस वर्ष की उम्र थी छप्पन में, तो ऐसा आँख में आँसू परन्तु ऐसा खाने का भाव था, किन्तु प्रतिकूल संयोग में अन्दर में किसी को कषाय मन्द हो गयी, मन्द हो गयी तो इसे अकाम निर्जरा कहने में आता है। ऐसा (जीव) मरकर स्वर्ग में भी जाये-मिथ्यादृष्टि हो परन्तु अकाम निर्जरा से स्वर्ग में भी जाये परन्तु उसकी बात यहाँ नहीं है। यहाँ सम्यग्दृष्टि की बात है।

विशेष लेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

समयसार, ३२० गाथा, उसकी जयसेनाचार्य की टीका। पहला पैराग्राफ हो गया है, दूसरा पैराग्राफ। एकदम सूक्ष्म तत्त्व है। हमारे सेठ पूछते हैं कि सूक्ष्म क्यों कहते हो?

श्रोता : उसका स्पष्टीकरण.....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अतीन्द्रिय ज्ञान से पकड़ में आये ऐसी चीज़ है। सेठ? विषय क्या चीज़ है? सम्यग्दर्शन है, वह पर्याय-अवस्था है परन्तु उसका विषय-ध्येय... क्या चीज़ है? कैसी है? उस चीज़ की व्याख्या पहले संक्षिप्त कहेंगे, विशेष फिर कहेंगे।

पहला शब्द है **सर्वविशुद्ध...** कैसा है भगवान आत्मा अन्दर? एक समय की पर्यायरहित चीज़ है! शरीर तो नहीं, वाणी तो उसमें नहीं, पुण्य-पाप का विकल्प जो राग है, वह तो उसमें नहीं; परन्तु एक समय की पर्याय जो मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की है, वह भी उसमें नहीं है। ऐसा सर्वविशुद्ध भगवान आत्मा!

पन्ने तो हैं न हाथ में? पन्ने हों तो ठीक पड़ेगा उसमें। है नेमिचन्दभाई? पन्ने में ध्यान रखना, हों! उन गहनों को घर में कैसे रखते हो? हीरे को डिब्बी में रखते हैं, वैसे ये पन्ने चूंथ जाये और मैले हो जायें, ऐसे नहीं रखना। यह तो हीरे जैसी चीज़ है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? **सर्वविशुद्ध...** भगवान आत्मा एक सैकण्ड के असंख्यातवें भाग में एक समय में वस्तु सर्वविशुद्ध ध्रुव। सर्वविशुद्ध-एक बोल। **पारिणामिक....** सहज त्रिकाली भाव, **सर्वविशुद्ध पारिणामिक...** पारिणामिक अर्थात् सहज, किसी की अपेक्षा-पर्याय की नहीं, निमित्त की नहीं, निमित्त के अभाव की नहीं-ऐसा त्रिकाली परमपारिणामिक **परमभावग्राहक...** ऐसा जो परमभाव ध्रुव। समझ में आया? ऐसा परमभाव, त्रिकालीभाव, एक समय की पर्यायरहित भाव। परमभाव ग्राहक यह है अन्दर में ऐसा। है उसे बताते हैं, अन्दर में है ऐसा प्रत्येक में, उसे बताते हैं, उसकी दृष्टि करना पहले ऐसा कहते हैं। उसे ख्याल में लिये बिना दृष्टि कहाँ से करे? समझ में आया?

प्रथम में प्रथम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करने में उसका ध्येय क्या ? उसका विषय क्या ? यह बात चलती है। सूक्ष्म है। ऐसी बात जैनदर्शन के सिवाय अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती।

श्रोता : दूसरे मोक्ष की बात तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब बात करें, कल्पना की डींग (गप्प) मारते हैं। समझ में आया ? उसे पता नहीं सत् का, वह माने कि यहाँ भी ठीक है, यहाँ भी ठीक है। ठीक है ही नहीं कहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव ने एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक देखा, उनके मुख से वाणी निकली, वह आगम और उन्होंने कहा वह पदार्थ है। नन्दकिशोरजी !

श्रोता : यह तो सम्प्रदाय की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्प्रदाय की नहीं, वस्तु की स्थिति ऐसी है। यह सम्प्रदाय की बात नहीं है। समझ में आया ? जैनदर्शन कोई सम्प्रदाय नहीं है। वस्तु का ऐसा स्वभाव है, उसे जैन कहते हैं। ऐसी जैन की जो अन्दर वीतरागस्वरूप चीज़ है! सर्वविशुद्ध ! उसमें राग नहीं, मलिन पर्याय नहीं, एक समय की हीन अवस्था भी नहीं; पर्याय जो एक समय की है, वह भी नहीं। है न, **पर्याय है परन्तु त्रिकाली ध्रुव में पर्याय का अभाव है।** समझ में आया ?

सर्वविशुद्ध-पारिणामिक... पारिणामिक अर्थात् सहजभाव। जिसमें सहजरूप, त्रिकाली ध्रुव परमभाव-ऐसा जो **परमभाव,** ध्रुवभाव, ज्ञायकभाव, अविनाशीभाव, उसका **ग्राहक**-उसे जाननेवाला नय। नय अर्थात् ज्ञान का अंश। जो ऐसी परमभाव वस्तु को पकड़े-जाने, उसका नाम द्रव्यार्थिकनय कहने में आयेगा। देखो ! **परमभावग्राहक शुद्ध-उपादानभूत...** पहले उपादान आ गया, वह पर्याय का था। यह शुद्ध उपादान ध्रुव का है। शास्त्र तात्पर्य, दोपहर में आता है न। समझ में आया ?

ध्रुव... नित्यानन्द प्रभु जिसमें हलन-चलन / मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की पर्याय भी जिसमें नहीं। आहा..हा.. ! समझ में आया ? ऐसा **शुद्ध-उपादानभूत...** ऐसा शब्द पड़ा है न ! उसमें शुद्ध उपादानरूप से, ऐसा था; '**भूत**' नहीं था। पहले पाँचवीं पंक्ति में... शुद्ध उपादानरूप से कर्ता नहीं-ऐसा था।

ऐसा वहाँ पर्याय थी; इधर 'शुद्ध-उपादानभूत' त्रिकाल (ध्येय की बात है)। समझ

में आया ? शान्ति से समझना अपूर्व चीज़ है। आचार्य ने यह टीका इतनी सूक्ष्मता से की है। अकेला अमृत बहाया है। समझ में आया ?

जिसे समझ में न हो तो उसे समझना तो पड़ेगा न पहले (कि) क्या चीज़ है ? और किस चीज़ की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन तो धर्म की पहली सीढ़ी है, धर्म की दशा प्रगट हुए बिना उसे धर्म कहाँ से होगा ? समझ में आया ? ज्ञान और चारित्र तो बाद में, परन्तु सम्यग्दर्शन हो तो ज्ञान सच्चा होता है और ज्ञान सच्चा हो तो स्वरूप में स्थिरता हो तो चारित्र सच्चा होता है। प्रथम, दृष्टि का विषय क्या है, उसका तो पता नहीं, तो कहते हैं कि **परमभावग्राहक...** परमभाव त्रिकाल को जाननेवाला। ग्राहक अर्थात् ग्रहण करनेवाला, ऐसे त्रिकालभाव को ग्रहण करनेवाले, ऐसे नय का अंश-ज्ञान का वर्तमान अंश। आगे कहेंगे। **शुद्ध-उपादानभूत...** त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक भगवान... चैतन्यबिम्ब, अनादि-अनन्त (अर्थात्) आदि-अन्तरहित—ऐसे शुद्ध उपादानभूत-उपादानस्वरूप ऐसा कहते हैं। इतने तो विशेषण दिये। आहा..हा..! समझ में आया ?

शुद्धद्रव्यार्थिकनय से... ऐसी जो चीज़, जो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, यह शुद्धद्रव्य। शुद्धद्रव्य अर्थात् त्रिकाली सामान्य स्वभाव, यह शुद्धद्रव्यार्थिक-शुद्धद्रव्य को अर्थिक-जिस ज्ञान का प्रयोजन शुद्ध द्रव्य को लक्ष्य में लेना है—ऐसे नय को शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं। शुद्ध... द्रव्य, द्रव्य अर्थात् वस्तु, अर्थिक अर्थात् जिसका प्रयोजन - ऐसा नय। जिस ज्ञान के अंश का प्रयोजन त्रिकाली ध्रुव को लक्ष्य में लेना है—ऐसे नय को यहाँ शुद्धद्रव्यार्थिकनय कहते हैं। आहा..हा..!

संसार में-व्यापार में यह बात नहीं होती। होती है ? (तुम) दो भाईयों के बीच यह बात कभी की है ? सम्प्रदाय में जाये वहाँ भी नहीं मिलती, (वहाँ) दया पालो, भक्ति करो और यात्रा करो, पूजा करो और व्रत करो; स्थानकवासी हो तो दया पालो, मन्दिरवासी हो तो यात्रा-पूजा करो... मन्दिर-मन्दिर बनाओ। दिगम्बर हो तो ऐसा खाना और ऐसा न खाना-पीना, वह उसमें घुस गया। ऐ ई! पोपटभाई!

मुमुक्षु : ऐसा चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चलता है, तब तो यह बात चलती है। कहते हैं, ओहो..हो..!

अन्दर वस्तु जो भगवान आत्मा-ध्रुव है, उसमें यह शरीर तो नहीं, वाणी तो नहीं, कर्म तो नहीं, पुण्य-पाप के विकल्प / राग, वह तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय—जो प्रगट पर्याय / व्यक्त पर्याय जो वर्तमान अवस्था है, वह भी जिसमें नहीं। समझ में आया? गजब! भाई! कितनों ने ही तो ऐसा सुना नहीं होगा! कौन जाने क्या होगा यह?

सर्वविशुद्ध.... फिर से लेते हैं। ये भाई तो जानेवाले हैं। ठीक, अब अन्त में व्याख्यान में सुन तो जायें कि ऐसी चीज़ थोड़ी है वीतरागमार्ग में-वस्तुमार्ग में।

मुमुक्षु : प्रभु के मार्ग में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु! अकेला पवित्रता का पिण्ड, अकेला सिद्धस्वभाव का पुंज, अकेला नित्यानन्द-जिसमें नित्य आनन्द पड़ा है—ऐसी चीज़, वह सर्वविशुद्ध पारिणामिक अर्थात् त्रिकालभाव! पारिणामिक अर्थात् सहज परिणाम आत्मस्वरूप का लाभ। आत्मस्वरूप का लाभ अर्थात् वास्तविक आत्मस्वरूप तो ध्रुव (है) पारिणामिक की व्याख्या है, पंचास्तिकाय में है, भाई! '**आत्मस्वरूप लाभः पारिणामिकः**' (गाथा ५६) समझ में आया? पंचास्तिकाय में है।

मुमुक्षु : ५५-५६ में?

पूज्य गुरुदेवश्री : ५६ में है। खबर है न? ए... ५६ (गाथा) आयी। ५६ में है। **द्रव्य आत्मलाभहेतुकः परिणामः** संस्कृत है। यह अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। द्रव्य-आत्मलाभ; द्रव्य अर्थात् वस्तु; वस्तु अर्थात् पदार्थ और उसका आत्मलाभ - स्वरूप का लाभ, जिसको यहाँ पारिणामिकभाव कहते हैं। यह द्रव्य का आत्मलाभ-वस्तु का स्वरूप, उसका लाभ; लाभ अर्थात् उसकी अस्ति (अर्थात्) वस्तु का त्रिकाली स्वरूप, उसका लाभ अर्थात् मौजूदगी—ऐसा जो कारण, ऐसा परिणाम। समझ में आया?

यह तो अन्तिम की बात, सम्यग्दर्शन के विषय की (बात है)।

मुमुक्षु : मक्खन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मक्खन है। कभी सुना ही नहीं अन्दर में। कुछ भी सुनकर जिन्दगी व्यतीत कर दी।

मुमुक्षु : अब आप सुनाईये।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य-आत्मलाभहेतुक:, देखो! संस्कृत में है। (नीचे फुटनोट में अर्थ दिया है।) परिणाम से युक्त जो पारिणामिक कैसा है? कि आत्मलाभ, आत्मलाभ अर्थात् स्वरूप का लाभ। स्वरूप का लाभ का अर्थ यहाँ पर्याय नहीं। स्वरूप की मौजूदगी। देखो! आत्मलाभ का अर्थ कोष्ठक में किया है-मौजूदगी।

भगवान आत्मा नित्यानन्द एक समय की वर्तमान प्रगट अवस्था के अतिरिक्त... समझ में आया? आत्मलाभ-आत्मा की अस्ति। देखो! पर्याय की अस्ति नहीं कहा, आत्मा की अस्ति यहाँ कहा। आहा..हा..! पुण्य-पाप का राग-विकार तो एक ओर रह गया परन्तु एक समय की पर्याय, वह द्रव्य-आत्मलाभ नहीं। भगवान ध्रुव नित्यानन्द प्रभु आदि-अन्तरहित सत्स्वरूप—ऐसे आत्मा का लाभ। स्वरूप प्राप्ति। नीचे हमारे पण्डितजी ने अर्थ किया है कि आत्मलाभ=स्वरूप प्राप्ति - स्वरूप को धारण कर रखना, अपने को धारण कर रखना, अस्तित्व। द्रव्य अपने को धारण कर रखता है अर्थात् अपनी अस्ति रहे, उसे पारिणामिक कहने में आता है। समझ में आया? उसे ही यहाँ पारिणामिक कहा है। पारिणामिक=वस्तु का अस्तित्वरूप भाव, त्रिकाल सत्‌रूप भाव, त्रिकाल नित्यरूप भाव, उसे यहाँ पारिणामिक आत्मस्वरूप अस्तित्व कहने में आता है। जिसमें एक समय की पर्याय भी नहीं आती। नन्दकिशोरजी! ऐसा **परमभावग्राहक...** ऐसा त्रिकाली भाव, स्वरूप की अस्तित्वरूप ध्रुवभाव, उसे ग्रहण करनेवाला नय, जो कि **शुद्ध-उपादानभूत...** त्रिकाल है। शुद्ध उपादान अन्दर आदरणीय चीज़ हो तो शुद्ध-उपादान। ग्रहण करनेयोग्य चीज़ हो तो वह चीज़ है। सम्यग्दृष्टि को (ज्ञानी को) धर्मी को वह शुद्ध उपादान चीज़ ग्रहण करनेयोग्य है, वह चीज़ है। त्रिकाली ध्रुव आश्रय करनेयोग्य है। समझ में आया?

ऐसा **शुद्ध-उपादानभूत...** अभेद कर दिया। शुद्ध-उपादानभूत, स्वरूप। एक समय की पर्याय चलती है, भले धर्म की पर्याय प्रगट हुई हो तो भी उस पर्याय से रहित, पर्याय से / अवस्था से रहित **शुद्ध-उपादानभूत...** त्रिकाल चीज़ **शुद्धद्रव्यार्थिकनय...** शुद्ध द्रव्य को जाननेवाला ऐसा नय। उस नय से **जीव...** भगवान आत्मा **कर्तृत्व-भोक्तृत्व से...** रहित है। आहा...हा...! समझ में आया? जैनदर्शन सूक्ष्म है। यह जैनदर्शन! वस्तु जो त्रिकाली ध्रुव ज्ञायकभाव है; वह भाव, राग का भी कर्ता नहीं, राग का भोक्ता नहीं, बन्धपरिणाम का कर्ता नहीं, बन्ध के कारणरूप परिणाम का कर्ता नहीं; मोक्ष की पर्याय का

कर्ता नहीं, मोक्ष के मार्ग की पर्याय का कर्ता–भोक्ता नहीं। अरे! गजब बात है! नन्दकिशोरजी! कभी आया नहीं कि पुरुषार्थ क्या है? भगवान! तेरे घर में चीज़ ऐसी है।

मुमुक्षु : सबकी ऐसी है या..... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबकी–सब आत्मा में ऐसा है। सत्... सत्, अविनाशी नित्यानन्द नाथ! ऐसा जीव, वह जीव, हों! ध्रुव, वह जीव।

मुमुक्षु : वनस्पति का जीव भी ऐसा होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सब–वनस्पति, निगोद सब भगवान परमात्मास्वरूप अन्दर है। समझ में आया?

यहाँ तो जिसे दृष्टि करनी है, उससे कहते हैं कि ध्येय करनेयोग्य यह चीज़ है; इसके अतिरिक्त राग का ध्येय, निमित्त का ध्येय और एक समय की पर्याय का ध्येय / लक्ष्य में लेने से धर्म नहीं होता, सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। आहा...हा... ! समझ में आया? भाषा सादी है, ऐसी कोई बहुत गूढ़ नहीं है, भाव भले गूढ़ हो। समझ में आया? परन्तु किसी दिन सुना नहीं, समझे नहीं, धर्म के नाम पर ओघे–ओघे (भेड़चाल) चलता है, ऐसा नहीं चलता। मार्ग क्या चीज़ है? किस चीज़ को दृष्टि में लेना और उसका आश्रय करने से धर्म होगा–सम्यग्दर्शन (होगा); इसके अतिरिक्त धर्म होगा नहीं। सम्यग्दर्शन के बिना कोई भी क्रिया व्रत, नियम आदि करे, वे सब बिना एक के शून्य हैं। समझ में आया? श्यामदासजी! बराबर ठीक है। इस गाथा में आ गया। कहाँ गये प्रकाशदासजी! है या नहीं?

पन्ना है या नहीं पन्ना? तुम्हारे पास नहीं, मिला नहीं? पन्ना दो, देखो! पन्ना रखना चाहिए न तुम्हें? यहाँ तो थाली तो दे पहले, फिर थाली में भोजन परोसे न? नीचे थोड़े ही परोसना है? समझ में आया? देखो, उसमें क्या लिखा है? रखना चाहिए न?

ऐसा जीव, कैसा जीव? कि जो सर्वविशुद्ध त्रिकाल पारिणामिक सहज आत्मस्वरूप की अस्तित्वरूप भाव। ओहो..हो.. ! एक समय की पर्याय, वह आत्मस्वरूप का अस्तित्व नहीं। एक समय की पर्याय में जो रमता है–लक्ष्य करता है, वह पर्यायदृष्टि–मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहा..हा.. ! उसकी पर्यायबुद्धि है।

यहाँ तो कहते हैं कि त्रिकाली भगवान, ऐसा जो जीव, ऊपर कहा ऐसा विशेषणवाला (जीव), वह **कर्तृत्व-भोक्तृत्व से...** कर्ता–भोक्ता से। पर का कर्ता–भोक्ता नहीं, रागादि

का कर्ता-भोक्ता नहीं; इस बन्ध-मोक्ष के कारण का कर्ता-भोक्ता नहीं, उससे शून्य है। कर्ता-भोक्ता के (परिणाम से) शून्य और बन्ध-मोक्ष के कारण से शून्य - ऐसा यहाँ कहा है।

मुमुक्षु : अशुद्धता और शुद्धता दोनों से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, दोनों से। समझ में आया ?

भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु ध्रुव सच्चिदानन्दस्वरूप वह चीज़, राग का कर्ता नहीं, व्यवहार, दया, दान का कर्ता नहीं और दया, दान का भोक्ता भी ध्रुव चीज़ नहीं। समझ में आया ? इसके अतिरिक्त बन्ध-मोक्ष के कारण-बन्ध का कारण जो मिथ्यात्व, अव्रतादि परिणाम से भी वह ध्रुव चीज़ रहित है। समझ में आया ?

बन्ध-मोक्ष के कारण... पहले इसकी व्याख्या होती है। मिथ्यात्वादि जो परिणाम, बन्ध का कारण है, वह बन्ध का कारण परिणाम जो है, उससे शून्य आत्मा है। ध्रुव भगवान में वह परिणाम है ही नहीं। समझ में आया ? आहा..हा.. ! मोक्ष का कारण-अरे ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो परिणाम-सच्चा मोक्षमार्ग, ऐसा परिणाम... मोक्षमार्ग भी परिणाम है, पर्याय है, एक समय की अवस्था है, तो मोक्ष के मार्गरूपी परिणाम निश्चय, सच्चा सम्यग्दर्शन, सच्चा सम्यग्ज्ञान, (सच्चा) सम्यक्चारित्ररूप वर्तमान परिणाम / पर्याय, उससे ध्रुव रहित है। समझ में आया ? शोभालालजी !

यह पुस्तक / पन्ने रखे हैं तुम्हारे, (हिन्दी भाषी) भाई आवें, पढ़े तो पता पड़े कि जैनदर्शन में क्या है ? कैसी चीज़ है ? यह सब लॉजिक से युक्ति से सिद्ध करते हैं परन्तु अनादि काल से दरकार नहीं है।

मुमुक्षु : पुस्तक तो है उसके पास।

पूज्य गुरुदेवश्री : खोलने की दरकार कहाँ की है, सुननेवाले ने ! कहो, समझ में आया ?

आहा..हा.. ! भगवान आत्मा नित्यानन्द शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का (विषय) परमभाव-स्वभावभाव ऐसी चीज़, वह कर्ता से रहित और भोक्ता से रहित है। किसका ? यह बन्ध का कारणरूप परिणाम, उसका कर्ता नहीं; मोक्ष का कारणरूप परिणाम, उसका भी कर्ता नहीं। परन्तु वह बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम से भी शून्य है। समझ में आया ?

और बन्ध तथा मोक्ष के परिणाम से शून्य। यह पहले बन्ध-मोक्ष का कारण कहा था। समझ में आया?

भगवान आत्मा जो ध्रुवचीज़ है, जिसमें दृष्टि देने से, दृष्टि की थाप देने से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसी जो चीज़ है; वह चीज़ कर्ता और भोक्ता से रहित है। पर्याय का कर्ता-भोक्ता भी द्रव्य नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्ता-भोक्ता द्रव्य किस प्रकार होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आहा..हा..! अपनी निर्मल पर्याय-मोक्ष के मार्ग की आनन्द की पर्याय का भी वह द्रव्य ध्रुव कर्ता नहीं और उसका वह भोक्ता भी नहीं। समझ में आया? है या नहीं सामने पन्ने दिये हैं, पन्द्रह सौ छपाये हैं रामजीभाई ने।

मुमुक्षु : वजुभाई ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो रामजीभाई ने कहा था तब न! कहो, समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : कारणपरमात्मा...

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणपरमात्मा... परन्तु यहाँ वह कारण-फारण नहीं लेना है। कार्य का कारण—ऐसा यहाँ नहीं लेना है। समझ में आया? वह तो नियमसार में पर्याय का -मोक्षमार्ग का कथन है न, वहाँ कारण और कार्य की बात है। यहाँ कार्य का कारण ध्रुव-ऐसा भी यहाँ नहीं लेना है। समझ में आया? ऐ ई!

मुमुक्षु : वह प्रकरण दूसरा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : (यह) प्रकरण दूसरा है। मोक्षमार्ग में पर्याय का कथन है। कारण-मोक्षमार्ग ही पर्याय है। समझ में आया? वहाँ से तो उठाया है तीसरी गाथा में **णियमेण य जं कज्ज** - निश्चय से करनेयोग्य है परन्तु वह तो पर्याय की बात है। द्रव्य तो निश्चय की पर्याय का कर्ता ही नहीं। अरे! कौन सी अपेक्षा से बात चलती है। समझना तो चाहिए न? वहाँ (नियमसार में) ऐसा ही लिया पहले से तीसरी गाथा में—**नियमेन च निश्चयेन यत्कार्यं** - निश्चय से करनेयोग्य हो तो मोक्ष का मार्ग करनेयोग्य है। सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्र। परन्तु वह करनेयोग्य—पर्याय करनेयोग्य है। द्रव्य तो मोक्षमार्ग की पर्याय का करनेवाला ही नहीं। आहा..हा..!

मुमुक्षु : ऐसा है तो जगह-जगह कुछ लिखाते हैं तो हम भूल जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल जाते हो? ठीक कहते हो! खाता-बही में खतौनी करते हो या नहीं जगह-जगह, भिन्न-भिन्न लिखा हो तो? कि अमुक के नाम में इक्यावन रुपये, अमुक के हजार रुपये, तो जब-जब खाते में खताना हो तो खताते हो या नहीं, भिन्न-भिन्न लिखा है तो (भिन्न-भिन्न) खाते में खतौनी करते हो।

मुमुक्षु : वहाँ तो नहीं भूलते।

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ तो नहीं भूलते।

मुमुक्षु : वहाँ तो नुकसान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी नुकसान-बड़ा नुकसान है। वहाँ तो नुकसान है ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया? पर्याय को द्रव्य में खताना, द्रव्य को पर्याय में खताना, यह खतौनी में बड़ा अन्तर है। यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ने जाना, उनकी वाणी में वस्तुस्वरूप ऐसा आया और ऐसा है, उसका निरूपण होता है।

वस्तु है तो वस्तु ध्रुव है और एक समय की कार्यरूपी पर्याय है परन्तु उस कार्य का कारण ध्रुव—ऐसा यहाँ नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया? धीरे-धीरे समझना, यह तो अमृत का झरना है, लो! झरना है, जयकुमार भी कहते हैं। भगवान! बात तो ऐसी है, कोई अलौकिक बात है। आहा..हा..!

'जीव' कैसा जीव? कि ऊपर कहा वैसा (सर्वविशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध-उपादानभूत) शुद्धद्रव्यार्थिकनय से ध्रुव त्रिकाली चैतन्य भगवान अपना निजस्वरूप। निजस्वरूप कायम रहनेवाली चीज़ सत् है तो आदि-अन्त के भावरहित चीज़, वह (जीव) कर्तृत्व-भोक्तृत्व से (शून्य है)। वह अपनी पर्याय का कर्ता और भोक्ता से वह ध्रुव द्रव्य तो रहित है। समझ में आया? बाद में विशेष आयेगा, हों! बहुत स्पष्टीकरण आयेगा। यह तो (३२०) गाथा है न बड़ी। आहा..हा..! जैनधर्म किसे कहते हैं, उसकी तो खबर नहीं। जैनधर्म की पर्याय-धर्म तो पर्याय है। यहाँ तो कहते हैं कि धर्म वीतरागी

पर्याय है, द्रव्य तो उसका भी कर्ता ही नहीं-भोक्ता ही नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

ध्रुव चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द निर्विकल्प निष्क्रिय अभेद—ऐसा जो ध्रुवस्वभाव, ऐसा जो जीव, वह जीव... वह जीव। वह जीव, अपनी पर्याय में राग और निर्मल पर्याय दोनों का कर्ता नहीं और दोनों का वह भोक्ता ही नहीं। समझ में आया?

बन्ध-मोक्ष के कारण से शून्य है। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, ध्रुव सत् (है), वह तो बन्ध के कारण-मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग इन परिणाम से भी ध्रुव तो शून्य है। ये परिणाम ध्रुव में है नहीं; और मोक्ष का मार्ग;... मोक्ष का कारण है न? क्षायिक समकित क्षायिक चारित्र - सम्यग्दर्शन-ज्ञान, केवलज्ञान। यहाँ तो कारण है। मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय / अवस्था / हालत है। उस कारण से ध्रुव शून्य है; वह परिणाम ध्रुव में है नहीं। आहा..हा..! समझ में आया?

बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम... यह क्या लिया फिर? बन्ध-मोक्ष का परिणाम ऐसा। वह कारण था-बन्ध-मोक्ष का कारण और इस बन्ध-मोक्षरूपी स्वतः परिणाम। केवलज्ञान का परिणाम-सिद्ध की पर्यायरूपी परिणाम और बन्ध का परिणाम - वर्तमान मिथ्यात्व आदि, इस परिणाम से ध्रुव शून्य है। आहा..हा..! समझ में आया? यह सिद्ध की पर्याय—अनन्त केवलज्ञान, अनन्त केवलदर्शन, अनन्त वीर्य, अनन्त आनन्द —ऐसी जो मोक्ष की पर्याय है, उससे ध्रुव शून्य है। ध्रुव में मोक्ष की पर्याय नहीं है। आहा..हा..! समझ में आया?

गजब बात, भाई! बन्ध-मोक्ष के कारण और बन्ध-मोक्षरूपी परिणाम, दोनों लेना। बन्ध-मोक्ष के कारण से भी आत्मा-ध्रुव शून्य है और बन्ध-मोक्ष के परिणाम से भी वस्तु (ध्रुवद्रव्य) शून्य है, उसका नाम यहाँ भगवान ध्रुव चीज़ जीव कहने में आता है। उस पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! समझ में आया? समझ में आये ऐसी चीज़ है, हों! ऐसी कोई भाषा ऐसी नहीं है। भले कठिन पड़े अन्दर गोठवामामा परन्तु मार्ग तो यह है। ऐसी चीज़ है—ऐसा ख्याल तो आये न इसे अन्दर?

अन्दर चिदबिम्ब पड़ा है, वस्तु सत् है, वस्तु का स्वरूप ध्रुव—वह जीव, अपनी जो पर्याय कहने में आती है, उसका भी कर्ता-भोक्ता नहीं और वह बन्ध-मोक्ष के

कारणरूप जो परिणाम हैं, उससे वह ध्रुव शून्य है और बन्ध तथा मोक्ष का सीधा परिणाम पूरा बन्ध का परिणाम, मोक्ष का (परिणाम जो है), उस परिणाम से ध्रुव शून्य है। चिमनभाई! ऐसा (कभी सुना था?)

मुमुक्षु : बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न! बन्ध-मोक्ष के परिणाम हैं परन्तु बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम और बन्ध-मोक्ष के स्वयं के परिणाम ऐसा। समझ में आया? बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम और बन्ध-मोक्षरूप परिणाम। समझे नहीं? जो बन्ध है, उसका कारण मिथ्यात्वादि वह परिणाम; उस परिणाम से शून्य, और मोक्ष के कारण मोक्ष का मार्गरूप परिणाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान, उस परिणाम से ध्रुव शून्य और बन्ध परिणाम-सीधे बन्ध परिणाम—वर्तमान, कारण-बन्ध का कारण नहीं, बन्ध का परिणाम और मोक्ष का परिणाम, मोक्ष का (सीधा) परिणाम, उससे भी (ध्रुव) शून्य है। पण्डितजी! है? ऐसी चीज़ है या नहीं? पूरा पड़ गये हैं न? पहले घर में?

मुमुक्षु : पढ़ा था परन्तु ऐसा नहीं पढ़ा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये पण्डितजी हैं, दोनों और यह वकील है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इन्होंने समाज के काम किये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं करते हैं समाज का काम। कौन करता है? यहाँ तो कहते हैं द्रव्य अपनी पर्याय को नहीं करता तो समाज का (काम) कहाँ से करे? आहा..हा..! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग। आत्मा, हों! आत्मा का वीतराग अर्थात् तू। तेरा परमेश्वर वीतरागस्वरूप से भरा पड़ा है—ऐसी ध्रुव चीज़ अपनी पर्याय को करे और भोगे नहीं तो पर को-समाज को कौन करे? अभिमान करके मिथ्यात्वभाव को करे! तो भी उस मिथ्यात्वभाव से ध्रुव तो शून्य है। समझ में आया? आहा..हा..!

बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम, बन्ध-मोक्ष के कारणरूप परिणाम ऐसा लेना। उसके कारणरूप और बन्ध-मोक्षरूपी परिणाम, उससे ध्रुव शून्य है। ऐसा ध्रुव उनसे खाली है, अपने आनन्दादि गुणों से भरपूर है, परन्तु ऐसी पर्याय से शून्य है। आहा..हा..! गजब बात है।

मुमुक्षु : निर्मलपर्याय से भी शून्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : निर्मलपर्याय से भी वह (ध्रुव) शून्य है। कहा न! मोक्ष का कारण और मोक्ष की पर्याय-सिद्ध की पर्याय से भी ध्रुव शून्य है। पर्याय है न! पर्याय तो एक समय की अवस्था है, (उससे शून्य है)। ध्रुव चीज़ है। त्रिकाली ध्रुव, जो केवलज्ञान की और सिद्ध की पर्याय से खाली है, सिद्ध की पर्याय उसमें है नहीं। **पर्याय, पर्याय में है; ध्रुव में है नहीं।** गजब बात, भाई! ऐ ई! पंकज आता है न ख्याल? ठीक। यह तो अमृत बहाते हैं अमृत! समझ में आया?

ओहो..! दो लाईन में कितना भर दिया है! आगे विशेष आयेगा, हों! स्पष्ट करेंगे। यह तो ऐसी बात कहने में आ गयी है - ऐसा यहाँ कहा है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार शुरु किया है, उसमें ऐसी बात कहने में आ गयी है।

ऐसा समुदायपातनिका में कहा गया था। देखो! पहले संस्कृत टीका में यह गाथा पहले आ गयी है, उसमें यह कहने में आ गया है। समझ में आया? अभी तो यहाँ बाहर की सिरपच्ची, दया, दान और व्रत करो तो इसे धर्म होगा.. धूल में भी नहीं होगा। अब सुन न!

मुमुक्षु : पंचम काल में होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : पंचम काल में (भी नहीं होता।) सुखड़ी (एक गुजराती मिठाई) है वह पंचम काल में पेशाब की होती होगी? आटा, शक्कर और घी इन तीनों की सुखड़ी होती है। पंचम काल में इन तीनों की जगह पानी के बदले पेशाब और शक्कर के बदले कीचड़, उसकी सुखड़ी बनती है। ऐ सेठ!

मुमुक्षु : महाराज! आप बारबार व्यवहार के (निषेध की) बात करते हो तो कोई नदी में डूबता हो तो डूबने दें?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन डूबने दे, और करे कौन? वह तो ऐसी देह की क्रिया होनेवाली हो तो हुए बिना नहीं रहती, विकल्प आवे तो करता है परन्तु विकल्प आया तो देह की क्रिया हुई-ऐसा नहीं है और देह की क्रिया हुई तो वह बच गया ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : बचाने का भाव आया, वह धर्म तो हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें धर्म तो कहाँ है? पुण्य-राग है और राग अपने को हितकर (है-ऐसा) मानता है, वह तो मिथ्यात्व का पोषक है। अजर प्याला है भाई! वीतराग का मार्ग है बापू! आहा..हा..!

मुमुक्षु : मार्ग को तो आप पर्याय कराते हो और पर्याय तो द्रव्य में है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग पर्याय है, कर्तृत्व पर्याय में है; द्रव्य में कर्तृत्व कैसा? आहा..हा..! समझ में आया? कर्तव्य-फर्तव्य जो कहना, वह तो पर्याय में है। ऐसी पर्याय से तो भगवान कृतकृत्य ही है। उसका कर्तव्य कोई है ही नहीं। आहा..हा..! ऐ ई नन्दकिशोरजी! है या नहीं इसमें? (शास्त्र) पन्ना है, उस शब्द का तो अर्थ होता है। ज्ञान तो करना पड़ेगा न? अभी तक सुना था कुछ और यह बात है दूसरी। आहा..हा..!

मुमुक्षु : दिगम्बर की वाणी में दिगम्बर होने की ही बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिगम्बर की वाणी में दिगम्बर होना। **दिगम्बर अर्थात् रागरहित, पर्यायरहित की दृष्टि करना, वह दिगम्बर है।**

मुमुक्षु : सबका अर्थ बदल दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबका अर्थ बदल दिया, यह हमारे सेठ कहते हैं। समझ में आया? जैसा था, वैसा अर्थ है। आहा..हा..! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जहाँ दृष्टि डालना है, वह कर्तव्य पर्याय में है। मोक्षमार्ग की पर्याय कर्तव्य है परन्तु वह तो पर्याय का कर्तव्य है। ध्रुव में कर्तव्य है ही नहीं।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल। यह बात तो कहते हैं, परिणाम से शून्य है, तो उसका अर्थ क्या है? समझ में आया? परिणाम-मोक्ष का परिणाम जो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, वे परिणाम हैं, वह परिणाम कर्तव्य है तो वह कर्तव्य तो द्रव्य में है ही नहीं; परिणाम में कर्तव्य हो तो हो... आहा..हा..! शोभालालजी! कभी सुना ही नहीं होगा वहाँ बीड़ी में कहाँ यह? था ही नहीं यह। वापस वहाँ सेठ ऐसा कहता है न! वहाँ तो था ही नहीं न।

आहा..हा..! मार्ग तो ऐसा है। लोगों को ख्याल नहीं है। पर्याय पर इतना जोर-राग पर जोर देता है। अरे! भगवान! पर्याय और राग तो तुझमें है ही नहीं। सुन तो सही! कितना जोर तुझे देना है? पर्याय पर जोर देगा तो मूढ़-मिथ्यादृष्टि होगा। समझ में आया? लालचन्दजी!

अजर प्याला पियो मतवाला चिन्ही अध्यात्मवासा;
आनन्दघन चेतन व्है खेले, देखे लोक तमाशा ॥

आहा...हा... ! भगवान तो आनन्दकन्द है, वह जगत् का साक्षी भी नहीं, भाई !

मुमुक्षु : साक्षी तो पर्याय में होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : साक्षी तो पर्याय है। समझ में आया ? ऐसी तो साक्षी की पर्याय तो जिसमें अनन्त पड़ी है, उसमें साक्षी कहाँ लेना है... समझ में आया ? यह प्रीतिभोज की गाथा है। विवाह होने के बाद करते हैं न अन्तिम जीमण। हमारे यहाँ काठियावाड़ में करते हैं।

मुमुक्षु : अब पार्टी होने का रिवाज हो गया !

पूज्य गुरुदेवश्री : पार्टी हो गयी तो वह लो। हमारे पहले विवाह होता था न तो विवाह में-शादी में पहले सात टाइम जीमाते थे, सात टंक (टाइम) समझे ? तीन दिन और एक आधा दिन।

मुमुक्षु : हमारे यहाँ भी पाँच-पाँच दिन होता था।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ भी पहले ऐसा होता था।

मुमुक्षु : ब्राह्मणों में तो महीनों....

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्राह्मणों में तो एक महीने-महीने। हमारे गाँव में एक श्रीमाली ब्राह्मण है, बारात को एक महीने रखे। फिर अन्तिम दिन जीमन करे (प्रीतिभोज), इसलिए अच्छे में अच्छा और ऊँचे में ऊँचा जीमन करे। इसी प्रकार यह अच्छे में अच्छा और ऊँचे में ऊँचा जीमन है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : यहाँ किसकी शादी हो रही है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शादी, आत्मा की... पुरुभाई ! आहा...हा... !

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा-ध्रुव शादी के परिणाम से भी शून्य है और शादी का क्या; मोक्ष के मार्ग के परिणाम से भी ध्रुव शून्य है। वह तो क्या, सिद्धपद की पर्याय से ध्रुव शून्य है। आहा...हा... ! जो शुद्धता की पर्याय है, उससे भी ध्रुव शून्य है। शुद्ध नहीं परन्तु (ध्रुव) शून्य है क्योंकि केवलज्ञान आदि तो क्षायिक पर्याय है, वह क्षायिकभाव

है। यह आयेगा, क्षायिकभाव है; तो क्षायिकभाव तो पर्याय है; पर्याय, ध्रुव में नहीं है। परमपारिणामिकभाव तो त्रिकाली ध्रुव है, उसमें पर्याय–फर्याय कैसी? समझ में आया?

'बन्ध–मोक्ष के कारण और कर्तृत्व–भोक्तृत्व से और परिणाम से शून्य' – **ऐसा समुदायपातनिका में कहा गया था।** –कथन में पहले यह कहना था–ऐसा आ गया था। **पश्चात् चार गाथाओं द्वारा जीव का अकर्तृत्वगुण के व्याख्यान की मुख्यता से सामान्य विवरण किया गया।** पहले यह आ गया है। अब विशेष बाद में कहेंगे। जो भाव खास कहना है वह। **चार गाथाओं द्वारा...** जीव अकर्तृत्व है–जीव में पर का–पर्याय का कर्तृत्व है ही नहीं। **अकर्तृत्वगुण के व्याख्यान की मुख्यता से...** मुख्यता से सामान्य कथन किया गया। **विवरण किया गया।** विवरण कहो या कथन कहो। **तत्पश्चात् चार गाथाओं द्वारा 'शुद्ध को भी जो प्रकृति के साथ बन्ध होता है, वह अज्ञान का माहात्म्य है' – ऐसा अज्ञान का सामर्थ्य कहनेरूप विशेष विवरण किया गया।**

क्या कहते हैं, देखो! अरे! ऐसा भगवान शुद्ध ध्रुव प्रभु, जिसमें पर्याय भी नहीं, तो विकार कहाँ से आया? ऐसी चीज़ में यह बन्ध जो अज्ञान का प्रगट होता है और कर्म का बन्ध होता है, वह तो अज्ञान का माहात्म्य है। स्वरूप का भान नहीं, इस अज्ञान के कारण से बन्ध होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अज्ञान का माहात्म्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञान का माहात्म्य है न! अज्ञान का माहात्म्य है या नहीं इतना? आहा! वस्तु का माहात्म्य छोड़कर, अज्ञान का माहात्म्य! यह क्या हुआ! चिदानन्द भगवान... कितने ही कहते हैं न कि आत्मा शुद्ध है न! पवित्र है न! उसमें यह अज्ञान कहाँ से आया? ऐसा कितने ही कहते हैं। (उसका उत्तर) यह पर्याय में उत्पन्न किया तो आया। समझ में आया?

चिदानन्द भगवान, नित्यानन्द का नाथ (है); उस पर दृष्टि न करके एक समय के राग और पर्याय पर दृष्टि करके अज्ञान उत्पन्न हुआ। अज्ञान के कारण, ऐसा ध्रुवस्वरूप होने पर भी, बन्ध होता है। समझ में आया? ऐसा अज्ञान का सामर्थ्य कहा है। देखो! अज्ञान का सामर्थ्य कहा है। भ्रम का सामर्थ्य। आहा...हा...!

मुमुक्षु : पर्याय एक और उसका सामर्थ्य कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : है न! आहा...हा...! महाप्रभु! त्रिकाल आनन्द का नाथ का आश्रय नहीं किया और एक समय की पर्याय-राग का आश्रय किया, अज्ञान हुआ। इस बन्ध के कारण में तो.। अज्ञान का सामर्थ्य है, समझ में आया?

मुमुक्षु : धर्म का सामर्थ्य है न बन्ध में?

पूज्य गुरुदेवश्री : बन्ध में धर्म का सामर्थ्य कहाँ से आया? समझ में आया? ऐ ई! इस राग से धर्म होता है—ऐसा कहते हैं या नहीं? व्यवहाररत्नत्रय से निश्चयरत्नत्रय होता है (ऐसा कहते हैं न)! धूल में भी होता नहीं। सुन तो सही! जितना व्यवहार साधन-फाधन कहा है, वह निश्चय से साधन नहीं परन्तु बाधक है। कहो, समझ में आया? मोक्षमार्गप्रकाशक में स्पष्ट किया है। साधक कहा वही बाधक है। समझ में आया?

अलौकिक चीज़! पर्याय जो अन्दर में वर्तमान में वर्तती है, उस पर्याय से भी वह वस्तु अन्दर शून्य है—ऐसा प्रथम कथन में आ गया है। फिर लिया कि बन्ध क्यों होता है? ऐसी चीज़ में बन्ध क्यों होता है? कर्म का बन्ध किया तो क्यों आया? तो कहते हैं स्वरूप के-चिदानन्द भगवान के ख्याल बिना-ज्ञान बिना, उसके अज्ञान से बन्ध होता है। समझ में आया? अज्ञान का माहात्म्य है। **ऐसा अज्ञान का सामर्थ्य कहनेरूप विशेष विवरण किया गया। तत्पश्चात् चार गाथाओं द्वारा जीव का अभोक्तृत्वगुण के व्याख्यान की मुख्यता से व्याख्यान किया गया।** पहले कहा था परन्तु अभोक्तृत्वगुण का सामान्य व्याख्यान था। पहले-पहले आया न। यह अभोक्तृत्वगुण का विशेष व्याख्यान है। **तत्पश्चात् दो गाथाएँ कही गईं, जिनके द्वारा पहले बारह गाथाओं में शुद्धनिश्चय से कर्तृत्व-भोक्तृत्व के अभावरूप....** शुद्धनिश्चय से भगवान आत्मा, पर्याय का कर्ता और भोक्ता नहीं। **तथा बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम के अभावरूप...** पहले शून्य कहा था। समझ में आया?

ध्रुव भगवान आत्मा तो बन्ध के कारण और मोक्ष के कारण परिणाम और बन्ध और मोक्षरूप परिणाम से अभावरूप है। वहाँ शून्य कहा था, यहाँ अभाव कहा। ऐसी बात आ गयी है। समझ में आया? **जो व्याख्यान किया गया था, उसी का उपसंहार किया गया।**

उसका उपसंहार यह है। इस प्रकार समयसार की शुद्धात्मानुभूतिलक्षण.... देखो, भगवान आत्मा ध्रुव! उसकी अनुभूति-अनुभव होना, ऐसी अनुभूति जिसका लक्षण ऐसी **'तात्पर्यवृत्ति' नाम की टीका में मोक्षाधिकार सम्बन्धी चूलिका समाप्त हुई अथवा अन्य प्रकार से व्याख्यान करने पर, यहाँ मोक्षाधिकार समाप्त हुआ।**

फिर विशेष कहा जाता है – अब विशेष स्पष्टीकरण आयेगा। कहते हैं **औपशमिकादि पाँच भावों में किस भाव से मोक्ष होता है, (वह विचारते हैं।)** अब, जरा बात।

मुमुक्षु : वह तो पर्याय की बात...

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की बात है। इन पाँच भावों में एक (भाव) द्रव्य भी है और चार भाव पर्यायें हैं तो किस भाव से मोक्ष होता है ? उसमें किस पर्याय से मोक्ष होता है ? किस अवस्था से आत्मा की मुक्ति होती है ? समझ में आया ?

औपशमिकादि पाँच भावों में किस भाव से मोक्ष होता है, वह विचारते हैं। अब भाव कौन से ? **वहाँ औपशमिक,...** पहला भाव। औपशमिक का अर्थ ? आत्मा में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र होता है, वह उपशमभावरूप है, क्षय नहीं। उसकी प्रकृति के परमाणु पड़े हैं। जैसे जल में मैल है, उसमें फिटकरी डालने से मैल बैठ गया है। मैल समझे न ? नीचे जल में मैल बैठ गया है, निकल नहीं गया; वैसे आत्मा में इस सम्यग्दर्शन में उपशम प्रकृति का दबना-दबना अन्दर, यह उपशम हुआ। प्रकृति का अभाव (क्षय) नहीं हुआ है। समझ में आया ?

एक दृष्टान्त याद आया हमारे पालेज में। मनसुख को पता तो नहीं होगा। इसके पहले की-तेरे जन्म के पहले की बात है। एक बखार थी और बखार पीछे है न, उसके नीचे एक बड़ा सर्प गिर गया, बहुत वर्ष पहले की बात है। इसके पहले की बात है। हमारे वहाँ (पालेज में) दुकान थी न! बड़ी बखार, बड़ा सर्प निकालना किस प्रकार ? बहुत लोग आ चढ़े उसमें कोई बड़ा होगा उसने कहा ठण्डा पानी छिड़को।

मुमुक्षु : पानी छिड़के तो रहे नहीं और मरे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : (सर्प) मर भी न जाये और निकल जाये, पीछे बखार थी न, वहाँ नीचे सर्प। तेरा जन्म तो ७४ में हुआ, उसके पहले की बात है। वह सर्प-बड़ा सर्प था। अब

उसे निकालना किस प्रकार? और नीचे क्या कहलाता है? हड़फो-हड़फो! हड़फो अर्थात् लकड़ी की-लकड़ी की पेटी। अब लकड़ी की पेटी में माल (पेटी) उठाना किस प्रकार? किसी ने कहा कि पानी छिड़को, पहले पानी छिड़कने के बाद पकड़ो। इसी प्रकार इस प्रकृति का उपशम पानी छिड़कना पहले (यह उपशम)। समझ में आया?

दर्शन-मोह की प्रकृति और चारित्रमोह की प्रकृति पर पानी छिड़का-उपशम किया पहले (प्रकृति शान्त हो गयी)। अभाव नहीं किया। ऐसा पर्याय में उपशम। याद आ गया दृष्टान्त। समझ में आया? ऐसा सम्यग्दर्शन, (दृष्टान्त) बहुत बार याद आता था। समझ में आया?

उपशम सम्यग्दर्शन पहले कहा। देखो! इसमें दो ही लेना, औपशमिक के दो प्रकार - ऐसा लेना। एक उपशम सम्यग्दर्शन और उपशम चारित्र दो प्रकार। इस क्षायोपशमिक के अठारह प्रकार तत्त्वार्थसूत्र में अठारह (प्रकार) दिये हैं। (मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ये चार ज्ञान; कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, ये तीन अज्ञान; चक्षु, अचक्षु, अवधि ये तीन दर्शन; क्षायोपशमिक दान-लाभ-भोग-उपभोग-वीर्य ये पाँच लब्धियाँ; ऐसे चार + तीन + तीन और पाँच भेद तथा क्षायोपशमिक (सम्यक्त्व और) चारित्र और संयमासंयम, क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं। तत्त्वार्थसूत्र।) ऐसे अठारह भाव हैं वे तत्त्वार्थसूत्र में हैं और क्षायिक के नौ बोल हैं (केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य तथा 'च' कहने से क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र-ऐसे क्षायिकभाव के नौ भेद हैं। तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय २, सूत्र ४) और उदय के इक्कीस भेद हैं। तत्त्वार्थसूत्र के (तिर्यंच, नरक, मनुष्य, देव ये चार गति; क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय; स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद ये तीन लिंग; मिथ्यादर्शन; अज्ञान; असंयम; असिद्धत्व तथा कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह लेश्या ऐसे चार+चार+तीन+एक+एक+एक+एक और छह = ये सब मिलकर औदयिकभाव के इक्कीस भेद हैं।) **ये चार भाव, पर्यायरूप हैं...** ये चार भाव अवस्थारूप है। त्रिकाली ध्रुवस्वरूप नहीं। थोड़ा समझना पड़े भाई! लम्बा थोड़ा। कितनों को तो पता भी नहीं होगा, पाँच भाव का नाम भी नहीं आता होगा। पाँच भाव है तो ये चार भाव तो पर्यायरूप है, अवस्था है, आत्मा जो ध्रुव त्रिकाल है, वह तो पारणामिकभाव है, वह तो द्रव्यरूप है और

ये चार भाव हैं, वे पर्याय-अवस्थारूप है। दोनों मिलकर पूरा प्रमाण का विषय बनता है। थोड़ा सूक्ष्म आ गया। समझ में आया?

ये चार भाव, पर्यायरूप हैं... पर्याय समझे? अवस्था। पहले कहा न जो ध्रुव! पहले कहा न, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जो जीव ध्रुव, उसकी पर्यायरूप ये चार भाव हैं; ये चार भाव ध्रुवरूप नहीं। तत्त्वार्थसूत्र में आता है परन्तु विचार नहीं, दरकार नहीं। यह तो दशलक्षणी पर्व में पहाड़े बोल जाते हैं, पण्डितजी! नन्दकिशोरजी! है पहाड़े!

तो कहते हैं कि **ये चार भाव, पर्यायरूप हैं....** विशेष स्पष्टीकरण आगे आयेगा। पाँच मिनिट पहले बन्द करते हैं-ऐसी जरूरत है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कल्याण की मूर्ति

हे भव्य जीवों! यदि तुम आत्मकल्याण करना चाहते हो तो स्वतः शुद्ध और सर्वप्रकार से परिपूर्ण आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो तथा उसी का लक्ष्य और आश्रय ग्रहण करो; इसके अतिरक्ति अन्य समस्त रुचि, लक्ष्य और आश्रय का त्याग करो। स्वाधीन स्वभाव में ही सुख है; परद्रव्य तुम्हें सुख या दुःख देने के लिये समर्थ नहीं है। तुम अपने स्वाधीन स्वभाव का आश्रय छोड़कर अपने ही दोषों से पराश्रय के द्वारा अनादि काल से अपना अपार अकल्याण कर रहो हो! इसलिए अब सर्व परद्रव्यों का लक्ष्य और आश्रय छोड़कर, स्वद्रव्य का ज्ञान, श्रद्धान तथा स्थिरता करो।

स्वद्रव्य के दो पहलू हैं — एक त्रिकालशुद्ध स्वतः परिपूर्ण निरपेक्ष स्वभाव और दूसरा क्षणिक, वर्तमान में होनेवाली विकारी पर्याय अवस्था। पर्याय स्वयं अस्थिर है; इसलिए उसके लक्ष्य से पूर्णता की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं होता, किन्तु जो त्रिकालस्वभाव है, वह सदा शुद्ध है, परिपूर्ण है और वर्तमान में भी वह प्रकाशमान है; इसलिए उसके आश्रय तथा लक्ष्य से पूर्णताा की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। यह सम्यग्दर्शन स्वयं कल्याणरूप है और यही सर्वकल्याण का मूल है। ज्ञानीजन सम्यग्दर्शन को 'कल्याणमूर्ति' कहते हैं। इसलिए सर्व प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करने का अभ्यास करो।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

जयसेन आचार्य, ३२० वीं गाथा की संस्कृत टीका का हिन्दी है। पहले दो पैराग्राफ आ गये हैं।

फिर विशेष कहा जाता है... क्या? **औपशमिकादि पाँच भावों में...** पाँच भाव हैं। आत्मा में पाँच भाव हैं। एक, त्रिकाली पारिणामिकभाव और एक, पर्याय / अवस्था के चार भाव...

मुमुक्षु : भाव का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव का अर्थ वस्तु है... है... भवन / अस्तिरूप, होना है। त्रिकाली वस्तु पारिणामिकभाव से है और एक समय की पर्याय चार भाव से है। भाव अर्थात् भवन, होना। एक पर्यायरूप होना और एक त्रिकालरूप होना। यह बात सूक्ष्म है, समझ में आया? पुस्तक है या नहीं सामने? कपूरचन्दजी! पुस्तक रखी है? आया है? पन्ना।

औपशमिक... पाँच भाव, पाँच भाव। पाँच भाव सुने हैं या नहीं कभी? अब सुनते हैं, ठीक! अभी तक तो कुछ सुना नहीं, कहाँ से सुनें! सुनानेवाला नहीं मिला था। यह आत्मा है न आत्मा! शरीर-मन-वाणी भिन्न, कर्म भिन्न उनके साथ सम्बन्ध नहीं। यह आत्मा-वस्तु जो अन्दर है, उसमें पाँच प्रकार के भाव (एक) त्रिकाली भाव अर्थात् भवन रहनेवाली चीज़, उसको पारिणामिकभाव कहते हैं, पारिणामिक अर्थात् सहजभाव, जिसमें कोई अपेक्षा नहीं होती, उसका नाम पारिणामिकभाव है और उसकी पर्याय / अवस्था / हालत में चार भाव। वे चार भाव द्रव्य में नहीं हैं – ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया, शोभालालजी!

यह कहते हैं देखो! **औपशमिकादि पाँच भावों में...** भाव अर्थात् अस्तित्ववाला पदार्थ, परन्तु अस्तित्व में दो प्रकार अस्तित्व। वास्तव में त्रिकाली भाव, वह वास्तविक अस्ति है, वह कल आया था। आत्मद्रव्य लाभ हेतु... कल तुम नहीं थे। समझ में आया?

यह ५६ गाथा, पंचास्तिकाय-आत्मद्रव्य लाभ, आत्मस्वरूप का लाभ / अस्ति। एक, एक चैतन्य अपना त्रिकालीस्वरूप की अस्ति। हयाति शब्द तो आता है न तुम्हारे हिन्दी में? मौजूदगी; ऐसा त्रिकालीस्वरूप जो मौजूदगी, उसको यहाँ पारिणामिकभाव कहने में आता है। पारिणामिक अर्थात् सहजभाव, उसमें किसी पर्याय की अपेक्षा नहीं है, पर की अपेक्षा नहीं है। ऐसे आत्मा में एक पारिणामिकभाव त्रिकाल है, वही आत्मा, वास्तव में वही आत्मा है। लो, वास्तव में। समझ में आया? यह नियमसार में आता है, १५ वीं गाथा में आता है, १५वीं गाथा में, भाई! खरेखर (वास्तव) में वह आत्मा (है)।

वस्तु-अपने त्रिकालस्वभावभावरूप जीव, जो दृष्टि का विषय, जो सम्यग्दर्शन का विषय / ध्येय, जो सम्यग्दर्शन का विषय कि जिसका विषय करने से सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु : खरेखर अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : खरेखर अर्थात् यथार्थ। वास्तव में, खरेखर, यथार्थ में। है या नहीं? यह तो हिन्दी है, इसलिए जरा ख्याल बाहर रह जाता है... हमारे तो गुजराती का परिचय है न? हमारे बहुत.... ३८ - ३८ नियमसार में है न? ३८ गाथा देखो! क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है 'जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने से' जीव की एक समय की पर्याय को यहाँ जीव कहा है। त्रिकाली द्रव्य को छोड़कर एक समय की पर्याय को जीव कहा है और अजीव, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि सातों (ही) परद्रव्य है। समझ में आया? शान्ति से (समझना) यह तो मक्खन-मक्खन है, जैनदर्शन का (मक्खन है)। 'जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है', वह आदरणीय नहीं है। जीव की एक समय की पर्याय, जिसे यहाँ चार भाव कहेंगे, वह पर्याय है। वह आदरणीय नहीं, उपादेय नहीं, अंगीकार करनेयोग्य नहीं; जाननेयोग्य है बस, इतना! समझ में आया?

'वह सहज वैराग्यरूपी (महल के शिखर का शिखामणि...') यह तो मुनि की अपनी बात ली है। औदयिक आदि चार भावान्तरों को अगोचर होने से... कैसा है भगवान आत्मा ध्रुव? कि जो ये पर्यायरूप चार भाव कहेंगे—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, वह पर्याय उस द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। **द्रव्य को पर्याय का अवलम्बन नहीं और पर्याय को द्रव्य का अवलम्बन नहीं**। समझ में आया?

भावान्तरों... भावान्तर अर्थात् पारिणामिकस्वभावभाव त्रिकाल से भावान्तर अन्य पर्याय, अन्य भाव (हैं)। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक आये न चार (भाव)?

यह शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव जिसका स्वभाव है—ऐसा कारणपरमात्मा वास्तव में आत्मा है। यथार्थ में-वास्तव में वह आत्मा है। आहा..हा..! ए पण्डितजी! क्या कहा?

मुमुक्षु : त्रिकाली आत्मा कारणपरमात्मा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारणपरमात्मा, लो! परन्तु यह त्रिकाली जो परमस्वभावभाव है, वही वास्तव में आत्मा है। खरेखर आत्मा-हमारी गुजराती में; हिन्दी में वास्तव में आत्मा है (संस्कृत में) संस्कृत में समझे यहाँ '**कारणपरमात्माहि आत्मा**' कारणपरमात्मा ही आत्मा है। संस्कृत में 'हि' आया! 'हि' आया न? 'हि' का अर्थ यहाँ वास्तव में किया है। गुजराती में खरेखर किया है। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में, परमपारिणामिक -स्वभावभाव, स्वभावभाव; जिसे किसी की अपेक्षा नहीं ऐसा त्रिकालीभाव वही वास्तव में-यथार्थ में-खरेखर आत्मा है। उसकी दृष्टि करने का नाम सम्यग्दर्शन है।

अब यहाँ कहाँ से-आगे से सीखने को आये हैं तो कोई मूल यथार्थ सीखना पड़ेगा या नहीं? आहा...हा...! वास्तव में आत्मा है। 'अति आसन्न भव्य जीवों को ऐसे निजपरमात्मा के अतिरिक्त कुछ उपादेय नहीं है।' पण्डितजी! ध्रुव चिदानन्द नित्यानन्द प्रभु, वही एक आदरणीय है और दृष्टि करनेयोग्य है, लक्ष्य करनेयोग्य है; बाकी कोई चीज़ दृष्टि करनेयोग्य नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? यहाँ तो वास्तविक का... नियमसार है न? फिर यहाँ ये चार भाव हैं न?

अपने आया न? चार भाव, देखो! ये चार भाव हैं। उनमें से **किस भाव से मोक्ष होता है, वह विचारते हैं। किस भाव से मोक्ष होता है, वह विचारते हैं।** विचारते हैं (तो) आचार्यों को नया विचार करना होगा? परन्तु सामान्य समाज को साथ में लेकर कहते हैं, भगवान! अपने विचारते हैं। देखो! इसमें सत्य क्या है? पाँच भावों में से किस पर्याय से, किस भाव से मुक्ति होगी? - यह विचारते हैं। विचारते हैं अर्थात् दुनिया को विचार करने को कहना है तो विचारते हैं - ऐसा लिखा है। आचार्यों को विचारना क्या, वे तो हो गये हैं

सब। समझ में आया? तो उसमें किस भाव से मुक्ति होती है? मुक्ति की पर्याय—आनन्दरूपी दशा, सिद्धरूपी अवस्था—किस पर्याय से-किस भाव से पाँच में से (किस भाव से) होती है, यह विचारते हैं।

वहाँ औपशमिक,... दो भाव-औपशमिक के दो प्रकार हैं यहाँ, देखो! उपशम समकित है न, भाव उपशम है न भाव? उपशमभाव के दो भेद-उपशमसमकित और उपशम चारित्र।यह तत्त्वार्थसूत्र में आता है, दूसरे अध्याय में।

मुमुक्षु : सम्यक्चारित्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सम्यक्चारित्र नहीं, वह फिर दूसरा। यह तो उपशमभाव में दो, पाँच भाव आया न पहले, उसमें। यह तो उपशम सम्यक्चारित्र और उपशमभाव दो। वह तो-सम्यक्चारित्र तो क्षायिकभाव में भी है परन्तु उपशम में दो, बस, एक सम्यग्दर्शन उपशम। उपशम का अर्थ? कर्म की प्रकृति स्थिर हो गयी है, उदय नहीं है, वह उसके कारण से, हों! अपने में पुरुषार्थ इतना स्वभावसन्मुख होकर उपशम सम्यग्दर्शन प्रगट किया और उस स्वभावसन्मुख होकर स्थिरता, ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशमचारित्र। उपशम सम्यग्दर्शन और उपशमचारित्र ये दो पर्याय है। तो पर्याय है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? इस उपशमभाव से मुक्ति होगी - ऐसा कहेंगे। समझ में आया? उपशमभाव से मुक्ति होगी। मुक्ति के मार्ग में उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीनों कहेंगे। अत: उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक में शुद्ध उपयोग आयेगा। पहले से शुद्ध उपयोग, उसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक कहते हैं, वह पाठ में आयेगा। समझ में आया?

अजमेर से वह टीका निकली है न.....

मुमुक्षु : उसने तो स्वीकार किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वीकार किया है कि भाई! आचार्य तो ऐसा लिखते हैं कि चौथे गुणस्थान से उपशम उपयोग / शुद्ध उपयोग मानते हैं परन्तु आगे-पीछे देखने से शुद्ध उपयोग चौथे से नहीं होता है... समझ में आया?

मुमुक्षु : आचार्य ने आगे-पीछे देखने से नहीं लिखा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह समयसार है, अजमेर से प्रकाशित हुआ है। समझ में आया?

३४१ यहाँ। रात्रि को कहा था देखो! *टीकाकार ने यह बताया है कि कालादिलब्धि के वश से जीव को भव्यत्वशक्ति की अभिव्यक्ति होती है। भव्यत्व का भाव है आत्मा में शक्तिरूप वह कालादिलब्धि के वश से व्यक्तता पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि प्राप्त होता है, तभी यह जीव अपने परमात्मद्रव्य का समीचीन श्रद्धान...* तभी यह आत्मा भगवान पूर्णानन्द पूर्ण है ऐसी समीचीन अर्थात् सत्य श्रद्धा *और समीचीन ज्ञान और समीचीन अनुष्ठान-चारित्र करनेरूप में परिणमन करता है।* अपने त्रिकाली भगवान परमात्मा ध्रुवस्वरूप की ओर का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणमन करता है। वह मोक्षमार्ग है। *उस परिणाम को ही आगमभाषा में औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिकभाव नाम से कहा जाता है। अध्यात्मभाषा में शुद्धात्मा के अभिमुखपरिणाम और शुद्धोपयोग नाम पाता है।* उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय को शुद्ध उपयोग, शुद्धात्माभिमुख परिणाम -ऐसे परिणाम अर्थात् पर्याय (कहा जाता है)। कल ये प्रश्न था कि परिणाम क्या? परिणाम कहो या पर्याय कहो? द्रव्य की चार प्रकार की पर्याय-उदय पर्याय, क्षयोपशम, क्षायिक, उपशम, वह पर्याय है, अवस्था है। वह अवस्था, द्रव्य में नहीं है और उस अवस्था में से किस अवस्था से मुक्ति होती है? क्योंकि **अवस्था से अवस्था होती है**। समझ में आया?

किस भाव से मुक्ति होती है तो 'किस भाव'-यह भी अवस्था है-उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक से मुक्ति होती है, वह भी अवस्था है, पर्याय है; द्रव्य-गुण नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य तो करता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? अवस्था, किस दशा से मुक्ति होती है? किस द्रव्य से मुक्ति होती है-ऐसा नहीं। पश्चात् जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव निर्मलपर्याय है, वह अवस्था है और अवस्था से मुक्ति होती है, वह भी एक अवस्था है। इस अवस्था का आश्रय द्रव्य है। समझ में आया? परन्तु वह मुक्ति की पर्याय, द्रव्य के आश्रय से नहीं होती, पर्याय से मुक्ति होती है। शोभालालजी! ऐसा है। गजब बात भाई!

कहते हैं कि अरे! *टीकाकार के उल्लेख से चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धउपयोग होना सिद्ध होता है। समझ में आया? (अब) गड़बड़ होती है। यहाँ दर्शनमोह का क्षय-उपशम*

हो जाता है तो क्या फिर चतुर्थ गुणस्थान में शुद्ध उपयोग मान लेना चाहिए ? नहीं मानना चाहिए–ऐसा कहकर... *इस गुणस्थान में उदय इसका उत्तर यह है कि यहाँ अध्यात्मशास्त्र में दर्शनमोह और चारित्रमोह दोनों का अभाव हो, उसका नाम शुद्ध उपयोग है* – ऐसा ये कहते हैं। अरे ! कहीं वस्तु का पता भी नहीं होता और ऐसी टीका करे। आचार्य का हृदय क्या है, स्वीकार तो करते हैं कि शुद्धोपयोग तो टीकाकार के मत से चौथे गुणस्थान में लगता है।

भगवान आत्मा त्रिकाल परमध्रुवस्वरूप पारिणामिकभाव, वह द्रव्य है। द्रव्य के ध्येय से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय... पर्याय अर्थात् अवस्था अर्थात् परिणाम प्रगट होते हैं तो उस परिणाम को यहाँ शुद्ध आत्माभिमुख, शुद्ध त्रिकाली के अभिमुख परिणाम अथवा शुद्धोपयोग कहने में आया है। तब तो उपशम, क्षयोपशम जब हुआ तो वह शुद्धोपयोग से ही हुआ, वह शुद्धोपयोग ही है ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? सब आचार्य तो चौथे से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, निर्मल वीतरागी पर्याय है और वीतरागी पर्याय क्या शुभराग से होती है ? वह शुद्धोपयोग ही है। चैतन्य भगवान पूर्ण ध्रुव, ध्रुव का ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई वह पर्याय शुद्ध उपयोग ही है। चौथे गुणस्थान में समकित, वह शुद्धोपयोग से सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। समझ में आया ?

वह समयसार में है न ? **उदयति नयश्री अस्तमेति प्रमाणं**। भाई ! सबेरे इन्दौरवाले भाई कहते हैं थे न ! वहाँ प्रमाण 'अस्तमेति' कहा और यह प्रमाण कहा और निश्चय कहा ? वहाँ तो भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप का जहाँ अन्तर्दृष्टि होकर अनुभव हुआ वहाँ तो नय, निक्षेप और प्रमाण का विकल्प ही नहीं है, भेद ही नहीं है। उसका अर्थ यह हुआ कि शुद्धोपयोग से आत्मा में रमते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? वह जो अपने सबेरे चला, वह प्रमाण, नय और निक्षेप, निश्चय से... निश्चय पूज्य है, प्रमाण अपूज्य है – ऐसे दो भाग मिलते हैं। वह प्रमाण का तो ज्ञान सामान्य कहते हैं। समझ में आया ? और इसमें तो जो विकल्प का प्रमाण था, निश्चयनय का भी विकल्प उसमें नहीं – ऐसा कहते हैं वहाँ। भाई ! पहले तो निश्चय का नय यह मैं ध्रुव हूँ, शुद्ध हूँ – ऐसा विकल्प भी नहीं। मैं भेद हूँ – ऐसा विकल्प भी नहीं। यह मैं अभेद और शुद्ध एकाकार हूँ – ऐसा विकल्प भी वहाँ नहीं। ऐसे अन्तर में अनुभव हो, उसका नाम शुद्धोपयोग और उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि बात तो लगती तो है परन्तु अब अपने को दूसरी जगह ऐसा कहा है और वैसा कहा है - ऐसा कहकर उड़ा दिया। यहाँ कहते हैं क्या किया, देखो! किस भाव से मुक्ति होती है? तो जो उपशमभाव (के) दो भाग हैं, उपशम सम्यक्त्व और उपशम चारित्र? पीछे क्षायिकभाव के नौ भेद हैं। है फिर क्षायिकभाव है और पहले लिखाया क्षायिक-क्षायिकभाव लिया, यहाँ क्षयोपशम लिया है पहले, ये अठारह भेद हैं लो! यह मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान, ये चार ज्ञान क्षयोपशम भाव से है। यह पर्याय, द्रव्य में नहीं है। समझ में आया? पश्चात् कुमति, कुश्रुत और विभंग / कुअवधिज्ञान -तीन अज्ञान ये भी पर्याय है, परिणाम है। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन भी तीन पर्याय है। काललब्धि, करणलब्धि, उपदेशलब्धि (इत्यादि पाँच) लब्धियाँ आती हैं न, उसको यहाँ समाहित कर दिया है, उपशमलब्धि, प्रयोग्यलब्धि—इन भेदों की पाँच लब्धियाँ, ये पाँच लब्धियाँ पर्यायरूप है, सुनो! समझ में आया?

मुमुक्षु : पाँच पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु द्रव्य के आश्रय से सम्यक् पर्याय उत्पन्न होती है परन्तु यहाँ तो पश्चात् सम्यग्दर्शन की पर्याय से मुक्ति होती है-ऐसा कहना है। समझ में आया? उदयभाव के इक्कीस भेद हैं। चार गति, वह पर्याय में है, आत्मा की अवस्था में है, वे आश्रय करनेयोग्य नहीं हैं। मनुष्यगति है तो उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा नहीं है और क्रोध, मान, माया, लोभ चार (कषायें), वे भी कषाय पर्याय है। राग-द्वेष की पर्याय, वह भी आश्रय करनेयोग्य नहीं है। वह पर्याय है। स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग, नपुंसकलिंग इस भेद से लिंग तीन प्रकार हैं। भाव लिंग भी तीन, हों! सामान्य संग्रहनय से मिथ्यादर्शन एक, अज्ञान एक, असंयम एक, असिद्धत्व एक और शुक्ललेश्या आदि छह लेश्याएँ (इस प्रकार) इक्कीस बोल पर्याय में हैं, उदयभाव में हैं, उदयभाव में हैं, ये सब बोल विकार में हैं; उनसे मुक्ति नहीं होती।

पहले उपशमभाव कहा, उससे मुक्ति होती है। मोक्ष के कारणरूप। ये अठारह भेद जो क्षयोपशम के कहे, उसमें मति-श्रुतज्ञान आदि से मुक्ति होती है।

मुमुक्षु : वह पर्याय बढ़कर क्षायिक होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक होती है। समझ में आया? परन्तु वह पर्याय, द्रव्य में नहीं—ऐसी बात है, भाई! अध्यात्म को बहुत सूक्ष्मरूप से रखा है। आहा...हा...!

पश्चात् पारिणामिकभाव के तीन भेद। (इस प्रकार) ५३ भेद हुए। पाँच भाव के ५३ भेद (हुए)। पहले उपशम के दो; क्षायिक के नौ-क्षायिक सम्यक्त्व, यथाख्यातचारित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, और अन्तराय के पाँच—दान, लाभ आदि क्षायिक भी पर्याय है। समझ में आया? द्रव्य में पर्याय नहीं परन्तु यह पर्याय, मोक्षरूप है। समझ में आया? गजब बात भाई! जानना कि यह जैनदर्शन क्या चीज़ है? लोग ऐसा का ऐसा मान लेते हैं कि जैनदर्शन ऐसा और वैसा, ऐसा लिखते हैं। बापू! जैनदर्शन सूक्ष्म है, भाई! वस्तु का स्वरूप ही जैनदर्शन है। वह कोई कल्पित सम्प्रदाय नहीं है। कहते हैं कि ये नौ भेद पर्यायरूप हैं। आहा...हा...! इन नौ भेद को, नियमसार में चार ज्ञान को विभावज्ञान कहा है और केवलज्ञान को स्वभावज्ञान कहा है और दूसरी जगह इन चार भाव को—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक—चार भाव को आवरणसहित कहा है क्योंकि उसमें निमित्त का अभाव केवलज्ञान में पड़ता है अथवा केवलज्ञान का आश्रय करने से, अपने में तो केवलज्ञान है नहीं, दूसरे को केवलज्ञान है, उसका लक्ष्य करने से तो विकल्प उठते हैं, उसको लाभ नहीं होता। इस कारण चार भाव, विभावभाव कहे गये हैं। आहा...हा...! पहले तीन ज्ञान को विभावभाव कहा था, उसी नियमसार में फिर चार भाव को भी विभावभाव कहा (गाथा ५०) क्योंकि वह त्रिकाली स्वभाव नहीं। विभाव शब्द से विशेष अवस्था। विशेष अवस्था, उसका नाम विभावभाव। वह आश्रय करनेयोग्य नहीं है। समझ में आया?

पारिणामिक में तीन-भव्यत्व, अभव्यत्व, वह आयेगा इसमें, वह आयेगा। देखो! अपने यहाँ क्या कहते हैं, देखो! वह आयेगा, वह तुरन्त ही आयेगा।

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक और औदयिक चार भाव। चार कहे न अभी! वे पर्यायरूप हैं, अवस्थारूप हैं, दशारूप हैं, परिणामरूप हैं, अंशरूप हैं। **और शुद्धपारिणामिक (भाव), द्रव्यरूप है।...** है इसमें? त्रिकाल... त्रिकाल बिम्ब भगवान चिद्बिम्ब वीतरागमूर्ति अकषायस्वभाव का पिण्ड, वह पारिणामिकभाव, वह द्रव्यरूप है, वस्तुरूप है। समझ में आया? **वह परस्पर सापेक्ष, ऐसा द्रव्यपर्यायद्वय...** द्रव्य और पर्याय युगल, वह आत्मपदार्थ है-**दो मिलकर पूरा आत्मा प्रमाण का विषय कहने में आता है।**

निश्चय का विषय तो ध्रुव आत्मा, वही वास्तव में आत्मा है। आहा...हा... ! समझ में आया ? वह परस्पर त्रिकाल वस्तु ध्रुव, वह पारिणामिकभाव का आत्मा और चार पर्याय, वह वर्तमान पर्यायरूप आत्मा; पर्यायरूप व्यवहार आत्मा है। आहा...हा... ! वह (पारिणामिकभाव) निश्चय आत्मा। मोक्ष भी व्यवहार से होता है और मोक्ष का मार्ग भी व्यवहार है - ऐसी बात है। बन्ध की बात तो एक ओर रखो, परन्तु मोक्ष का मार्ग है, वह व्यवहार है क्योंकि पर्याय है और वह 'जिणामयं' किसी ने पूछा था। प्रश्न नहीं कहा था ? तीर्थ और तीर्थ का फल। तुमने प्रश्न किया था न ? तीर्थ और तीर्थ का फल, यह तीर्थ भी मोक्ष के मार्ग की पर्याय है, व्यवहार (है) और उसका फल मोक्ष भी व्यवहार, क्योंकि वह एक समय की पर्याय है।

मुमुक्षु : हम तो राग को व्यवहार समझते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ राग-फाग तो कहीं रह गया अब। समझ में आया ? राग तो परद्रव्य में स्पष्ट निकाल दिया और **एक समय की पर्याय, द्रव्य की अपेक्षा, वह भी परद्रव्य है** - ऐसी बात है। है ?

मुमुक्षु : सिद्ध पर्याय ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध पर्याय है। वीतरागी निर्मल शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय, वह तीर्थ है। वह निश्चय द्रव्य की अपेक्षा से **सक्रिय परिणाम** हुआ। भगवान आत्मा **ध्रुव तो निष्क्रिय** है। समझ में आया ? थोड़ा-थोड़ा समझना परन्तु यह माल है। ऐ चिमनभाई ! भगवान के घर का यह माल है। तेरे घर का यह माल है।

मुमुक्षु : कितनी-कितनी बात याद रखनी पड़ेगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना रखना है। उसमें कुछ रखना है ? कुछ रखना नहीं है। जो त्रिकाली वस्तु भगवान ध्रुव है, बस वही वास्तविक द्रव्य है और एक समय की अवस्था में चार भाव हैं, वह पर्याय आत्मा है; वह त्रिकाल में नहीं है। इसमें याद कहाँ, कितना रखना है ? आहा...हा... ! समझ में आया ?

वहाँ, प्रथम तो... चौथा पैराग्राफ **जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व - ऐसे तीन प्रकार के पारिणामिकभावों में,...** अब पारिणामिक के तीन भेद लिये। वह ऊपर से साधारण

नाम लिया था। उस पारिणामिक के तीन भेद लिये क्योंकि मूल पारिणामिक स्वभाव त्रिकाल है, वह समझाना है। तो भेदरूप पारिणामिकभाव है, वह अशुद्ध पारिणामिक है – ऐसा बताना है। तत्त्वार्थसूत्र में आया न? पारिणामिक के तीन भाव (भेद) जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व। यह अशुद्धनय से / व्यवहारनय से कथन है। समझ में आया? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व, ये तीन प्रकार के पारिणामिकभाव हैं। इनमें किसी कर्म की, पर की अपेक्षा नहीं है। **शुद्धजीवत्व - ऐसा जो शक्तिलक्षण पारिणामिकपना,...**अब सुनो! शुद्धजीवत्व, त्रिकालध्रुव, शुद्ध जीवपना, आत्मा जो वास्तव में... नियमसार में 'वास्तव में' कहा न! समझ में आया? ऐसा शुद्धजीवपना, त्रिकाल ध्रुवपना, अभेद चैतन्यस्वभावपना, वह शुद्धजीवत्व। **ऐसा जो शक्तिलक्षण...** शुद्ध शक्तिलक्षण है। ध्रुव का लक्षण है, सत्व का लक्षण है, त्रिकाल जीवत्वभाव, वह पारिणामिकपना, वह पारिणामिकभाव है, सहजभाव है, त्रिकालभाव है, एकरूप भाव है। **वह शुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रित होने से...** देखो! पहले यह आया था, शुद्धद्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व से रहित है। आहा...हा...! भगवान आत्मा त्रिकाली जीवपना अर्थात् ध्रुवपना, ज्ञान-दर्शन-आनन्द-वीर्य आदि ध्रुवपना, जीव का जीवपना, जीव का जीवपना, वह जो त्रिकाली है... जीवत्व है न? उसमें जीवपना है-ऐसा शक्तिलक्षण पारिणामिकपना **शुद्धद्रव्यार्थिकनयाश्रित होने से...** वह तो शुद्ध द्रव्य त्रिकाली का ज्ञान करनेवाला जो नय, उस आश्रित त्रिकाल जीवत्व को ध्रुव कहने में आता है। वह **निरावरण...** है। **वह त्रिकाल जीवत्वस्वभाव तो निरावरण है।** आवरण-फावरण कुछ है नहीं; **आवरण तो नहीं, परन्तु आवरण का अभाव भी उसमें नहीं; वह तो त्रिकाल निरावरणस्वरूप ही है।** समझ में आया?

तीन में जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व—तीन में शुद्धजीवत्व—ऐसा जो शक्तिलक्षण पारिणामिकपना, वही वस्तु का त्रिकाली स्वरूप है, वह शुद्धद्रव्यार्थिकनय (आश्रित) होने से त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से ज्ञान करनेवाला नय कहते हैं। इस कारण वह निरावरण है। शुद्धजीवपना त्रिकाल निरावरण, शुद्धजीवपना-ध्रुवपना ज्ञान, दर्शन, आनन्द, सत्ता आदि त्रिकाली स्वभावभाव जो जीव का जीवपना, जीव की शक्ति, उसका स्वरूपपना-ऐसा शक्तिलक्षण पारिणामिकपना, वह त्रिकाल निरावरण है। समझ में आया? गजब भाई! श्यामदासजी! यह तो कभी सुना ही नहीं ऐसी बात है।

एक बार यह उसमें रह गया। **और 'शुद्धपारिणामिकभाव' - ऐसी संज्ञावाला जानना;...** शुद्धपारिणामिक त्रिकाल जीवत्वभाव को, ध्रुवस्वभाव को; जिसमें पर्याय की भी अपेक्षा नहीं, अवस्था-हालत की अपेक्षा नहीं, वर्तमान परिणाम की अपेक्षा नहीं-ऐसा त्रिकाली पारिणामिकस्वभावभाव, ध्रुव नित्यानन्द प्रभु की पारिणामिकभाव ऐसी संज्ञा-ऐसा नामवाला उस जीवत्व को कहा जाता है। समझ में आता है या नहीं? बहुत सादी भाषा है, ऐसी कोई कड़क भाषा नहीं है, संस्कृत और व्याकरण और सब (ऐसी भाषा नहीं है) नन्दकिशोरजी! यह आत्मा का ध्रुवस्वरूप, यह ध्रुवस्वरूप—त्रिकालस्वरूप जो दृष्टि का विषय है। सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय वह है; पर्याय-वर्याय वह सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहा...हा...!

प्रथम धर्म उत्पन्न होने में वह भगवान त्रिकाली ध्रुवस्वरूप ही आश्रय करनेयोग्य है। नन्दकिशोरजी! है? उसमें है! देखो न! पन्ना तो उसके लिये रखा है, हमारे लालचन्द सेठ आया था कि अपने वहाँ जायें तो हिन्दी है या नहीं वहाँ? लो! आ गया-यह हिन्दी पहले से छपाया है। कहाँ गया लालचन्द सेठ? वह यहाँ बैठा। यह तो यहाँ पहले से छपाया है, पन्द्रह सौ, भाई! ये हिन्दी लोग आयेंगे तो सबको हाथ में देते हैं। हिन्दी पढ़ना पढ़ेगा। गुजराती ठीक से समझ में नहीं आयेगा और भाव गूढ़ है तो पहले से रामजीभाई ने पन्द्रह सौ छपाये हैं। रामजीभाई ने छपाये या छपने का था तो छपा? परन्तु कहने में कैसे आये?

मुमुक्षु : आपने तो सबेरे पढ़ा तू खिरता है - मंगलाचरण में यह पढ़ा, खिरता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह खिरता है। खिर जाते हैं, नाश नहीं करते-ऐसी चीज़, ऐसी है। तो प्रश्न ऐसा हुआ कि आचार्य ने ऐसा क्यों नहीं लिखा? ऐसा क्यों नहीं लिखा कि कर्म उसके कारण से खिरते हैं, आत्मा कर्म का नाश करता है?- ऐसा लिखा तो उसका अर्थ क्या? प्रत्येक पद में-प्रत्येक गाथा में, उस गाथा का शब्दार्थ करना, नयार्थ करना (कि) किस नय का वाक्य है? और आगमार्थ करना कि यह आगम का भाव है या अन्यमती का भाव है। समझ में आया? और उसका भावार्थ-तात्पर्य क्या है? ऐसे प्रत्येक गाथा में पाँच (प्रकार से) अर्थ करना - ऐसा समयसार में, परमात्मप्रकाश में, द्रव्यसंग्रह में ऐसा चला है। एक-एक गाथा में पाँच-पाँच अर्थ करना। ऐसे शब्दार्थ करना, किस नय का यह वाक्य है? (१) शब्दार्थ (२) नयार्थ (३) आगमार्थ (४) तात्पयार्थ (५) भावार्थ। समझ में आया?

मुमुक्षु : हमें और तो कुछ काम नहीं बस यही करते रहेंगे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही करते रहना, दूसरा क्या काम है ? धूल भी नहीं कर सकते, कपड़े-बपड़े का व्यापार नहीं कर सकते, कुछ नहीं। तुम्हारा कपड़ा नहीं, सोना है। वह सोने का धन्धा है। सोने में भी सरकार की ओर से झंझट खड़ा हुआ है। इतना खपे और इतना खपे ऐसा करके। ठीक है वह तो ऐसा बाहर में संयोग होता है। यहाँ तो कहते हैं, जीवत्वशक्ति कौन ? त्रिकाल-एक समय की पर्याय भी नहीं, भव्य-अभव्य भी मैं नहीं। समझ में आया ? धर्मी जीव, जीवत्वशक्ति की दृष्टि होने से... समकिती की दृष्टि त्रिकाल जीवत्वशक्ति पर है; उस कारण से वह भव्य-अभव्य मैं नहीं। यह चौदह मार्गणा में आता है या नहीं ? चौदह मार्गणा, गति-जाति, कषाय-लेश्या मार्गणाएँ आती हैं या नहीं ? वे चौदह मार्गणाएँ मुझमें है ही नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? भेद है न भेद ? पर्याय का भेद, द्रव्य में नहीं, यह यहाँ कहते हैं। '**शुद्धपारिणामिकभाव**' - **ऐसी संज्ञावाला जानना ;.... वह तो बन्धमोक्ष-पर्यायपरिणतिरहित है....** देखो ! कौन ? जो त्रिकाली भगवान चैतन्य ध्रुव जीवत्व नित्यानन्द प्रभु—ऐसा आत्मा का ध्रुवस्वभाव, वह बन्ध-मोक्ष-पर्यायपरिणतिरहित है। उसमें तो बन्ध की पर्याय और मोक्ष की पर्याय की परिणति शुद्धजीवत्वशक्ति में-ध्रुव में नहीं है। समझ में आया ?

कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन

हे जीवो ! यदि आत्म-कल्याण करना चाहते हो तो पवित्र सम्यग्दर्शन प्रगट करो। वह सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए सत्समागम से स्वतः शुद्ध और समस्त प्रकार से परिपूर्ण आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो, उसी का लक्ष्य और आश्रय करो। इसके अतिरिक्त जो कुछ है, उस सर्व की रुचि, लक्ष्य और आश्रय छोड़ो। त्रिकाली स्वभाव सदा शुद्ध है, परिपूर्ण है और वर्तमान में भी वह प्रकाशमान है; इससे उसके आश्रय से / लक्ष्य से पूर्णता की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। यह सम्यग्दर्शन स्वयं कल्याणस्वरूप है और वही सर्व कल्याण का मूल है। ज्ञानी, सम्यग्दर्शन को कल्याण की मूर्ति कहते हैं। इसलिए हे जीवो ! तुम सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करने का अभ्यास करो।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

जयसेनाचार्य की टीका। अलौकिक टीका है, सारे जैनदर्शन का मक्खन-सार भरा है।

यहाँ क्या चलता है ? किस भाव से मोक्ष होता है, यह बात चलती है। आत्मा वस्तु है, ज्ञानानन्द ध्रुवस्वरूप (है) और पर्याय में अशुद्धता है तो उस आत्मा को-पाँच भाव है, पाँच भाव; उसमें परमपारिणामिकभाव तो त्रिकाली ध्रुव अविनाशी वस्तु है। समझ में आया ? यह आगे कहेंगे, वह निष्क्रिय है, भाई ! सिद्धान्त में निष्क्रिय की गाथा निकलती है। पंचास्तिकाय में टीका में (गाथा है)। यह सिद्धान्त में पारिणामिकभाव को निष्क्रिय कहा है। पंचास्तिकाय की गाथा की टीका। जयसेनाचार्य की टीका में श्लोक है। 'निष्क्रियो पारिणामिक:' भगवान आत्मा ध्रुवस्वरूप जो निष्क्रिय है, उसमें परिणति अर्थात् पर्याय अर्थात् अवस्था की क्रिया नहीं है; अत: वह मोक्ष का कारण नहीं। समझ में आया ? तो मोक्ष का कारण कौन है ? - यह बात यहाँ आचार्य सिद्ध करके लोगों को कहते हैं।

सुन भैया ! पाँच भाव में पारिणामिकभाव जो त्रिकाली है, वह तो शुद्ध ध्रुव है। अब पारिणामिक के जो तीन भेद लिये थे - अशुद्धपारिणामिक के तीन बोल, जो दस प्राण, पाँच इन्द्रिय लिए तो है पारिणामिक में। उसको पाँच इन्द्रिय-भावेन्द्रिय, हों और वीर्य, मन, वचन, काया के कम्पन में जो वीर्य है, वह वीर्य यहाँ, कम्पन का दूसरा, ऐसा दस प्राणरूप जीवत्व वह अशुद्ध पारिणामिकभाव। पारिणामिक, उसे पारिणामिक कहा। लो, अशुद्धभाव में तो कर्म की निमित्तता आती है परन्तु ऐसा यहाँ नहीं गिनने में आया। वह दस प्राणरूप की पर्याय, पाँच इन्द्रिय, मन, वचन और श्वास तथा आयुष्य की योग्यतारूप जो अन्दर परिणमन है, वह अशुद्ध पारिणामिकभाव का भेद है। समझ में आया ? और भव्यत्व तथा अभव्यत्व, ये तीन बोल जो तत्त्वार्थसूत्र में लिये हैं, वे तीनों अशुद्ध पारिणामिकभाव का कथन है। उसमें त्रिकाली जीवनशक्ति भगवान पारिणामिकभाव स्वभावरूप, वह तो

त्रिकाली ध्रुव है। समझ में आया? वह ध्येय करनेयोग्य है परन्तु मोक्ष की पर्याय और मोक्ष का कारणभाव, वह उसमें नहीं है। समझ में आया?

आगे कहेंगे, ध्येय तो है यह त्रिकाल भगवान ध्रुवस्वरूप, ज्ञान का दल। समझ में आया? जैसे दर्पण में... शीशा, दर्पण को शीशा कहते हैं न? उसकी पर्याय वर्तमान में स्वच्छता के कारण अग्नि, बर्फ आदि दिखते हैं, वह अग्नि, बर्फ नहीं है। वह तो दर्पण की वर्तमान स्वच्छ अवस्था है परन्तु उस अवस्था के पीछे दर्पण का जो दल पड़ा है, वह मूल चीज़ दर्पण की है। समझ में आया? इसी तरह आत्मा में जो पर्याय चलती है–रागादि या क्षयोपशम आदि, एक समय की पर्याय को यहाँ पारिणामिक में गिनने में आया है। अशुद्ध पारिणामिक में गिनने में आया है।

उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक वास्तव में तो पारिणामिक की पर्याय है परन्तु यहाँ कहते हैं कि किस भाव से मोक्ष होता है? तो पहले तीन को अशुद्ध पारिणामिक गिनकर, अब भव्यत्व का क्या हुआ – यह बात है। अभव्य का तो कभी मोक्ष होता नहीं; इसलिए उसकी बात छोड़ दी। अब त्रिकाली जीवत्व शक्ति जो ध्रुव.. ध्रुव.. है, वह तो निष्क्रिय है, उसमें परिणमन नहीं। अत: सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र का परिणमन है, वह किसे होता है? भव्य जीवों को होता है। समझ में आया? तो अभी तक क्यों नहीं हुआ? तो उसका घातक कौन है? निमित्तरूप से (घातक कौन है?), यह बात करते हैं।

देखो, **उन तीनों में,...** तीसरे पृष्ठ की पहली लाईन। **उन तीनों में,...** उन तीनों में अर्थात् दस प्राणरूप जीवत्व और भव्यत्व–अभव्यत्व, इन तीनों में। **भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो...** गाथा सूक्ष्म है। मूल चीज़ है। आचार्य ने जंगल में रहकर ऐसा अमृत शास्त्र बनाया है। समझ में आया? शास्त्र का बहुमान... वे हैं न वे सिक्ख, सिक्ख लोग, ग्रन्थ साहिब (कहते हैं) उनका ग्रन्थ आवे तो खड़े हो जाते हैं – ऐसा बहुमान। ग्रन्थ साहिब कहते हैं। यह तो महा अध्यात्म ग्रन्थ साहिब है। समझ में आया? यह तो उसमें क्या बात है, ठीक समझने की चीज़ है। यह तो अलौकिक बात है। परमेश्वर के मुख से निकली हुई दिव्यध्वनि का यहाँ सार इस गाथा में जो रचना की है।

कहते हैं, भव्यत्व–जो तीन बोल में जो भव्यत्व है – ऐसा पारिणामिक को तो

यथासम्भव सम्यक्त्वादि जीवगुणों का... गुण शब्द से यहाँ पर्याय लेना है। सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की अवस्था और सम्यक्चारित्र जो आनन्दरूप अनुभव है, वह मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? तो मोक्ष के मार्ग में घातरूप निमित्त कौन है? समझ में आया? आत्मा का-आनन्द का अनुभव होना, आनन्द का-सुख का स्वाद आना... समझ में आया? उसका नाम अनुभूति और उसका नाम मोक्ष का मार्ग है। उस आनन्द के अनुभवरूपी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शान्ति, उस सम्यक्त्व आदि जीव पर्याय का घातक; गुण का तो कोई घातक है नहीं, गुण तो त्रिकाली है। समझ में आया? द्रव्य और गुण तो त्रिकाली है, वे तो निष्क्रिय हैं, वह तो कह दिया परन्तु उसकी पर्याय में-अवस्था में-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो आनन्द की दशा है, अपने निज घर के आनन्द का अनुभव है। समझ में आया? वह मोक्ष का मार्ग, उसका घातक... घातक तो यहाँ निमित्त से कहना है। घात तो, अपने स्वभावसन्मुख की अनुभव गति नहीं करते तो इस कारण से अपनी निर्मल पर्याय, मिथ्यात्व में रुक गयी है। समझ में आया? तो उस मिथ्यात्व में रुकी है तो उसमें निमित्त कौन है? कि **'देशघाती' और 'सर्वघाती' - ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्मसामान्य...** है?

मुमुक्षु : हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : हो गया, क्या हो गया? ऐसा कि घाती हो गया - ऐसा कहते हैं। सेठ! पहले से कहा न, कि यह व्यवहारनय का कथन है क्योंकि अपनी पर्याय निर्मल प्रगट क्यों नहीं हुई? तो अपना लक्ष्य न करने से जो प्रगट नहीं हुई तो उसमें पर का लक्ष्य हुआ, तो उसमें घात करने की प्रकृति दर्शनमोह, चारित्रमोह की प्रकृति जड़ है, उस निमित्त पर लक्ष्य करने से अपनी वीतरागी पर्याय का घात होता है। समझ में आया?

यथासम्भव... समकित, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन **जीव गुणों का घातक देशघाति;** समकितमोहनीय आदि है, वह देशघाति है और मिथ्यात्वमोहनीय है, वह सर्वघाति है और चारित्र में भी अनन्तानुबन्धी आदि है, वह सर्वघाति है और संज्वलन आदि कषाय है, वह देशघाति है। समझ में आया? देश से अंश में घात में निमित्त हो, और सर्वघात में निमित्त हो, उस प्रकृति को देशघाति और सर्वघाति कहने में आता है। तो कहते हैं कि

भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो यथासम्भव... उसके योग्य ऐसा। **यथासम्भव सम्यक्त्वादि...** जीव के आनन्द की-शान्ति की पर्याय, वीतरागी आनन्द के स्वाद की दशा, ऐसी पर्याय को घातरूप देशघाति। समझ में आया? केवलज्ञानावरणीय और केवल दर्शनावरणीय भी सर्वघाति है और उसका चार ज्ञान और तीन अज्ञान आदि, दर्शन है, वह देशघाति है। वह तो अपनी पर्याय में केवलज्ञान नहीं, केवलदर्शन नहीं तो उसके घात में निमित्त कौन? कि केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय निमित्त है। समझ में आया? और अपने में सम्यग्दर्शन की पर्याय नहीं तो उसमें-विपरीत पर्याय में निमित्त है? विपरीत पर्याय आत्मा करता है। अपने आनन्द का ख्याल छोड़कर पर में सुख मानता है, राग में-पुण्य में (सुख मानता है), यह मान्यता मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? इस मिथ्यात्वभाव में निमित्तपना कौन है? मिथ्यात्व प्रकृति, वह सर्वघाति है, यह सिद्ध किया। समझ में आया?

यहाँ कहना है कि भव्यत्व पारिणामिकभाव है। भाई! फिर पारिणामिकभाव को घात में निमित्त लिया। पर्याय तो अपनी है, अपने से, परन्तु निमित्त है घातिकर्म और देशघाति को निमित्त कहने में आया। यह इसमें बताया। **ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्म...** मोहादिकर्म, मोह अर्थात् मिथ्यात्व मोह, चारित्रमोह, आदि में केवलज्ञानावरणीय, केवलदर्शनावरणीय आदि; मति ज्ञानादि इत्यादि ऐसे (मोहादिकर्म) **सामान्य पर्यायार्थिकनय से ढँकता है,...** क्या कहते हैं? वस्तु तो त्रिकाल है, उसमें तो ढँकना-खुलना कुछ है नहीं। भगवान चैतन्य आनन्दबिम्ब प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द का-सुख का सागर आत्मा पड़ा है। लो, सेठ! यह सागर, तुम्हारा सागर नहीं। आहा..हा..!

अतीन्द्रिय भगवान आत्मा जीवत्वशक्ति में जो परम आनन्द त्रिकाल पड़ा है, उसकी दृष्टि नहीं करने से, उसमें जो दु:ख की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें घाति आदि कर्म निमित्त कहने में आते हैं। वह परद्रव्य घात नहीं करता। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय को घात नहीं करता परन्तु यहाँ तो कथन समझाना है तो क्या कहे? अल्पभाषा में जो भाव कहना है तो ऐसे कह सकते हैं। ऐसा लम्बा-लम्बा करने जाये-अपनी पर्याय में अपने दोष से स्व का आश्रय न लेकर पर का आश्रय करते हैं तो मिथ्यात्व होता है, उसमें कर्म निमित्त पड़ते हैं—ऐसी लम्बी-लम्बी बात न करके संक्षिप्त की है। सेठ!

मुमुक्षु : बराबर, बहुत लम्बा व्याख्यान पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लम्बा-लम्बा हो जाये, संक्षेप में उसे कहना हो तो इस प्रकार से ही कह सकते हैं, दूसरे प्रकार से नहीं कह सकते।

कहते हैं, **ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्मसामान्य...** उसके अन्तर्भेद बहुत होते हैं। सामान्य रीति से मोहकर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय—ऐसे सामान्य रीति से कहने में आते हैं। उसके अन्तर्भेद ले लेना।

पर्यायार्थिकनय से ढँकता है, ऐसा जानना।... यह क्या कहते हैं? अपनी भव्यत्वशक्ति में आनन्द का अनुभव होना चाहिए, उसकी योग्यता तो वह है, परन्तु उस आनन्द का अनुभव नहीं, अर्थात् सम्यग्दर्शन नहीं तो उस सम्यग्दर्शन में घातरूप क्या चीज़ है? कि उस पर्यायार्थिकनय से-अवस्थादृष्टि से घात किया जाता है, वस्तु में कोई घात करता है - ऐसा है नहीं। पर्यायार्थिकदृष्टि से। पर्याय में-अवस्था में घात होता है। समझ में आया? गजब बातें भाई! आहा..हा..! **पर्यायार्थिकनय से ढकता है-ऐसा जानना।** ऐसा जानना - यह कहते हैं। तो उस जोरवाला कहता है, देखो भैया! मोहादिकर्म पर्यायार्थिकनय से ढँकता है - ऐसा मानना। जाओ।

मुमुक्षु : स्पष्ट लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट लिखा है न? स्पष्ट लिखा है परन्तु किस नय का कथन है, वह समझना चाहिए या नहीं? प्रत्येक गाथा में पाँच बोल लिये थे पहले। प्रत्येक गाथा में शास्त्र में ऐसा चला है (कि) प्रत्येक गाथा का शब्दार्थ करना, नयार्थ करना कि यह निश्चय का कथन है या व्यवहार का। स्वद्रव्य का आश्रय हो तो निश्चय; परद्रव्य का आश्रय हो तो व्यवहार-नयार्थ। आगमार्थ-आगम का भाव यह है और अन्यमति का भाव, उसमें विरोध यह है - ऐसा करके तात्पर्य निकालना। प्रत्येक गाथा में तात्पर्य निकालना और प्रत्येक गाथा में पाँच बोल लेना। समझ में आया? फुरसत किसको? ऐसा निर्णय करने की फुरसत (कहाँ है)? यह पाप का धन्धा करना। वकील! वकील का धन्धा क्या है? पाप।

मुमुक्षु : नवराश अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : फुरसत, फुरसत नहीं फुरसत। आहा..हा..!

मुमुक्षु : धर्म की फुरसत नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; उसके लिए-पाप के लिए फुरसत है। चौबीस घण्टे रात-दिन अज्ञान... तो कहते हैं कि राग-द्वेष और अज्ञान तो जीव करता है। उसमें कर्म निमित्त है। वह कर्म निमित्त, पर्याय को घातता है अथवा पर्याय में घात अपने से होता है, उसमें निमित्त पड़ता है। पर्याय के साथ निमित्त-निमित्त सम्बन्ध है; द्रव्य-गुण के साथ कर्म की पर्याय का निमित्त का सम्बन्ध है नहीं - ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? यह समझाये छे काईं - यह हमारी काठियावाड़ी-गुजराती भाषा है। समझ में आता है - यह तुम्हारी (हिन्दी भाषा है)। आहा..हा..!

कहते हैं कि भव्यत्वशक्ति में तो मोक्षमार्ग होने की योग्यता है परन्तु वह मोक्षमार्ग कहते हैं कि भव्यत्व पारिणामिकभाव में क्यों नहीं हुआ? समझ में आया? वह तो अपने भव्यत्वकारण की योग्यता प्रगट नहीं करने से हुआ परन्तु यहाँ कर्म का निमित्त बताना है। **ऐसा जानना...** और कोई ऐसा कहे कि भव्यत्व तो पारिणामिकभाव से है, उसमें कर्म का-निमित्त का घात-बात कहाँ से आया? हें? प्रश्न है? समझ में आया? उसको तो पारिणामिकभाव कहा है। एक ओर पारिणामिकभाव में पर की अपेक्षा है नहीं परन्तु वह तो यहाँ पारिणामिकभाव है, उसका तो घात नहीं करते परन्तु उसकी जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय है, उसका घात करते हैं तो यह भव्यत्व की शक्ति की व्यक्तता का घात करते हैं - ऐसा कहने में आता है। आहा..हा..! समझ में आया?

वहाँ जब... यह बात अनादि की भूल बतायी। अनादि से भगवान अपनी चीज़ को, आनन्दकन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का सरोबर... समझ में आया? वह नाम आयेगा, वे नाम हैं ६५? द्रव्यसंग्रह में ६५ नाम हैं। ये दो नाम इसमें दिये हैं। ६५ हैं उनमें से। उसमें एक हंस लिया है। परमहंस, भगवान आत्मा अपने आनन्द सरोवर में अन्तर एकाग्र होकर, राग को भिन्न करके, हंस होता है हंस, वह पानी / जल और दूध इकट्ठे मिले हुए हैं तो उसकी-हंस की चोंच में खटास होती है; ऐसी चोंच छुए, दूध और जल दोनों भिन्न हो जाते हैं। वैसे भगवान आत्मा अपना आनन्द सरोवर जो अन्दर में भरा है, वह राग और विकल्प के दु:खरूप दशा है, उससे भिन्न करके हंस अपनी निर्मल आनन्द का अनुभव करे, उसे

हंस कहते हैं। बाकी कौआ कहते हैं। कौआ कहते हैं, क्या कहते हैं ? कौवा, कौवा कहते हैं न ? समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं **कालादि लब्धि के वश, भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है...** भाषा देखो ! भव्यत्वशक्ति जो त्रिकाल है, उसमें आनन्द और परमानन्द होने की ही शक्ति है। उसमें अपनी पर्याय में विपरीतदशा करता है तो उसे घातिकर्म आदि निमित्त कहे जाते हैं। अब जब कालादि लब्धि अपना पुरुषार्थ। कालादि लब्धि एक बोल नहीं लिया। जब पुरुषार्थ का-धर्म का स्वकाल प्राप्त हो और उसके आदि अर्थात् भाव भी प्राप्त हो आनन्द की दशा का भाव। समझ में आया ? और उस समय कर्म का भी उस प्रकार का अभाव हो, भवितव्यता भी उस प्रकार की उस समय में हो और पुरुषार्थ भी उस समय में स्वभाव सन्मुख का हो। पाँचों समवाय (आ गये)। समझ में आया ? **कालादि लब्धि के वश...** देखो ! कितने ही इनकार करते हैं कि काललब्धि नहीं होती - ऐसा कहते हैं। अभी तो वे रतनचन्दजी यहाँ तो कहते हैं। उस समय में आनन्द की प्राप्ति होने का काल है तो पुरुषार्थ भी अपना स्वसन्मुख हुआ है। समझ में आया ? और उसी समय भवितव्यता और आनन्द की पर्याय प्राप्त होने की ही भवितव्यता उसमें थी और उसी समय दर्शनमोह आदि का अभाव उसके (कर्म) के कारण अभाव होने का ही था। समझ में आया ? स्वभाव तो है ही अपना आनन्द।

यह स्वभाव प्रभु स्वभाव का दल पड़ा है, उसकी सन्मुखता करके, काललब्धि, भावलब्धि वह प्राप्ति करने का सम्यग्दर्शन-ज्ञान आदि, ऐसे **कालादिलब्धि के वश,** उसके आधीन होकर, अपने पुरुषार्थ की ओर काललब्धि के आधीन होकर... अकेली काललब्धि नहीं। समझ में आया ? अपना भगवान आनन्दस्वरूप प्रभु, आनन्द का दल, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वयंभूरमण समुद्र-ऐसे आनन्द में हंस राग से, पुण्य से, विकल्प से, भिन्न करके अपना अनुभव करे, उसका नाम यहाँ आनन्द की लब्धि के वश भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति कहने में आता है। आहा..हा.. ! शक्ति की व्यक्तता, प्रगटता। जो भव्यत्वशक्ति है, वह अपने स्वभावरूप है। अब अन्तर का अनुभव करके कालादि और भाव अन्तरस्वरूप के सावधान होकर... समझ में आया ? टोडरमलजी ने तो लिया है कि कालादिलब्धि कोई वस्तु नहीं है। लिया है ? नौवें अधिकार में (लिया है)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : जिस काल में होना, वही काललब्धि।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही काललब्धि। जिस समय में अपने पुरुषार्थ से जो कार्य होनेवाला है, वह काललब्धि। समझ में आया?

यह प्रश्न तो हमारे पहले ८३ के साल से बहुत चलता है न? ८३-८३। ८० और ३, कितने वर्ष हुए? ४३ वर्ष हुए। १७+२६ एक गृहस्थ था उसके साथ बहुत चर्चा चलती थी। उसे वाँचन बहुत था, उसका ऐसा वाँचन नहीं। तो काल में होता है, अमुक से होता है.. अब कहा काल में होता है क्या? सुन तो सही! टोडरमलजी कहते हैं कि काललब्धि कोई वस्तु नहीं। तो उसने कहा-टोडरमल क्या केवली हो गया? भाई! ऐसा कहा। ४३ वर्ष पहले की बात है। ४० और ३। यह क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : वह तो आपको पहले से ही मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले से ही मिले थे। सिरपच्ची में। समझ में आया? पचास-पचास वर्ष पहले, हों! यह सब बातें चलती थीं कि हाँ, काल में होगा, काल में होगा, कर्म कर्म का उसका बहुत जोर था। कर्म हटे तो आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है - ऐसा मानते थे परन्तु कर्म कैसे हटे, कहा? अपने स्वभाव का पुरुषार्थ करे तो कर्म हटे ही पड़े हैं। समझ में आया? उसकी भी श्रद्धा का ठिकाना नहीं। कर्म हटे, कर्म तो जड़ हैं। आता है या नहीं?

कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकायी
अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पायी॥

अग्नि पर घन पड़ता है। यदि अग्नि अकेली पृथक् हो तो नहीं पड़ता परन्तु लोहे में प्रवेश करती है तो घन पड़ते हैं। इसी प्रकार अकेला आत्मा, कर्म का राग का निमित्त का सम्बन्ध न करे तो उसे दुःख का घन सहन नहीं करना पड़ता। संग करे-कर्म का संग करे; संग करे स्वयं, हों! वह तो आता है न समयसार में? '**परसंग एव**' बन्ध अधिकार, हाँ! **परसंग एव** - कलश आता है न तो क्या कहते हैं देखो! **परसंग एव**-पर का संग, परन्तु पर का संग करता है तो होता है या पर-जड़ संग करा देता है? समझ में आया? यह कलश है न उसमें? (१७५ कलश)।

यहाँ कहते हैं शुद्धपारिणामिकभाव... उस **कालादिलब्धि के वश भव्यत्वशक्ति**

की व्यक्तता होती है... अपने निजानन्द भगवान में जहाँ दृष्टि पड़ी और उसका जहाँ ज्ञेय ज्ञान में, स्ववस्तु को ज्ञेय बनाया तो उस समय में भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है। समझ में आया ? उसका नाम मोक्षमार्ग है - ऐसा आगे भाव में कहेंगे। **कालादिलब्धि के वश, भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है...** अन्दर में तो आनन्दस्वरूप भगवान पड़ा ही है। आनन्द कहीं बाहर से लाना नहीं है। बाहर में कहीं है नहीं।

मुमुक्षु : कालादि के बाद पुरुषार्थ नहीं लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कालादि के पश्चात् पुरुषार्थ आ गया या नहीं ? काल-आदि है या अकेला काल है ?

मुमुक्षु : आदि में पुरुषार्थ आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : काल, भाव, स्वभाव, पर्याय में भाव हुआ, स्वभाव त्रिकाली है, कर्म का अभाव है, उस समय में ऐसा कर्म का अभाव होता ही है। समझ में आया ?

एक समय में पाँचों समवाय साथ ही होते हैं। आहा..हा.. ! टोडरमलजी ने लिखा है - एक कारण नहीं है। एक कारण के साथ सब कारण होते ही हैं। आहा..हा.. ! ऐसी गड़बड़ हो गयी है न ? कर्म के ऊपर डालते हैं। कर्म के कारण हमें भटकना पड़ता है (- ऐसा लोग कहते हैं)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : काल का दोष है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : काल का दोष कौन ? काल क्या है ? कोई चीज़ है ? काल तुम्हारा हाथ पकड़ता है ? श्रीमद् ने कहा है कि अपना पुरुषार्थ करते हो और यदि काल पकड़ने आवे तो मेरे पास आना। श्रीमद् राजचन्द्र कहते हैं। अपना चिदानन्द भगवान, जैसी तेरी पर की रुचि है—पुण्य की-पाप की, पर के विषय के भोग की जो रुचि का उल्लास है, वैसी रुचि स्वभाव सन्मुख कर और धर्म की पर्याय प्रगट न हो तो मेरे पास आना, ऐसी बात है। भगवान आत्मा चिदानन्दस्वरूप, ओहोहो ! आनन्द का धाम.. जिसमें से आनन्द-अनन्त.. अनन्त.. निकालो तो भी आनन्द अन्दर से पूरा नहीं होता। आनन्द.. आनन्द.. ! आहा..हा.. ! स्वभाव सन्मुख होना, वही तेरा पुरुषार्थ है (-ऐसा) आगे कहेंगे। समझ में आया ?

यह जीव,... तब यह जीव,... इस तरह वहाँ जब ऐसा होता है तब **यह जीव,...** ऐसा शब्द है न? वहाँ क्या करता है, कैसे.. जब व्यक्ति होती है, तब **सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य के,...** देखो! यह भाव आया। यह जीव स्वयं अपना आत्मा **सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण...** सहज अर्थात् स्वाभाविक, शुद्ध अर्थात् पवित्र, पारिणामिक अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं ऐसा। **पारिणामिक-भावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य...** देखो! अपना परमात्मद्रव्य; पर परमात्मा नहीं। अरिहन्त और सिद्ध तो उनके परमात्मा, अपने नहीं। आहा..हा..! जीव, सहज.. शुद्ध.. स्वाभाविक.. पवित्र.. पारिणामिकभाव लक्षणवाले, जिसका पारिणामिक सहजभावलक्षण है – **ऐसे निज परमात्मद्रव्य,** उसका लक्ष्य, भगवान अपना परमात्मद्रव्य। देखो! निज परमात्मद्रव्य लिया है न? परमेश्वर का–पर के परमेश्वर का ध्यान करना, वह तो विकल्प है। समझ में आया?

निज परमात्मद्रव्य जो त्रिकाली भगवान है – ऐसे **परमात्मद्रव्य के, सम्यक्श्रद्धान...** देखो! यह पर्याय हुई; वह त्रिकाली द्रव्य हुआ। त्रिकाली भगवान आत्मा ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. पारिणामिक लक्षणवाले निज तत्त्व भगवान का सम्यक्श्रद्धान, देखो! यहाँ देव–गुरु की श्रद्धा और नवतत्त्व की श्रद्धा, उस श्रद्धा को समकित नहीं कहते। समझ में आया? यह तो पहले धर्म की शुरुआत की बात करते हैं।

निज परमात्मद्रव्य,... द्रव्य अर्थात् वस्तु, सत्ता अस्तित्व वस्तु का स्वभाव त्रिकाल, इसका सम्यक्श्रद्धान... सम्यक्श्रद्धान अर्थात् उसके सन्मुख होकर अनुभव में श्रद्धा आना। आहा..हा..! सम्यक्श्रद्धान, उसका सम्यग्ज्ञान, देखो! शास्त्र का ज्ञान, ज्ञान नहीं है। समझ में आया? नवतत्त्व के भेद का ज्ञान भी ज्ञान नहीं है। छह द्रव्य का ज्ञान भी ज्ञान नहीं है। आहा..हा..! पूर्ण प्रभु ध्रुव चीज़, एक समय की पर्यायरहित चीज़ की श्रद्धा, वह श्रद्धा पर्याय है, यह द्रव्य त्रिकाली है। इसकी श्रद्धा। समझ में आया? इसका नाम सम्यग्दर्शन है। देखो! यह तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्। तत्त्वार्थश्रद्धान, व्यवहार तत्त्वार्थश्रद्धान, उस व्यवहार की बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो परमार्थ की बात है। निज स्वरूप में आरूढ़ होकर... समझ में आया? अपना भगवान निज परमात्मद्रव्य / वस्तु की ओर के झुकाव से जो सम्यक्श्रद्धान हुआ, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन हुआ। विकल्प तो नहीं और विकल्प का आश्रय नहीं, श्रद्धा के आश्रय में भगवान त्रिकाली द्रव्य है। समझ में आया?

और **ज्ञान...** सम्यग्ज्ञान। तीनों में लेना सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान। निज परमात्मद्रव्य का ज्ञान। समझ में आया? उसका नाम ज्ञान कहते हैं। आहा..हा..! गजब बातें, भाई! निश्चय परम सत्य की बात है, हाँ! आठ-आठ वर्ष की बालिका भी सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है तो इस प्रकार ही होता है। मेंढ़क, सुख के सागर पर झूलते हैं तो त्रिकाली निज द्रव्य परमात्मा का ज्ञान होता है। समझ में आया? दूसरे नौ तत्त्व का नाम भी न जाने, नाम भी न हो परन्तु निज परमात्मा का अन्दर में अनुभव करके ज्ञान हो, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। आहा..हा..! गजब बात, भाई! **निज परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान..** यह पर्याय हुई। परमात्मद्रव्य यह वस्तु हुई।

सम्यग्ज्ञान-परमात्मद्रव्य का ज्ञान, अपना परमात्मा / वस्तु / ध्रुव का ज्ञान उस ओर झुकने से जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान।

और **अनुचरण...** सम्यक् अनुचरणरूप... यह स्वरूप का अनुचरण करके स्थिरता जो हुई, जिसमें आनन्द और शान्ति की पर्याय उत्पन्न हो, उसका नाम अनुचरण अर्थात् चारित्र कहा जाता है। लो, यह चारित्र! पाँच महाव्रत और बारह व्रत वह तो विकल्प है, वह चारित्र नहीं, वह धर्म नहीं, वह धर्म की अवस्था / पर्याय नहीं। निज प्रभु परमात्मद्रव्य कहो या निज परमात्मा पूर्णानन्द ध्रुव प्रभु की श्रद्धा, उसका ज्ञान, उसका अनुचरण—उसमें द्रव्य को अनुसरण कर, अनुसरण कर स्थिर होना, रमना, वह चारित्र है।

मुमुक्षु : एक काल में तीनों?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक काल में तीनों। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में स्वरूपाचरण, अनुचरण ये तीनों एक साथ होते ही हैं। समझ में आया?

आगे कहेंगे, देखो! अभी तीन भाव में मोक्षमार्ग में अर्थात् उपशम में, सम्यक् उपशम में भी सम्यग्दर्शन का शुद्ध उपयोग है, उसमें भी शुद्धात्मा का आचरण है। आहाहा! उस पर्याय को तीन भाव में गिनने में आता है, तो उसका अर्थ क्या? देखो, यह कहते हैं, हों! उस **अनुचरणरूप पर्याय से परिणमता है;...** ऐसा पाठ है न? उसमें भी, घातक में भी पर्यायार्थिकनय से घातता था, कहा। अपनी पर्यायरूप से परिणमे आत्मा, शुद्ध भगवान आत्मा, आनन्द का धाम, उसे स्पर्श करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय / अवस्था...

पहले यह परिणाम कहा था न ? यहाँ पहले परिणाम कहा था न भैया ! उस परिणाम को यहाँ पर्याय कहा है।

मोक्षमार्ग और मोक्ष के परिणाम से शून्य द्रव्य है-ऐसा पहले कहा था। आहाहा ! मोक्ष और मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय है, अवस्था है, हालत है, दशा है। (उसे) परिणाम कहने में आता है। पर्याय कहो, परिणाम कहो, अवस्था कहो, हालत कहो, दशा कहो (सब एकार्थ है)। समझ में आया ? यह बात तो थोड़ी क्लास में तुम्हें सिखाते हैं न, लो। समझ में आया ? पहले क्लास में चिमनभाई यह बहुत सिखाते थे। पहले क्लास में बैठते हैं न यहाँ ! हम सुनते हैं, वहाँ किसी समय कि ठीक, भाषा सादी है।

मुमुक्षु : क्या सिखाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सिखाते हैं, गुण की पर्याय, वह गुण का कार्य (है)।

मुमुक्षु : अन्य का नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हम सुनते हैं न सुबह पाँच-दस मिनिट, समय होता है न, हम तो घूमते हैं तो बात का ख्याल आ जाता है कि ठीक।

अपने में ज्ञानगुण है या नहीं ? है; तो ज्ञान का कार्य अपने से होता है या पर से होता है ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : आप समझाओ महाराज ! समझाओ !

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन कार्य है या अकार्य है ? (कार्य है) तो सम्यग्दर्शन किसका कार्य है ? अपना त्रिकाली श्रद्धागुण है, उसका वह कार्य है; वह पर का कार्य नहीं है। समझ में आया ? चारित्र कार्य है या नहीं ? चारित्र पर्याय कार्य है या नहीं ? (है) तो कार्य, किसका कारण है ? उसका कारण कौन है ? चारित्रगुण त्रिकाल, वह कारण है। गुण का वह परिणमन है या पर की पर्याय का परिणमन है ? समझ में आया ? यहाँ तो सादी भाषा में है। पहले बहुत आ गया है। क्लास में पहले बहुत (आ गया है)। यहाँ बहुत क्लास चलती थी न ? यहाँ तो तीसरे साल से (संवत् २००३ से) क्लास चलती है।

अनन्त गुण की पर्याय एक साथ होती है। अनन्त गुण की पर्याय एक साथ होती

है यह तो-तीन तो मोक्ष के मार्ग के लिये बताया है; बाकी एक द्रव्य में जितने गुण हैं, सब एक समय में अनन्त गुण की पर्यायरूप अंश निर्मलरूप परिणमन होता है। समझ में आया? 'सर्वगुणांश वह समकित' ऐसी श्रीमद् ने समकित की व्याख्या बाँधी है। अपने यहाँ है न? मोक्षमार्गप्रकाशक है वह कहाँ? मोक्षमार्गप्रकाशक (रहस्यपूर्ण चिट्ठी) वह वहाँ बताया था (जयपुर) आदर्शनगर में। आदर्शनगर गये थे, बहुत लोग थे, दस हजार लोग थे। समझे? वहाँ बताया था, हों! कहाँ है? देखो, चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट होते हैं, वहाँ बताया था। जयपुर (में) सब पण्डित लोग बैठे थे, बहुत पण्डित थे। बंशीधरजी थे, कैलाशचन्दजी थे, फूलचन्दजी थे, भागचन्दजी थे, बहुत थे। वह बाहर है न, आदर्शनगर के मन्दिर में, दस हजार लोग आये थे, बहुत लोग आये थे।

देखो, समकित क्या कहते हैं, समकित? चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को.. यह तो इसमें गुजराती है। ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट होते हैं। जितने गुण हैं, वह एक अंश सर्व एक समय की पर्याय में व्यक्त/ प्रगट होते हैं। यहाँ तो मोक्षमार्ग (का वर्णन है), इसलिए तीन पर्याय की बात करते हैं। समझ में आया? वह चिट्ठी है न? रहस्यपूर्ण चिट्ठी, टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी का हमने गुजराती लिया है। यह तो गुजराती है, देखो! क्या कहा? सम्यग्दर्शन की पर्याय, सम्यग्ज्ञान की पर्याय, चारित्र की पर्याय के साथ आनन्द की पर्याय, वीर्य की पर्याय, अनन्त गुण की एक समय में (है), जितने गुण आत्मा में हैं, उसको जहाँ पकड़ लिया तो सब गुण की पर्याय एक समय में अंशत: प्रगट होती है।

श्रीमद् ने ऐसा वचन लिया है, अपने वहाँ स्वाध्यायमन्दिर में लिखा है 'सर्वगुणांश वह समकित'। उस दरवाजे के ऊपर स्वाध्यायमन्दिर के कमरे में ऊपर (लिखा है)। 'सर्वगुणांश वह समकित', उसका अर्थ यह (कि) सब ज्ञानादि गुण। जितने आत्मा में ज्ञान, आनन्द आदि वीर्य, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्वशक्ति... समझ में आया? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान आदि शक्ति अनन्त हैं। रात्रि को थोड़ा कहा था। कितनी संख्या है?

मुमुक्षु : चालीस-पचास गिनने में आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गिनने में आयी तो क्या, सब गिन सकते हैं-कह सकते हैं?

मुमुक्षु : दो सौ-चार सौ तो आप बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य कहते हैं, कितने गुण हैं, सब समझ लेना। एक भगवान आत्मा वस्तु है, कितनी संख्या में गुण हैं, वह रात्रि को कहा था कि छह माह और आठ समय में छह सौ आठ सिद्ध होते हैं। क्या? छह महीने और आठ समय में छह सौ आठ सिद्ध परमात्मा होते हैं – मनुष्य क्षेत्र में से (होते हैं)। यहाँ नहीं है तो महाविदेहक्षेत्र में से तो अभी तो होते हैं। शाश्वत् धाराप्रवाह चालू है। ऐसे छह माह और आठ समय में छह सौ आठ मुक्त परमात्मा होते हैं, तो ये अनन्त-अनन्त पुद्गल परावर्तन हुआ, उसकी-सिद्ध की जो संख्या हुई, उससे अनन्तगुने एक निगोद के एक शरीर में अनन्त जीव हैं। समझ में आया? ऐसा सारा सूक्ष्म निगोद अभी लोक में पड़ा है। सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ भी निगोद है। किसी ने अभी पूछा था, सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ निगोद है। वहाँ भी निगोद है, बड़ा संसार वहाँ पड़ा है। उनकी (सिद्धों की) पर्याय में संसार नहीं, वहाँ निगोद के जीव में संसार है। समझ में आया? एक क्षेत्र में पड़ा है – जहाँ सिद्ध भगवान रहते हैं, वहाँ ही निगोदिया रहते हैं। संसारी-महाघोर अनन्त संसारी प्राणी। क्या करे क्षेत्र में रहकर?

मुमुक्षु : सिद्धशिला पर ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धशिला पर। सिद्धशिला वह तो नीचे रह गयी। जहाँ सिद्ध विराजते हैं, वहाँ निगोद जीव है। सिद्ध के पेट में।

मुमुक्षु : सिद्ध के पेट में...

पूज्य गुरुदेवश्री : पेट में समझे? आत्मा है या नहीं इतना? असंख्य प्रदेशी आनन्दकन्द शरीर-अवगाह व्यापक प्रमाण अपना स्वरूप भिन्न, उसके असंख्य प्रदेश में अनन्त निगोद के जीव वहाँ पड़े हैं। क्या करे? निगोद, निगोद में है।

मुमुक्षु : परन्तु कहते हैं महाराज! कि सिद्धशिला पर निगोदिया जीव है, उनको वहाँ सुख होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो कहते हैं दु:खी है-महादु:खी है। अनन्त भव का करनेवाला जीव वहाँ है, उसका गुण-द्रव्य अलग, वह द्रव्य अलग।

वह कहते थे एक प्राणी कि भाई! तुम चक्रवर्ती को मिले? कि हाँ,—कब? कि हमारे केस चला था, बड़े गुनाह का, तब राज्य में चक्रवर्ती आया था, तब देखा था। वह

पिंजरा होता है न, तहोमतदार का पिंजरा होता है न? तहोमतदार को पिंजरें में खड़ा रखते हैं। साक्षी ले तब खड़ा रखते हैं। खड़ा रखकर पूछते हैं। समझ में आया?

हमारे भी ऐसा हुआ था न? ६३ के साल में हमारे ऊपर मिथ्या अपराध आया था। सत्रह वर्ष की उम्र १ और ७=१७ (संवत्) ६३ के साल, अफीम का केस आया था। हमारे पर अत्यन्त झूठा-अत्यन्त झूठा-अत्यन्त झूठा सौ प्रतिशत झूठा, परन्तु हमारे पास सौ प्रतिशत अत्यन्त झूठा केस। हम दुकान पर थे, हम दुकान पर थे तो वह लेने आते हैं न? क्या कहते हैं? बक्शीश। बक्शीश लेने आये थे तो सबको देते थे। हम किसी को एक रुपया, किसी को आठ आना (देते थे) दुकान देते थे, ६३ के साल की बात है - संवत् १९६३। तो एक ओपियम आया, ओपियम (यूरोपियन) अफीम के (आवकारी के एक्साइजवाले)। वह कहने लगा एक रुपया लूँगा। मैंने कहा - तुम्हारे हमारे कुछ सम्बन्ध है? हम तो व्यापारी हैं तो व्यापारी के साथ पोस्टमैन, मास्टर के साथ हमें सम्बन्ध है। तुम्हारे साथ हमें क्या सम्बन्ध है? वह कहे - रुपया लूँगा। मैंने कहा आठ आना। यह बड़ा विवाद, फिर बड़ा विवाद हुआ। सवा महीने केस चला, खर्च हुआ, बहुत विवाद हुआ। अंग्रेज था। बड़ोदरा का बड़ा (जज था) ६३ के साल में एक महीने का तीन हजार रुपये वेतन था ६३ के साल में, हों!

हमें तीन घण्टे (कोर्ट में) रहना पड़ा, उसने देखा तो.. ओहो! यह तो बनिया, यह तो गुनहगार है ही नहीं। पिंजरे में खड़ा नहीं रखना, बाहर खड़ा रखो। जवाब दो, झूठा केस है। हम तो बनिया हैं, हमारा मुँह तो देखे न कि हम तो बनिया.. हमारे पिताजी थे, वे तो बनिया हैं अफीम का गुनाह कैसा? गोरा, हों! कारपून, नहीं, पिंजड़े में नहीं, खुले रखो। पूछो, जवाब देगा। मुझे कोर्ट में तीन घण्टे जवाब देना पड़ा था। सत्रह वर्ष की उम्र में। हमारे पिताजी थे, हमारे बड़े भाई थे। क्यों कानजी! क्या हुआ? क्या होगा, हमें तो कुछ डर-बर है नहीं। सच बात थी, वह कह दी। उसे भी चोट लग गयी थी कि ओहो! बात तो सत्य लगती है, समझ में आया? तो दूसरे को पांजरापोल में रखते हैं। पांजरापोल क्या कहते हैं? पिंजरे में (कठघरे में) पिंजरे में रखते हैं। समझ में आया? इसी प्रकार जहाँ सिद्ध भगवान हैं, वहाँ पिंजरे में निगोद है। पिंजरा समझते हैं न! पिंजरे में निगोद है।

यहाँ तो कहना है सिद्ध की संख्या से संसारी जीव की संख्या अनन्तगुनी है और उससे परमाणु अनन्तगुने हैं। यह परमाणु रजकण-पॉइन्ट (अंगुली दिखाकर) कहा। इसके टुकड़े करो तो अनन्त रजकण और परमाणु से तीन काल के समय अनन्त गुने हैं और तीन काल के समय से आकाश (के प्रदेश अनन्तगुने हैं) जो आकाश है न ? व्यापक, व्यापक व्यापक तो आकाश के प्रदेश अनन्तगुने हैं और उससे अनन्तगुने एक जीव के गुण हैं। समझ में आया ? आत्मा के पास इतनी संख्या-पूँजी है। यहाँ तुम्हारे पास दो-पाँच-दस करोड़ हो जाये वहाँ तो कहे। आहाहा ! पैसावाला। धूल में भी नहीं है, सुन न ! ऐई भगवानजीभाई !

मुमुक्षु : इनके पास कहाँ रुपये हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इनके पास पचास-साठ लाख तो है, उसके पास करोड़ से ऊपर और दूसरे होंगे। चलो न ! धूल में भी नहीं है। ऐ ! ये सब बैठे, शोभालालजी और.. परन्तु इतना पैसा है ? सिद्ध के गुण अनन्त-द्रव्य के गुण जो अनन्त हैं उतना पैसा है तुम्हारे पास ? ऐसे आत्मा में अनन्त गुण हैं। अनन्तानन्त.. अनन्तानन्त (गुण हैं)। जहाँ उसकी अन्तर्मुख होकर प्रतीति हुई, अनन्त गुण की शक्ति की व्यक्तता एक समय में प्रगट होती है। आहाहा ! ठीक ! एक भी गुण शक्ति में से व्यक्त न हो ऐसा नहीं बनता। समझ में आया ? आहाहा ! ऐसा भगवान !

उसकी तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा के ज्ञानादि गुण सर्वदेश.. भाई ! दोनों लिया है न भाई ! टोडरमलजी ने लिया है केवलज्ञानी को ज्ञानादि गुण सर्वदेश प्रगट हुए हैं। परमात्मा अरिहन्त को सब गुण पूर्ण व्यक्त हो गये हैं। चौथे गुणस्थान में एक अंश-एकदेश-एक भाग—सब गुण का एक भाग में, एकदेश में पवित्रता प्रगट हुई है परन्तु यहाँ तो मोक्षमार्ग की तीन पर्याय की बात कहना है परन्तु तीन के साथ अनन्त पर्याय प्रगट होती है। समझ में आया ? उस समय वहाँ-जयपुर में कहा था।

यहाँ कहते हैं **पर्याय से परिणमता है;...** यहाँ तो तीन की बात लेना है न ? परन्तु एक ही साथ अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. यह गुण की संख्या कही, उन सबकी पवित्र पर्याय चौथे गुणस्थान से प्रगट हो जाती है। समझ में आया ? इसके पास कितनी लक्ष्मी है !

मुमुक्षु : चौथे (गुणस्थान से) खजाना खुल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे से खजाना खुल गया है। अज्ञानी को सारा खजाना बन्द है क्योंकि राग और आत्मा-पर्याय में एकत्वबुद्धि करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव, उसे सारा खजाना बन्द है। जहाँ सम्यग्दर्शन हुआ, चाबी खुल गयी। अब अन्दर से निकालते रहो। समझ में आया ? ऐसी पर्याय है वह तो, ऐसी पर्याय का परिणमन हुआ। समझ में आया ? आहाहा !

निज-परमात्मद्रव्य के, सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय से परिणमता है;... देखो ! पर्याय से परिणमता है - ऐसा लिया। ऐसी अवस्था का परिणमन-अवस्था का (परिणमन) होता है। **वह परिणमन...** अब यहाँ कहते हैं, वह परिणमन जो धर्म का हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय / परिणमन / अवस्था प्रगट हुई तो किस भाव से हुई ? उसे आगम क्या कहता है और अध्यात्म क्या कहता है ? **वह परिणमन आगमभाषा से 'औपशमिक',...** देखो ! आचार्य यह स्पष्टीकरण करते हैं कि उपशम समकित में भी शुद्धपरिणमन प्रगट हुआ है और उस परिणमन को यहाँ शुद्ध उपयोग भी कहेंगे। समझ में आया ? है न यहाँ अन्त में ? **'शुद्धात्माभिमुख परिणाम', 'शुद्धोपयोग' इत्यादि..** (अध्यात्मभाषा में) इस उपशमभाव में भी शुद्धोपयोग है - ऐसा यहाँ आचार्य सिद्ध करते हैं।

(वह परिणमन आगमभाषा से) **'औपशमिक', 'क्षायोपशमिक' तथा 'क्षायिक'- ऐसे भावत्रय कहा जाता है,...** किसे ? जो अपने निज परमात्मा ध्रुवस्वरूप भगवान की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, यह जो तीन पर्याय हुई, वह किस भाव से है ? कि उसको **आगमभाषा से 'औपशमिक', 'क्षायोपशमिक' तथा 'क्षायिक' - ऐसे भावत्रय कहा जाता है,...** आहा..हा.. ! उन्होंने लिखा है न भाई ! क्योंकि आचार्य का कहना शुद्ध उपयोग तो लगता है। तथापि स्वयं का दूसरा पढ़ा, ऐसा अर्थ दूसरी जगह भी एक-समयसार में है। यहाँ से मरकर सम्यग्दृष्टि जीव है, वहाँ तो समकित की भावना छोड़ता नहीं। शुद्धभावना छोड़ता नहीं। स्वर्ग में रहता है और फिर यहाँ आवे तब समवसरण, तीर्थङ्कर.. कौन सी गाथा है ? यह समयसार - १३०-१३१ जयसेनाचार्य की टीका - वीतराग स्वसंवेदन भेदज्ञानी जीव, धर्मी जीव रागरहित अपने श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र प्रगट हुआ, वह जीव-शुद्धात्मभावनारूप से परिणाम करोति-शुद्धात्मा कर्ता-कर्म है न ? कर्ता-कर्म की गाथा है।

१३०-१३१। शुद्धात्मभावना यह पर्याय कही है, वह। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह शुद्धात्मभावना, परिणाम करोति-सपरिणाम: सर्वोपि ज्ञानमयो भवति-उसमें राग का विकल्प नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ज्ञानमय है। **कथेव ज्ञानमय परिणाम: एव संसार सिद्धित्वा देवेन्द्र-लोकान्तिक महादेवो पूजवा घटिकात्वं मति-श्रुत-अवधिरूपं ज्ञानमय भावं पर्याय लभन्ते तहां-विमानं परिवार आदि विभूति जीर्ण परिणमनेव गत्व गणत्री पंच महाव्रते गत्वा**। सम्यग्दृष्टि महाविदेह में स्वर्ग में (से) जाते हैं। पश्चात् अपनी ऋद्धि को त्रणमात्र-सड़ा हुआ तिनका देखते हैं। चाहे वैमानिक पहला देवलोक, दूसरा देवलोक गया तो **किम पश्यति महाविदेह गत्वा तद् इदम् समोसरणं** ओहो! ये भगवान विराजते हैं। जो सुना था, प्रत्यक्ष देखा। भगवान के पास जाते हैं न? दूसरा वाक्य - अपने को दूसरा वाक्य लेना है - ये तो भेदाभेद रत्नत्रय आराधक हैं। परिणमते गणधरदेव समवसरण में देखे कि ओहो! यह गणधर और मुनि जो देखे थे-भेद-अभेद रत्नत्रयरूप परिणत (वे) समवसरण में विराजते हैं।

यहाँ दूसरी बात कही है। परमागम में **शुरुयेते दृष्टवा प्रत्यक्षेण..** आगम से सुना था वह समकिती वहाँ जाते हैं वह प्रत्यक्ष देखा। **विशेष दृढ़मतिभुत्वा** - प्रत्यक्ष देखने से **सम्पूर्ण चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धभावना अपरित्यज्यं**-यहाँ वजन है भाई! वहाँ फिर उसने कहा शुद्धभावना अर्थात् शुद्धउपयोग लेना, ऐसा नहीं, अमुक नहीं - ऐसी गड़बड़ की है। अरे! क्या कहते हैं? समझ में आया? '**शुद्धभावना अपरित्यज्य निरन्तर धर्मध्यानेन देवलोके कालं गमियत्वा**।' बस फिर मनुष्यभव होकर मोक्ष जायेंगे। समझ में आया? जयसेनाचार्य की टीका, १३०-१३१ गाथा समयसार, जयसेनाचार्य की टीका। समझ में आया?

क्या कहते हैं, देखो! यह जो आत्मा में अपना ध्रुवस्वभाव, उसके सन्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन ज्ञान धर्म की पर्याय-मोक्ष के मार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई, उसे आगमभाषा से क्या भाव कहना? वह उपशमभाव भी कहो, क्षयोपशम भी हो और क्षायिक—ऐसे भावत्रय कहा जाता है। मोक्षमार्ग की पर्याय को उपशमभाव भी कहते हैं, क्षयोपशमभाव भी कहते हैं और क्षायिकभाव भी कहते हैं। उपशमभाव समकित चौथे से ग्यारहवें तक होता है, चारित्र-उपशमचारित्र ग्यारहवें में होता है। समझ में आया? और क्षयोपशम

समकित चौथे से सातवें में रहता है और क्षायिक समकित चौथे से सादि-अनन्त रहता है। समझ में आया?

यहाँ तीन भाव गिनने में आये हैं न? तो जो उपशमभाव समकित है, वह अन्तर्मुहूर्त रहता है परन्तु है वह भी शुद्ध उपयोगरूपी भाव। आहाहा! समझ में आया? और क्षयोपशमभाव हो तो भी क्षयोपशम चौथे से सातवें तक रहता है समकित। फिर आठवें से क्षायिक हो जाये या उपशम हो जाये। वह भी क्षयोपशम समकित को भी यहाँ आत्मा का परिणाम उपयोग-शुद्धउपयोग कहा गया है और क्षायिक समकित चौथे, आत्मा जिसमें... सबेरे कहा था कलंक नहीं, ऐसा भगवान शुद्ध उपयोगस्वभावी, द्रव्य ही ऐसा है। ऐसे द्रव्य का भान हुआ तो शुद्ध उपयोगरूपी परिणाम को उपशम कहो, क्षयोपशम कहो, भूमिका प्रमाण, और क्षायिक—तीन भाव को भावत्रय कहा जाता है। समझ में आया?

अध्यात्मभाषा से... आगमभाषा में तीन (कहा)। **'शुद्धात्माभिमुख परिणाम'...** शुद्ध द्रव्यस्वभाव भगवान के अभिमुख-सन्मुख परिणाम और **'शुद्धोपयोग' इत्यादि पर्यायसंज्ञा पाता है।** इत्यादि मोक्षमार्ग की पर्याय में, ये नाम इत्यादि ऐसे द्रव्यसंग्रह में ६५ नाम आदि लिये हैं। ६५ नाम, वह सबेरे आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

भेद-विज्ञानी का उल्लास

जो चैतन्य का लक्षण नहीं है — ऐसी समस्त बन्धभाव की वृत्तियाँ मुझसे भिन्न हैं; इस प्रकार बन्धभाव से भिन्न स्वभाव का निर्णय करने पर, चैतन्य को उस बन्धभाव की वृत्तियों का आधार नहीं रहता, अकेले आत्मा का ही आधार रहता है। ऐसे स्वाश्रयपने की स्वीकृति में चैतन्य का अनन्त वीर्य आया है।

अपनी प्रज्ञाशक्ति के द्वारा जिसने बन्धरहित स्वभाव का निर्णय किया, उसे स्वभाव की रुचि, उत्साह और प्रमोद आता है कि अहो! यह चैतन्यस्वभाव स्वयं भवरहित है, मैंने उसका आश्रय किया, इससे अब मेरे भव का अन्त निकट आ गया है और मुक्तिदशा की नौबत बज रही है। अपने निर्णय से जो चैतन्यस्वभाव में निःशङ्कता करे, उसे चैतन्य प्रदेशों में उल्लास होता है और अल्प काल में मुक्तदशा होती है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

यह समयसार, ३२० गाथा, जयसेनाचार्यजी की टीका, दूसरे पृष्ठ पर, दूसरे पृष्ठ पर है। **उन तीनों में,...** कल चल गया है, फिर लेते हैं।

क्या चलते हैं? कि किस भाव से मुक्ति होती है? भाव पाँच हैं-एक द्रव्यरूप भाव... भाव अर्थात् अस्तित्व-वस्तु। त्रिकाल वस्तु जो भाव और एक पर्याय-अवस्थारूप भाव। जो त्रिकाल वस्तु है, वह तो पारिणामिकभाव, ध्रुवभाव-वह तो मोक्ष के मार्ग और मोक्ष की पर्याय से रहित है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ब्रह्म, पूर्ण ब्रह्मस्वरूप, वह तो ध्रुव चीज़ ज्ञायकभाव, वह तो परमस्वभाव, सहजभाव आत्मा की मूल अस्ति / मौजूदगी का वह भाव। उस ५६ गाथा में से कहा था 'द्रव्य-आत्मलाभ हेतु' - द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके स्वरूप की अस्ति; लाभ अर्थात् अस्ति, मौजूदगी। त्रिकाल ज्ञायकभाव, वह वस्तु की स्थिति-वह वस्तु की अस्ति / मौजूदगी। वह चीज़ ध्येयरूप है, ध्येयरूप होती है परन्तु मोक्षमार्ग और मोक्षरूप नहीं होती। समझ में आया?

(वह) चीज़ ध्येयरूप होती है, ध्यान में ध्येय / लक्ष्य करनेयोग्य वह चीज़ है। जो त्रिकाल ज्ञायकभाव है, वह समझ में आया? वह नियमसार, गाथा ३८ कल थोड़ी चली थी।

जो जीवादि सात तत्त्व हैं-यह किसी ने प्रश्न किया था। जीवादि सात तत्त्वों में तो जीव आ गया तो उसे यहाँ परद्रव्य कहा है। यहाँ तो उस जीव की एक समय की पर्याय को लिया गया है। समझ में आया? सूक्ष्म भाव है। एक आत्मा एक समय में जो ध्रुव परम स्वभावभाव, वह तो मूल शक्ति-मूल सत्त्व और मूल द्रव्य है तथा उसकी एक समय की पर्याय-अवस्था, चाहे तो संवररूप हो, निर्जरारूप हो, मोक्षरूप हो। एक जीव की पर्याय जो लक्ष्य में आवे कि 'यह जीव' तो वह तो सब बहिरद्रव्य है, बहिरतत्त्व है।

मुमुक्षु : वह तो इन्द्रिय हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाह्य तत्त्व है। निश्चय से तो परद्रव्य हो गया। स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य हो गया। एक बार एक न्याय से तो कहा था कि यह पर्याय है, वह स्वद्रव्य की अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया?

अवस्तु कहा, वह बहिरतत्त्व है, तो अपना त्रिकाल ज्ञायकभाव ध्रुवस्वभाव की अपेक्षा से तो वह अवस्तु है, अद्रव्य है, बहिरद्रव्य है। उसकी अपेक्षा से द्रव्य और अपनी अपेक्षा से अद्रव्य है। जरा सूक्ष्म कहा था थोड़ा कि उसका विषय करनेवाली वस्तु ज्ञान जो है, उसे विषय करता है। वह मूल चीज़ नहीं है। समझ में आया? वास्तव में तो उसका विषय करता है, वह बहिरतत्त्व का, वह मिथ्यात्वभाव उसका विषय करता है।

मुमुक्षु : बहुत सरस! मिथ्यात्वभाव विषय करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया? सूक्ष्म भाव है, भाई! अनन्त काल से इसे चीज़ क्या है? उसे दृष्टि में लेने की चीज़ का भाव क्या है? (इसका) पता नहीं है, ऐसे का ऐसा धर्म हो जाये - ऐसा मानता है। कहते हैं कि एक समय का भगवान आत्मा... देखो! जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य है। जो यहाँ पर्याय को चारभाव कहा, उसको यहाँ बहिरतत्त्व कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? वह वास्तव में उपादेय नहीं है। समझ में आया? पुण्य-पाप का विकल्प या जीव की एक समय की क्षयोपशम अवस्थारूप दशा या संवर और निर्जरारूप पर्याय, वह आदरणीय नहीं है। पण्डितजी! वह उपादेय नहीं है, क्योंकि अवस्तु है। वस्तु हो, वह उपादेय होती है। त्रिकाल वस्तु महाप्रभु चैतन्यबिम्ब जो वज्रबिम्ब है, ध्रुव अविनाशी, आदि और अन्तरहित जो चीज़ है, वही वस्तु है और वही परमस्वभाव और वही आत्मस्वरूप की अस्ति (है)। यहाँ पर्याय की अस्ति को अस्ति में गिनना नहीं है।

मुमुक्षु : ...नहीं है, बड़ी उलझन में पड़ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? बड़ी उलझन नहीं, अन्दर बड़ी दृष्टि के माहात्म्य में चला जायेगा। वस्तु का पता नहीं कि क्या है और कहाँ दृष्टि देना है? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन जो धर्म की पर्याय है, वह भी वहाँ अन्तःतत्त्व की अपेक्षा से बहिरतत्त्व कहने में आया है। आहाहा! क्योंकि पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती है तो उसे परद्रव्य

कहा, परभाव कहा, हेय कहा। परवस्तु शरीर, मन, वाणी, ज्ञेयरूप हेय है, वह तो कहीं रह गये, परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत शुभराग का विकल्प उठता है, व्यवहाररत्नत्रय का (विकल्प उठता है), वह भी हेय है, राग है; वह तो ठीक, परन्तु एक समय की पर्याय में नौ प्रकार पर्याय के खड़े होते हैं, वे बहिरतत्त्व हैं। वे सम्यग्दृष्टि को तो हेय है। समझ में आया? वह वास्तव में उपादेय नहीं है। **वैराग्यरूपी महल के शिखर का जो शिखामणि है...** यह तो स्वयं का डाला है।

आत्मा को 'आत्मा' वास्तव में उपादेय है। समझ में आया? दो दिन पहले कहा था कि **कारणपरमात्मा, वह वास्तव में 'आत्मा' है।** वास्तव में... पाठ में क्या है? समझ में आया? 'हि' शब्द है न? **स्वद्रव्यनिशितमतेरुपादेयोह्यात्मा।** (उसमें) 'खरेखर' गुजराती में खरेखर कहा है, हिन्दी में वास्तव में कहा है। किसको? जो त्रिकाल ज्ञायकभाव- जो एक समय की पर्यायरहित, वही वास्तव में आत्मा है। वास्तव में लिया है न यहाँ? वास्तव में, उसमें (गुजराती में) खरेखर, पाठ में (संस्कृत में) 'हि' लिया है। 'हि' भगवान आत्मा, जहाँ नजर करनी है... नजर, वह पर्याय है। समझ में आया? परन्तु जिसमें नजर करनी है, वह चीज़ वास्तव में ध्रुव है, वही आत्मा है; पर्याय, वह वास्तव में आत्मा नहीं है। आहाहा! मूलचन्दभाई! इस बार क्लास में जरा सूक्ष्म चलता है। हमारे सेठ कहते थे इस बार क्लास में (शिक्षण शिविर में) सूक्ष्म आया। थोड़ा सुनें तो सही, ऐसा मार्ग।

मूल चीज़ का पता नहीं होता और धर्म हो जाये (-ऐसा कभी नहीं होता)। यहाँ कहते हैं कि वास्तव में-खरेखर तो, अनन्त-अमूर्त - अनादि-अनन्त भगवान आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्ध सहज परम, सहज... सहज.. सहज... सहज... स्वाभाविक परम पारिणामिक भाव अर्थात् जिसमें पर्याय की अपेक्षा नहीं, पर्याय से निरपेक्ष ऐसा अपना निजद्रव्य / वस्तु, वह जिसका स्वभाव है, वह कारणपरमात्मा वास्तव में आत्मा है। यहाँ तो कारणपरमात्मा... मोक्षमार्ग का अधिकार है न, पर्याय का अधिकार है तो उसमें कारणपरमात्मा कहा; यहाँ दृष्टि के विषय में तो वह कारण भी नहीं। समझ में आया?

ध्येय अवश्य, परन्तु ध्येय और कारण दोनों में अन्तर है। सेठ! समझना पड़ेगा। उलझन में नहीं पड़ेगा, उलझन उड़ जायेगी - ऐसी बात है। एक समय में भगवान नित्य

ध्रुव, राग और व्यवहार विकल्प से तो रहित, परन्तु विकल्प का जो ज्ञान अपने से होता है; विकल्प की अस्ति है तो नहीं, अपने से जो ज्ञान पर्याय में होता है, वह एक समय की पर्याय भी द्रव्य में नहीं और उस पर्यायरहित आत्मा है, उसे वास्तव में भगवान सर्वज्ञदेव वस्तुरूप से आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

अति-आसन्न भव्यजीवों को ऐसे निज परमात्मा के अतिरिक्त (अन्य) कुछ उपादेय नहीं है। आसन्न भव्य (अर्थात्) जिसकी मुक्ति निकट है। आहाहा! समझ में आया? आसन्न भव्य, निकट है जिसको संसार का किनारा और मोक्ष की पर्याय अल्पकाल में प्राप्त होनेवाली है। समझ में आया? यह अपने चलता है न? भव्यत्व पारिणामिक-भव्यत्व में जो मुक्ति होने की योग्यता की शक्ति पड़ी है और मुक्तिरूप जो भव्यत्वभाव - द्रव्यस्वभाव अन्दर है, वह पर्याय में प्रगट होने के योग्य जो भव्यत्व है, वह पर्याय, द्रव्य में नहीं है, कहते हैं। समझ में आया?

एक समय की पर्याय / अवस्था, क्षयोपशमज्ञान की अवस्था हो... क्षयोपशम अर्थात् विकासरूप अवस्था, ज्ञान के प्रगट विकासरूप अवस्था का अंश भी बहिर्तत्त्व गिनकर यहाँ तो हेय कहा है। समझ में आया? अन्त:तत्त्व जो भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, वही ध्येय करने योग्य और वही आदरणीय और उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को दूसरी कोई चीज़ उपादेय नहीं है। व्यवहार भी उपादेय नहीं, ऐसी पर्याय उपादेय नहीं, निर्मल पर्याय, हों! आहाहा! लालचन्दजी! ऐसी सूक्ष्म बात है। जरा सुने तो सही! यह क्या चीज़ वीतरागमार्ग में है। मार्ग का पता नहीं और अपनी कल्पना से मार्ग मान ले, बापू! ऐसा तो अनन्त बार किया है। समझ में आया? जहाँ भगवान-परमात्मा बिराजता है-निज प्रभु (बिराजता है), उसमें तो एक समय की पर्याय का भी अस्तित्व नहीं है—ऐसा द्रव्य ही उपादेय है। सम्यग्दृष्टि को वही द्रव्य आदरणीय है। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन हुआ और उसमें चारित्र की पर्याय भी हुई तो भी वह उपादेय और आदरणीय नहीं है।

मोक्ष की पर्याय तो प्रगट है नहीं परन्तु हुई उसको, वह भी उस जीव को-सम्यग्दृष्टि को उपादेय नहीं है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! ऐसा भगवान आत्मा एक ही चीज़ त्रिकाली चीज़-ध्रुव अन्त:तत्त्व, अन्त: स्वरूप, अन्त:भाव और पर्याय के अंश से लेकर रागादि

सब बहिर्तत्त्व है। समझ में आया ? ऐसे अन्त:तत्त्व पर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है, धर्म की शुरुआत वहाँ से होती है। दूसरी लाख बात करे, करोड़ बात करे... समझ में आया ? परन्तु सम्यग्दर्शन की अवस्था-धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला नूर-तेज पर्याय का (तेज), आहाहा! समझ में आया ? वह द्रव्य को ध्येय करने से प्रगट होगा। बाकी तीन काल में दूसरी कोई बात चाहे जो करे, उससे वह प्रगट नहीं होता। समझ में आया ? यह बात (नियमसार गाथा) ३८ में वहाँ कही, वह बात यहाँ कहते हैं, देखो!

उन तीनों में,... पहला पैराग्राफ है न ? तीन-कौन ? जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व, ये तीन चीज़। जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व, ये तीन। उनमें जो जीवत्व तीन में सामान्य जो त्रिकाल जीवत्वस्वभाव है, वह परमपारिणामिकस्वभावरूप जीवत्वभाव, वही वास्तव में आत्मा है; वह तो बन्ध और मोक्ष के कारण तथा बन्ध और मोक्षरूप परिणाम से शून्य है। पहले परिणाम से शून्य कहा था, यहाँ अभाव है – ऐसा कहा। समझ में आया ? वह आया था, नहीं पहले ? पहले ऊपर शून्य कहा था और बन्ध-मोक्ष परिणाम से रहित कहा। तीसरे पैरेग्राफ के अन्त में पहले में शून्य कहा था-परिणाम से शून्य, बन्ध-मोक्षपर्याय परिणति से रहित है, ऊपर पैराग्राफ में है। समझ में आया ?

कहते हैं कि जो जीवत्वभाव त्रिकाल.. भव्य-अभव्य में जीवत्व जो त्रिकालभाव है, वही वास्तविक आत्मा और वही उपादेय और आदरणीय है। अब जो दस प्राणरूप जीवत्व है, वह दस प्राण जड़ नहीं। वह पाँच इन्द्रियाँ-वीर्य—ऐसी जो पर्याय की योग्यता, उसको यहाँ परिणाम कहा है। है तो कर्म के निमित्त की अपेक्षा, परन्तु वह अपेक्षा यहाँ नहीं लेना। आत्मा स्वतन्त्र अपनी पर्याय में भावेन्द्रियरूप और वीर्यरूप जो परिणमन करता है, उसको अशुद्ध पारिणामिकभाव कहने में आता है। समझ में आया ? यह अशुद्ध पारिणामिकभाव बहिर्तत्त्व है; अत: यह आदरणीय नहीं है और भव्य तथा अभव्य दो भेद हैं, वे भी अशुद्ध पारिणामिकभाव हुआ। भेद हुआ न ? एकरूप नहीं रही वह चीज़, तो भव्य और अभव्य जो अशुद्ध पर्यायरूप पारिणामिक कहने में आता है, वह भी आदरणीय नहीं है।

अब तीन भाव में से किस भाववाले को मुक्ति होती है और किस भाव से मुक्ति होती है ? समझ में आया ? **तीनों में भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को...** भव्यत्व अन्दर

योग्यता, अन्दर मुक्तिस्वरूप ही भगवान है। वस्तु तो मुक्तस्वरूप ही है। वस्तु में बन्ध-मोक्ष है नहीं। समझ में आया ? मुक्त अर्थात् यह मुक्ति अर्थात् मुक्ति की पर्याय-ऐसा नहीं। द्रव्य मुक्तस्वरूप अर्थात् भिन्न ही है, ऐसा। समझ में आया ? ऐसा **भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो यथासम्भव सम्यक्त्वादि जीवगुणों का घातक...** सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्‌चारित्र, ऐसी जो जीव की निर्मल वीतरागी पर्याय, उसरूप जीव नहीं परिणमता और विकाररूप परिणमता है, उसमें 'जीवगुण' - शब्द भले गुण लिया, परन्तु है पर्याय, अवस्था। मिथ्यात्व अवस्था, सम्यक्त्व को घात करती है, उत्पन्न नहीं होने देती; अ-ज्ञान, सम्यग्ज्ञान को घात करता है और अ-चारित्र, चारित्र की पर्याय को घात करता है। यह है तो ऐसा, परन्तु यहाँ लेते हैं कि उसमें निमित्तरूप घाति और अघाति कौन है, वह बताते हैं। समझ में आया ?

जीव पर्याय का घातक **'देशघाती' और 'सर्वघाती'...** सम्यक्त्वमोहनीय आदि देशघाती है। मिथ्यात्व सर्वघाती अर्थात् पूर्णरूप प्रगट होने न दे, उस प्रकृति के निमित्त को सर्वघाती कहते हैं। कुछ विकास और कुछ घात हो, उसे देशघाती कहा जाता है। इसमें कितना याद रखना लोगों को! ऐई, मनसुखभाई! वकालात में कितना याद रखते हैं ? कायदा और फायदा धूल और धाणी। आहाहा!

कहते हैं, भव्यत्व पारिणामिक अपना निज शाश्वत् स्वभाव, उसकी पर्याय में-अवस्था में-हालत में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से विरुद्ध पर्याय करते हैं, वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की घातक है। विरुद्ध परिणाम करते हैं, वह परिणाम सम्यग्दर्शन आदि का घातक है परन्तु यहाँ वह घातक न लेकर देशघाती-सर्वघाति प्रकृति घातक लिया है। क्योंकि उसका लक्ष्य प्रकृति पर है, समझ में आया ? स्वभाव पर लक्ष्य नहीं है। समझ में आया ? अपना अस्तित्व त्रिकाली ज्ञायकभाव अस्तित्व की-मौजूदगी की दृष्टि नहीं तो उसकी एक समय की पर्याय और राग की अस्ति पर दृष्टि है तो उस कर्म पर उसकी दृष्टि गयी वहाँ लम्बाकर.... समझ में आया ? ....तो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय, उसको घात करने में देशघाती और सर्वघाति जो प्रकृति-जो जड़ है, उसे वहाँ निमित्त से देशघाती और सर्वघाती कहने में आया है।

ऐसे नामोंवाला मोहादिकर्मसामान्य... मोहादिकर्मसामान्य - भेद न पाड़कर मोहकर्म, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय अन्तराय इत्यादि—ऐसा जो सामान्य कर्म है, उसके अन्तर्भेद में मिथ्यात्व-दर्शनमोह, वह सर्वघाती है; सम्यक्त्वमोहनीय, वह देशघाती है; केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती है; चार ज्ञानावरणीय देशघाती है - ऐसे अन्तर्भेद ले लेना। परन्तु अन्तर्भेद न करके मोहादि कर्म सामान्य **पर्यायार्थिकनय से ढँकता है,...** देखो! अपनी निर्मल पर्याय पर्याय (के घात) में वह निमित्त होता है। द्रव्यार्थिकनय से तो कोई विघ्न है नहीं। समझ में आया?

चाहे तो मिथ्यात्व का तीव्र अशुभ परिणाम हो तो भी वस्तु में तो जो है, वह है; उसमें तो कोई नुकसान है नहीं और चाहे तो केवलज्ञान प्रगट हो तो भी वस्तु को कोई लाभ होता है—ऐसी कोई चीज़ है नहीं। समझ में आया? ऐसी जो चीज़ है, उसका पर्याय में निमित्तरूप-पर्याय में निमित्तरूप ऐसा मोहकर्म—दर्शनमोह, चारित्रमोह; ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय—ऐसा कर्म एक निमित्त। मलिन परिणामरूप जीव, अपने को छोड़कर जो परिणमन करता है, उस परिणमन का वास्तव में तो शुद्ध परिणमन का वही घातक है परन्तु वह वास्तव में निमित्तकर्म का लक्ष्य किया था तो निमित्तकर्म घातक है - ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? भारी सूक्ष्म भाई! यह तो जिसे अभी कुछ अभ्यास ही न हो, उसे क्या पता पड़े? परन्तु बापू! यह अभ्यास करना पड़ेगा, यदि सुखी होना हो। यह जन्म-मरण के चारगति के दुःख अकेले दुःख नहीं, नारकी के या ऐसे नहीं दुःख, चारगति के दुःख-आकुलता, स्वर्ग में भी दुःख / आकुलता है। उस आकुलता की पर्याय का व्यय करना हो और अनाकुल आनन्द सुखरूप होना हो तो उसे द्रव्य त्रिकाली है, उसकी दृष्टि करना पड़ेगी। इसके बिना सुख का पंथ नहीं निकलेगा, समझ में आया? कहते हैं। **ऐसा जानना।**

अब उसकी सुलटी बात करते हैं। सवली क्या कहते हैं? सुलटी, सुलटी कहते हैं न, तुम्हारी हिन्दी में क्या कहते हैं? सुलटी (श्रोता : सीधी) सीधी तो नहीं, सुलटी। **वहाँ जब कालादि लब्धि के वश,...** काल आदि शब्द पड़ा है। अकेला काल नहीं। आहाहा! स्व काल में आनन्द की पर्याय प्रगट होने का काल है और पर्याय में त्रिकालस्वभाव सन्मुख होने का जो भाव है, वह भाव और काल साथ में पाँचों समवाय हैं। समझ में आया? पाँचों ही समवाय का अर्थ—भगवान आत्मा में जिस समय जो लब्धि प्राप्त

होनेवाली है, वह काल और भव्यत्व अर्थात् भाव, वह भी उस समय में भाव प्रगट होना था, वह भाव और उसी समय में स्वभावसन्मुख भाव किया, वह भाव और उसी समय में कर्म के निमित्त में, कर्म के कारण से अभाव हुआ, वह चौथा बोल और पाँचवाँ बोल। समझ में आया? पाँचवाँ बोल क्या रहा?

मुमुक्षु : स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव त्रिकाल। त्रिकाल स्वभाव भगवान आत्मा, वह तो है ही, उस पर भाव लगाया, तब पाँचों समवाय उसमें आ गये। आहाहा! समझ में आया? गजब बात भाई!

दूसरा ढेर याद करते हैं और अमुक याद करते हैं, उसकी अपेक्षा यह चीज़ सीखे तो उसमें पता लगे कि क्या चीज़ है! समझ में आया? केवली को एक ज्ञान है और छद्मस्थ को चार ज्ञान है और अमुक को इतना है, और अमुक को इतना है, पहाड़े बोलता रहता है, उसमें क्या है? सुन तो सही! समझ में आया?

भगवान आत्मा अपनी **कालादि लब्धि के वश, भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है...** भव्यत्वशक्ति तो उसे कहना है, जो मोक्षस्वभाव त्रिकाल, उसे भव्यत्वशक्ति। उसकी व्यक्तता-प्रगटता होती है। होती है तो उसका अर्थ क्या? कैसे होती है, वह बाद में कहेंगे। यहाँ तो होती है - ऐसा पहले लिया। तब-जब होती है, तब, जब कालादि भावादि की लब्धि अन्दर स्वभावसन्मुख होने का भाव का काल है। भगवान, भगवान आत्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप ध्रुव है, उस ओर के भाव का झुकाव हुआ तो कालादि लब्धि वश पर्याय हो गयी तो वह पर्याय क्या है? व्यक्त होती है, प्रगट होती है। जो यहाँ शक्ति में से व्यक्ति- ऐसा तो कहा, आहाहा! तथापि ध्रुव में से पर्याय आयी? पर्याय, पर्याय से होती है—ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : शक्ति का मतलब पर्याय?

पूज्य गुरुदेवश्री : शक्ति त्रिकाल ध्रुव है; पर्याय नहीं। व्यक्ति, वह पर्याय है। शक्ति वह त्रिकाल; व्यक्ति / प्रगट वह पर्याय, परन्तु उस शक्ति में से प्रगट पर्याय होती है... यह यहाँ ध्रुव-ध्रुव भले बने शक्ति, परन्तु पर्याय का कारण वह ध्रुव नहीं। वाह! गजब बात है!

यह तो अमृत चौघड़िया की बातें हैं। अमृत प्रगट करने की (बातें हैं)। हैं? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... पर्याय पर बुद्धि है, अवस्था-अवस्था है न क्षणिक? ज्ञान का विकास, उस पर रुचि है, बुद्धि है, राग पर रुचि है, निमित्त पर रुचि है, इन तीन भाव में जो रुचि है, वह दृष्टि गुलाँट खाती है, वह रुचि छोड़कर ध्रुव पर दृष्टि करता है, तब कहते हैं कि शक्ति की व्यक्ति होती है।

वहाँ तो ऐसा लिया है 'शक्ति में से प्रगटता।' भाई! वस्तु को समझावे तो कैसे समझावे? एक ओर कहते हैं पारिणामिकभाव बन्ध-मोक्ष की पर्यायरहित ध्रुव ही है। समझ में आया? क्योंकि वह परिणमन नहीं करता न? परिणमन तो पर्याय करती है, परिणमन पर्याय करती है; वह - द्रव्य तो अपरिणामी त्रिकाल ध्रुव है। समझ में आया?

कहते हैं... समझ में आये ऐसी चीज़ है, हों! न समझ में आये ऐसी कोई चीज़ है ही नहीं। आचार्य समझाते हैं तो समझनेयोग्य है, उसे समझाते हैं न? समझनेयोग्य है, उसे समझाते हैं या लकड़ी को समझाते हैं? राग को समझाते हैं?

मुमुक्षु : पहली कक्षा के विद्यार्थी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली कक्षा नहीं, यह आत्मा की कक्षा है। पहली-फहली कक्षा नहीं। यह आत्मा की कक्षा है।

मुमुक्षु : ठीक है, परन्तु पहली कक्षा के विद्यार्थी को....

पूज्य गुरुदेवश्री : पहली कक्षा के विद्यार्थी को यह जानना पड़ेगा। यह जाने बिना सब जाने, वह तो धूल-धाणी है। यह तो जघन्य पढ़नेवाले (को) साधारण उसकी भाषा में समझाते हैं। समझे न? जघन्य उसकी योग्यता, किन्तु यह चीज़ तो दूसरी है। समझ में आया? धर्मी होना है, धर्मी नाम धराना है तो धर्म कैसे होता है, उसकी खबर नहीं और धर्मी कहाँ से आ गया? समझ में आया? हम धर्मी हैं, हम धर्म करते हैं परन्तु धर्म करते हैं तो तुझे धर्म कहाँ से हुआ, खबर है? तेरी दृष्टि कहाँ थी, धर्म हुआ? यह कुछ पता नहीं (और मानते हैं) हम तो धर्म करते हैं।

मुमुक्षु : गुरु की कृपा....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। वहाँ गुरु की कृपा काम नहीं आती। आहाहा! भगवान की कृपा काम नहीं आती। देखो! शास्त्र में तो ऐसा आता है-भगवान की वाणी से ज्ञान होता है और ज्ञान से आत्मा को मुक्ति होती है तो सर्वज्ञ भगवान की कृपा से मुक्ति होती है – ऐसा शास्त्र में आता है। ऐ ई, आता है या नहीं? नियमसार में लिखा है। नियमसार में है न? पहले आया न पहले? शुरुआत में, कहाँ कितनी गाथा? आठवीं न? आठवीं में है? गाथा नहीं, श्लोक, सातवीं गाथा के पहले छठवीं (गाथा के) कलश पर विद्यानन्दस्वामी (के कलश में कहा है)। इष्टफल जो मुक्ति, उसका उपाय सुबोध है। मुक्ति की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान है। सुबोध, सुशास्त्र से होता है... नवरंगभाई! सुबोध सुशास्त्र से होता है... निमित्त से बात करना है न? सुशास्त्र की उत्पत्ति आप्त से होती है...

मुमुक्षु : आप्त आये....

पूज्य गुरुदेवश्री : आप्त, भगवान, सम्यग्दृष्टि केवली, मुनि आदि सबको आप्त कहने में आता है। समझ में आया? यह सब भावदीपिका में लिखा है। इसलिए उनके प्रसाद के कारण आप्त पुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य हैं। है?

मुमुक्षु : सबेरे इन्द्रिय कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इन्द्रिय कहा था। किन्तु यहाँ निमित्तपने का ज्ञान कराना है कि निमित्त कौन था? समझ में आया? मुक्ति, सुबोध होता है तो होती है; सुबोध, शास्त्र से होता है; शास्त्र, आप्तपुरुष की वाणी होती है, वह शास्त्र है। समझ में आया? उनके प्रसाद के कारण आप्तपुरुष बुधजनों द्वारा पूजनेयोग्य है। मुक्ति, सर्वज्ञदेव की कृपा का फल होने से सर्वज्ञदेव, ज्ञानियों द्वारा पूजनेयोग्य है।

मुमुक्षु : लो, एकदम स्पष्ट बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एकदम स्पष्ट। 'करुणा हम पावत है तुमकी यह बात रही सुगुरुगम की।' भगवान! मुझ पर आपकी करुणा हुई, उसका अर्थ कि आपके ज्ञान में इस समय मेरा धर्म प्रगट हुआ—ऐसा आपके ज्ञान में था, यह आपकी करुणा मुझ पर हुई—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? यह जिनसेनस्वामी तो भगवान को करुणामय कहते हैं। हे प्रभु! मुझ पर आपकी करुणा है।

मुमुक्षु : करुणा, जीव का स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वभाव है। वह अविकारी करुणा स्वभाव है। अविकारी करुणा स्वभाव। वह 1008 नाम में आया है। समझ में आया? करुणा, ओहो! इस समय में यह ज्ञान, उसका ख्याल-ज्ञान में परिणमन है कि इस जीव को इस समय में मोक्ष होगा, केवलज्ञान होगा, इस समय में होगा-ऐसा निमित्तसम्बन्ध देखकर, प्रभु! आपके ज्ञान में मेरी धर्म पर्याय इस समय में प्रगट होगी - ऐसा था, तो आपकी मुझ पर करुणा है। ऐई, चन्दुभाई! बात तो ऐसी है। गुरुकृपा का यह अर्थ है (कि) ऐसा निमित्तपना होता है। ऐसी बात है, परन्तु निमित्तपना कब कहते हैं कि जब उसको आत्मा का स्वानन्द हुआ, स्व-आश्रय हुआ तो उसको निमित्त कहने में आता है - ऐसी बात है। गजब बातें! क्योंकि किये हुए उपकार को साधु पुरुष भूलते नहीं हैं। सज्जन पुरुष, जिस धर्मात्मा से उपकार हुआ, उस उपकार को धर्मात्मा भूलते नहीं - ऐसा कहते हैं। उसकी स्वभाव स्थिति में ऐसा है। धर्मात्मा के प्रति केवली के प्रति ऐसा बहुमान आये बिना नहीं रहता - ऐसी वस्तु की मर्यादा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि शक्ति की व्यक्ति (होती है)। यहाँ तो जरा यह बात है, शक्ति की व्यक्ति। जो परमस्वभावभाव त्रिकाली कहा और भव्यत्व लक्षण पारिणामिक जो पारिणामिकभाव त्रिकाल, वह जो शक्ति का पिण्ड है, उसकी व्यक्ति धर्म की पर्याय है - ऐसा यहाँ कहने में आया है। गजब बात भाई! चिमनभाई! पन्ने तो हैं न, पन्ने तो हैं न? आज तो छठवाँ व्याख्यान है, इस गाथा के पाँच व्याख्यान तो हो गये हैं। **तब...** शक्ति की व्यक्ति होती है तब-जब भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शक्ति की व्यक्ति ऐसा होता है, तब क्या होता है? **तब यह जीव, सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य के,...** देखो! आहाहा! **तब यह जीव, सहज-शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण निज-परमात्मद्रव्य...** आहाहा! समझ में आया? भीखाभाई! पहले आया था, इसमें तुम्हारा थोड़ा वह आया था, वह ज्ञान करने के लिये आया था। गजब काम भाई! जैनदर्शन की शैली (अद्भुत है)।

एक ओर कहते हैं सुनने से जो ज्ञान होता है... एक तो मानो विवाद-तकरार यह

कि सुनने से ज्ञान होता है तो वह बात झूठी। ज्ञान अपनी पर्याय से होता है – एक बात। वह अपनी पर्याय से जो ज्ञान हुआ, वह तो यथार्थ ज्ञान नहीं। निमित्त-उपादान का विवाद... समझ में आया? सुनने से ज्ञान होता है, इन्द्रिय है तो सुना, उससे ज्ञान हुआ, तो कहते हैं इन्द्रिय और सुनने से नहीं; तेरी पर्याय में तेरी योग्यता से यह सुनने का ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान भी यथार्थ नहीं है। समझ में आया? उसका लक्ष्य छोड़कर त्रिकाली परमस्वभाव में दृष्टि हो और जो ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। नवरंगभाई! गजब काम इसमें!

कहते हैं, जब शक्ति की व्यक्तता प्रगट होनेवाली है, तब जीव क्या करता है? सहज शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण, त्रिकाल स्वभावभाव कूटस्थ जो ध्रुवभाव... परिणमनेवाला नहीं वह भाव, पर्याय में नहीं आता ऐसा भाव, आहाहा! सहज स्वाभाविक शुद्ध पारिणामिकभाव अर्थात् स्वभावभाव, जिसमें कोई अपेक्षा ही नहीं – पर्याय की अपेक्षा नहीं। **निज-परमात्मद्रव्य...** अपना परमात्मस्वरूप, त्रिकाल वस्तु। **द्रव्य के, सम्यक्श्रद्धान...** देखो, ऐसे द्रव्य की-सम्यक् चिदानन्द प्रभु अभेद चैतन्यद्रव्य की सम्यक्श्रद्धा, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। समझ में आया?

मुमुक्षु : तो नौ तत्त्व की श्रद्धा कहाँ गयी?

पूज्य गुरुदेवश्री : नौ तत्त्व की श्रद्धा-अनुभव मिथ्यात्व में गयी। भेदरूप श्रद्धा-नौ तत्त्व की भेदरूप श्रद्धा, वह मिथ्यात्व है, यह पहले कहा था। पहले बताया था? कलश-टीका में बताया था। यह कलश में बताया था पहले, देखो! वही पृष्ठ आया। ***'नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है'*** यह छठवाँ कलश है, अमृतचन्द्राचार्य का कलश है, उसमें छठा कलश है। जीव-अजीव, आस्रव-बन्ध, संवर-निर्जरा-मोक्ष, पुण्य-पाप के अनादि सम्बन्ध को छोड़कर... (भावार्थ ऐसा है) संसार अवस्था में जीवद्रव्य नौ तत्त्वरूप परिणमित हुआ है, वह तो विभावपरिणति है। इसलिए नौ तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।

मुमुक्षु : देव-गुरु की श्रद्धा भी रह गयी इसमें।

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु की श्रद्धा वह विकल्प है और विकल्प में धर्म मानते हैं, वह मिथ्यात्व है। ऐई! मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : कड़क बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कड़क लगता है ? मार्ग तो यह है। विपरीत माने तो कहीं सुलटा हो जायेगा ? समयसार कलश है, वह राजमलजी (कृत) टीका है न, राजमलजी (की) टीका है न ? यह गुजराती है, हिन्दी भी है। समझ में आया ? नौ तत्त्व की नहीं, देव-गुरु-शास्त्र की नहीं... देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह राग / विकल्प है और विकल्प को परमार्थ धर्म मानना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहाहा !

मुमुक्षु : मूलचन्दभाई कहते हैं, वैसा कड़क अवश्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब मूलचन्दभाई को बहुत (कड़क) लगे ऐसा नहीं। पहले नया लगता था। कहो समझ में आया ? मार्ग तो ऐसा भाई ! दूसरे रास्ते चढ़ जाये, जाये पश्चिम में और पूरब, भावनगर (मिल जाए) ? ऐसा कभी होता है ? भावनगर जाना है और जाये ढसा (ढसड़ा) यहाँ ढसा है न, ढसा-ढसड़ा है, यहाँ से तेरह गाँव दूर है न, तेरह गाँव है। ढसड़ा राजकोट की ओर पश्चिम (दिशा में) है। भावनगर तो पूरब में है।

अपना भावनगर भगवान तो पूरब है, जिसमें सूर्य उगे, उस दिशा में है। समझ में आया ? शक्ति की व्यक्ति कहा न भाई ! शुद्धपारिणामिक सहज लक्षण निज परमात्मद्रव्य की सम्यक्‌श्रद्धा। समझ में आया ? उसका सम्यग्ज्ञान, सम्यक् तीनों में ले लेना। उसका सम्यग्ज्ञान और उसका अनुचरणरूप चारित्र। ध्रुव ज्ञायक भगवान आत्मा नित्य, उसकी दृष्टि लगाकर जो श्रद्धा हुई और जो ज्ञान हुआ, उसमें लीनता हुई, वह दर्शन-ज्ञान और चारित्र, ये तीनों पर्याय हैं। पर्याय है; द्रव्य नहीं, गुण नहीं, विकार नहीं। समझ में आया ?

पर्याय से परिणमता है;... ऐसी भाषा ली है। ऐसी अवस्था से परिणमता है, परिणाम को द्रव्य से भिन्न रखा, तथापि पर्याय से परिणमता है। समझ में आया ? पर्याय से परिणमता है ऐसा आया। द्रव्य परिणमता है - ऐसा नहीं। परन्तु यह तो एक दृष्टान्त (है) परन्तु यहाँ तो सीधा द्रव्य लेना है न, दूसरी जगह लेते हैं-द्रव्य स्वयं परिणमता है। द्रव्यत्वगुण है। द्रव्यत्वगुण है न, द्रव्यत्व। द्रव्यत्वगुण है या नहीं ? (है) तो उसका अर्थ क्या ? जिस शक्ति के कारण द्रव्य द्रवता है, परिणमता है, यह बात तो ज्ञान की विशेषता में दो भाव की बात भेद से कहने में आयी। परन्तु अभेद चिदानन्द द्रव्य अकेला है, वह पर्याय

में परिणमता नहीं; इसलिए कहा **पर्याय से परिणमता** है। समझ में आया? द्रव्य की सम्यग्ज्ञान-ज्ञान, वह पर्याय / अवस्था में होता है। आहाहा! गजब बात भाई!

वह परिणमन... बस, अब देखो। वह पर्याय-जो अवस्था प्रगट हुई, जो त्रिकाल ज्ञायकभगवान शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से, उसका ज्ञान करने से और उसमें लीन होने से जो पर्यायरूप भाव हुआ, वह पर्याय अर्थात् अवस्था हुई, वह अवस्था किस भाव से हुई? उस अवस्था में क्या भाव कहने में आता है? वह कहते हैं।

वह परिणमन आगमभाषा से 'औपशमिक',... उसे औपशमिकभाव कहते हैं। देखो, यह औपशमिकभाव भी शुद्धोपयोगरूप है। आगमभाषा में उपशमरूप है, अध्यात्मभाषा में यह शुद्ध उपयोगरूप है। उपशमभाव भी शुद्धोपयोगरूप है। यह लोग शोर मचाते हैं न कि शुभविकल्प, शुभविकल्प शुभराग छठवें गुणस्थान तक शुभराग है; शुद्ध उपयोग है - ऐसा नहीं। यहाँ क्या कहा देखो? उपशमभाव , यह आगमभाषा से कहा और अध्यात्मभाषा में उसे शुद्ध आत्मा अभिमुख परिणाम कहा। शुद्ध भगवान आत्मा के सन्मुख का भाव, उसे अध्यात्म से शुद्ध आत्मा अभिमुख परिणाम कहो, या शुद्धोपयोग कहो। समझ में आया?

यह उपशमभाव चौथे से ग्यारहवें (गुणस्थान) तक (होता है), उपशम समकित होता है और उपशमचारित्र भी ग्यारहवें आदि में पूरा होता है। तो कहते हैं कि उपशमभाव में भी, शास्त्र भाषा से उसको उपशमभाव कहा। जिसकी प्रवृत्ति अभी अन्दर पड़ी है, नाश नहीं किया है, परन्तु निर्मलता प्रगट हुई है; जैसे पानी में मैल है, वह मैल (नीचे) बैठ गया है, निकाल नहीं गया है, बैठ गया है परन्तु पानी नितर गया है। नितर गया कहते हैं न ऊपर से? उसे उपशमभाव कहते हैं। अन्दर में प्रकृति पड़ी है, समझ में आया? सर्प का दृष्टान्त दिया था। सर्प निकला था हमारे पालेज में। नीचे बड़ा हडफा था। हडफा को (क्या कहते हैं)? लकड़ी की पेटी, बड़ी पेटी थी नीचे सर्प-बड़ा सर्प, करना क्या? बाँस पहुँच नहीं सकता, मनुष्य छू नहीं सकता, जा नहीं सकता। फिर किसी ने कहा इस पर पानी छिड़को, ठण्डा पानी, इसलिए हिल नहीं सकेगा, निकल नहीं सकेगा। फुँफकार नहीं सकेगा, फिर थोड़ा पानी छिड़का, लकड़ी की पेटी को थोड़ा हिलाकर बाहर निकाला, क्योंकि सर्प हिल नहीं सकता, पानी छिड़का तो फिर पकड़ा।

इसी प्रकार प्रकृति पर पहले पानी छिड़का-उपशम पुरुषार्थ से। पानी छिड़ककर प्रकृति का अनुदय कर दिया। अनुदय होने की योग्यता तो उसकी थी, हों!

मुमुक्षु : पानी से नहीं...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, प्रकृति... वह तो निमित्त से कथन है न? नहीं तो अपना पुरुषार्थ अपने में रहा और कर्म की प्रकृति का अनुदय हुआ, वह उसके कारण से हुआ। समझ में आया?

यह उपशमभाव-मोक्षमार्ग की पर्याय को उपशमभाव भी कहते हैं, क्षयोपशमभाव भी कहते हैं। क्षयोपशम चौथे से बारह तक होता है। समझ में आया? ज्ञान का, दर्शन-उपयोग का क्षयोपशम समकित चौथे से सातवें तक होता है और क्षायिक चौथे से सिद्ध तक (होता है) समकित का, ज्ञान-दर्शन का तेरहवें तक क्षायिकज्ञान, परन्तु जहाँ-जहाँ जो उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक वह मोक्षमार्ग की जो पर्याय है... यहाँ भावत्रय की-पर्याय की बात करना है, हों! **'क्षायिक' - ऐसे भावत्रय कहा जाता है,...** भगवान आत्मा अपना ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और अनुचरण करने से जो पर्याय व्यक्तरूप प्रगट हुई, उसे उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक शास्त्रभाषा से-आगम कथन से ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? यह गाथा तो अन्दर में पूरा मक्खन करके डाला है। **और अध्यात्मभाषा से...** देखो, स्वसन्मुख के झुकाववाली कथनशैली में... अध्यात्मस्थिति **'शुद्धात्माभिमुख'...** देखो अब, इस उपशमभाव में भी शुद्धात्माभिमुख, क्षयोपशम में भी शुद्धात्माभिमुख, क्षायिक में भी शुद्धात्माभिमुख (कहा जाता है)। समझ में आया?

शुद्ध भगवान के सन्मुख परिणाम हुआ, उसे आगमभाषा में उपशम, क्षयोपशम कहा; अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख (कहा)। जो विमुख था - शुद्ध आत्मा से विमुख था, और पर्याय तथा राग से सन्मुख था, वह दृष्टि छूटकर **'शुद्धात्माभिमुख परिणाम',...** (हुआ)। लो, परिणाम कहो, पर्याय कहो, अवस्था कहो, दशा कहो, हालत कहो-एक बोल। **'शुद्धोपयोग'...** दूसरा बोल। लो आया, तीन भाव में-तीनों में शुद्धोपयोग लिया है। ऐसा नहीं कहा कि क्षायिकभाव हो तो शुद्धोपयोग होता है। उपशमभाव में भी शुद्धोपयोग होता है - ऐसा कहा है।

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान से वह बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु लोगों को सत्य देखना हो तो पता पड़े न?

मुमुक्षु : चौथे से शुद्धोपयोग नहीं लेना, शुद्धोपयोग सातवें से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे का नहीं लेना, यह तो उन्होंने विपरीत लिखा है। यह क्या कहते हैं-उपशम, क्षायिक... उसमें लिखा है अजमेरवाले में-ऐसे दिखता तो ऐसा है, तीन भाव में चौथे से शुद्धोपयोग होता है-ऐसी टीकाकार की ध्वनि तो ऐसी है परन्तु अपने को उसमें से ऐसा अर्थ नहीं लेना, (अजमेर की प्रति में ऐसा लिखा है)। समझ में आया? है या नहीं, कहाँ है पृष्ठ? ३४१, देखो! तीन भाव आये न? तीन भाव आये, उसको अध्यात्मभाषा से शुद्धोपयोग कहा, तीनों भावों को—उपशम हो, क्षयोपशम हो, या क्षायिक हो। अब यहाँ आचार्य तो ऐसा कहते हैं कि *'तीनों भाव में आत्मा की अपेक्षा से शुद्धोपयोग कहने में आता है। तो यहाँ कहते हैं कि अध्यात्मभाषा में वही शुद्ध आत्मा के अभिमुख परिणामस्वरूप शुद्धोपयोग नाम पाता है। यह टीकाकार के उल्लेख से चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग हो जाना सिद्ध होता है। क्योंकि वहाँ दर्शनमोह का क्षय, क्षयोपशम, उपशम हो जाता है; तो फिर क्या चतुर्थ गुणस्थान में शुद्धोपयोग मान लेना चाहिए?'* यह विवाद उठा है। आहाहा!

मुमुक्षु : परन्तु आचार्य ने कहा, फिर उसमें क्या बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य ने कहा तो है परन्तु जहाँ वीतरागी समकित हो, वहाँ शुद्धोपयोग लेना, इसमें (ऐसा अजमेर से प्रकाशित प्रति के टीकाकार कहना चाहते हैं।)

मुमुक्षु : परन्तु आचार्य ने लिया है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे? ओहोहो! वस्तु सम्यक् चीज़ क्या है, वह शुद्धोपयोग में ही प्राप्त होता है। शुभ उपयोग विकल्प वहाँ है ही नहीं। समझ में आया? फिर (वे) ऐसा कहते हैं ऊपर कहा और ऐसा कहा है, ऐसा।

मुमुक्षु : अमुक जगह ऐसा कहा है और सर्वत्र विपरीत अर्थ, फिर दोनों उतारते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों—दर्शनमोह और चारित्रमोह—दोनों के परिणामरहित हों तब उसे शुद्धोपयोग कहा जाता है (ऐसा वे कहते हैं)।

मुमुक्षु : भूल तो भूल ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गौणरूप से शुद्ध उपयोग।

वास्तविक चीज़ ऐसी है कि अपना निज व्यापार स्वसन्मुख हुआ तो उसका नाम शुद्धोपयोग है। समझ में आया? वहाँ शुभविकल्प की गन्ध नहीं है, अबुद्धिपूर्वक भले हो। समझ में आया? अबुद्धिपूर्वक अर्थात् ख्याल में न आवे, ऐसा राग हो परन्तु उपयोग वहाँ द्रव्य पर पड़ा है, उस उपयोग को शुद्धोपयोग कहते हैं। चौथे गुणस्थान से सम्यग्दर्शन होता है, वह शुद्धोपयोग से होता है; पश्चात् शुद्धोपयोग सदा नहीं रहता, कभी-कभी शुद्धोपयोग आ जाता है, पश्चात् शुद्धपरिणति रहती है। समझ में आया? फिर शुद्धपरिणति क्या और शुद्धोपयोग क्या? जो निर्मलता प्रगट हुई, उस परिणति की, उसमें दर्शन-ज्ञान और स्वरूप आचरण परिणति तो निरन्तर रहती है। समझ में आया? जब सम्यग्दृष्टि हुआ तो उसमें द्रव्य का शुद्धोपयोग जब हुआ, तब हुआ। तो वह शुद्धोपयोग बाद में हट जाता है, शुभविकल्प में-अशुभ में उपयोग आ जाता है परन्तु वह शुद्धपरिणति जो दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण की है, वह नहीं जाती; वह शुद्धपरिणति संवर और निर्जरा का कारण है। समझ में आया?

चाहे तो वह शुद्धोपयोगवाला, पहले सम्यक् हुआ और पश्चात् युद्ध में खड़ा हो और ९६००० स्त्रियों के वृन्द में विषय का विकल्प आया हो.. समझ में आया? परन्तु उसकी परिणति विकल्प से भिन्न पड़ी है। पण्डितजी!

पण्डितजी : बात ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ऐसी है। 'निश्चय में लीन और व्यवहार से मुक्त है'। लोगों को, सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है और उसका ध्येय क्या है? और उसमें कितना लाभ है?- इसकी खबर नहीं है। किंचित् बाह्य त्याग करे और ऐसा करे और वैसा करे और कहे... आहाहा! धूल भी नहीं। मिथ्यात्व के त्याग बिना (अन्य) त्याग कैसा? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं फिर ऊपर लेना नहीं। ऐसा कहते हैं दर्शन सम्बन्धी और चारित्र सम्बन्धी भूल तो भूल है भाई! सब भूल निकले ऐसा शुद्ध उपयोग है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों भूल है परन्तु एक भूल रही या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो थोड़ी-ऐसा टीका में लिया था, राजमल टीका में। दृष्टान्त

सर्प का दिया था, सर्प का दृष्टान्त दिया है, सर्प को कीलित किया है, कीलित किया है, चारित्रमोह को कील दिया, बन्द कर दिया। सम्यग्दर्शन हुआ तो चारित्रमोह कील दिया... कीले की तरह कील दिया ऐसा है। राजमलजी (कृत टीका) में है। चारित्रमोह को तो कील दिया है, बन्द कर दिया है। समझ में आया ?

इस कारण से स्वभाव के अनुभव में-सम्यग्दर्शन में जीव को इस दृष्टि की अपेक्षा से तो राग अशुभ हो या शुभ हो, कील रखा है चारित्रदोष को। बन्धन है नहीं। अपने में आता नहीं, पर्याय अपने में आती नहीं, लाता नहीं। पीछे क्या आया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? गाथा में है - बनारसीदास ने लिया है, बनारसीदास ने उसमें से लिया है। बनारसीदास ने, कहीं श्लोक में है।

कहते हैं **भावत्रय...** अपना-द्रव्यस्वभाव वस्तु की ओर दृष्टि, ज्ञान और शान्ति हुई, वह भावत्रय उसे कहते हैं। तो तीनों भाव में शुद्धोपयोग कहने में आता है। समझ में आया ? यह तो अलिंगग्रहण का दृष्टान्त दिया था। ***'अपने स्वभाव से ही जानने में आनेवाला ज्ञाता है'*** अलिंगग्रहण में छठा बोल है-प्रत्यक्ष ज्ञाता है। 'अपने स्वभाव से जानने में आनेवाला (है); विकल्प से-व्यवहार से-फयवार से नहीं; अपने स्वभाव से जानने में आनेवाला - ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता आत्मा है।' उसमें क्या राग आदि आया ? वह तो शुद्धोपयोग हुआ।

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग स्वभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है-परन्तु यहाँ नीचे की बात है। ऊपर की कहाँ बात है ? द्रव्य का स्वभाव ही ऐसा है, द्रव्य का स्वभाव ही स्वयं अपने स्वभाव से जानने में आये - ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञाता (है)। पहले, चौथे से ऐसा है; और दसवें बोल में यह आया - सूर्य में कलंक नहीं.. अलिंगग्रहण (के बोल में आया)। सूर्य में कलंक नहीं वैसे भगवान आत्मा में राग का कलंक नहीं है, वह तो शुद्धोपयोगस्वभावी है। वस्तु शुद्ध उपयोगस्वभावी है, तो जिसको आत्मा प्राप्त होता है, वह शुद्धोपयोग में ही प्राप्त होता है क्योंकि शुद्धोपयोगस्वभावी ही आत्मा है। आहाहा! बात ऐसी स्पष्ट है परन्तु अब वाद-विवाद... शास्त्र की भाषा से, अपने निज की खबर नहीं और अपनी कल्पना से शास्त्र के अर्थ ऐसे के ऐसे विपरीत करते हैं।

यहाँ कहते हैं उसे '**शुद्धात्माभिमुख परिणाम**',... कहते हैं। इत्यादि इत्यादि – द्रव्यसंग्रह में २०४ पृष्ठ पर इसके ६५ नाम हैं। इस शुद्धात्माभिमुख परिणाम के (६५) नाम हैं। जैसे भगवान के १००८ नाम से भगवान की स्तुति की है न? वैसे शुद्ध आत्मा (अभिमुख) परिणाम के ६५-६६ नाम हैं और अनुभवप्रकाश में ४७ नाम हैं। ऐसे, ११० नाम हैं।

मुमुक्षु : परमहंसवाला रह गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमहंस आयेगा, अभी तो समय हो गया न, भाई! समझ में आया? अभी इसके नाम आयेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्रव्यदृष्टि को क्या मान्य है?

द्रव्यदृष्टि कहती है कि 'मैं मात्र आत्मा को ही स्वीकार करती हूँ'— आत्मा में पर का सम्बन्ध नहीं हो सकता; अतः पर सम्बन्धी भावों को यह दृष्टि स्वीकार नहीं करती है। अरे! चौदह गुणस्थान के भेदों को भी, पर संयोग से होने के कारण यह दृष्टि स्वीकार नहीं करती है; इस दृष्टि को तो मात्र आत्मस्वभाव ही मान्य है।

जो जिसका स्वभाव है, उसमें उसका कभी भी किञ्चित् भी अभाव नहीं हो सकता और जो किञ्चित् भी अभाव या हीनाधिक हो सके, वह वस्तु का स्वभाव नहीं है। अर्थात् जो त्रिकाल एकरूप रहे, वही वस्तु का स्वभाव है। यह दृष्टि इसी स्वभाव को स्वीकार करती है। द्रव्यदृष्टि कहती है कि मैं जीव को मानती हूँ, वह जीव कितना?... सम्बन्ध रहित रहे, उतना। अर्थात् सर्व पर पदार्थों का सम्बन्ध निकाल डालने पर जो अकेला स्वतत्त्व रहे, उसे ही मैं स्वीकार करती हूँ। मेरे लक्ष्य रूप चैतन्य भगवान की पहचान परनिमित्त की अपेक्षा से कराऊँ तो चैतन्यस्वभाव की हीनता प्रदर्शित होती है। मेरे चैतन्य स्वभाव को पर की अपेक्षा नहीं है। एक समय में परिपूर्ण द्रव्य ही मुझे मान्य है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(समयसार) ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका चलती है। उसमें यह आया है कि आत्मा जो ध्रुव ज्ञायक चैतन्य द्रव्यस्वभाव है, उसे यहाँ पारिणामिक सहजभाव, पर्याय की अपेक्षारहित भाव वह चीज़ जो है, उसे विषय करनेवाली भावना, उसको यहाँ क्या भाव है, उसे यहाँ कहते हैं। वह विषय करनेवाली अवस्था किस भावरूप है ? समझ में आया ? पाँच भाव हैं पाँच। त्रिकाली स्वभाव तो पारिणामिकभाव है, ध्रुवस्वभाव (है) और उसका ध्येय बनाकर-उसे विषय करके जो पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय किस भाव से है - ऐसा यहाँ प्रश्न है। तो कहते हैं कि वह भाव उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव इस पर्याय के नाम तीन भाव हैं। समझ में आया ?

यहाँ आया देखो ! **वह परिणमन आगमभाषा से..** शास्त्र की जो भाषा है, उस कारण से (भाषा से) '**औपशमिक**',.. भगवान आत्मा-अपना आत्मा आनन्द का ध्रुवधाम (है), उस ओर का आश्रय लेकर.. आश्रय शब्द ग्यारहवीं गाथा में से आया है। समझ में आया ? और 'विषय' (यह) भाषा यहाँ है। सूक्ष्म विषय है। जो आत्मा त्रिकाली परम स्वभावभाव है। जो वर्तमान पर्याय-अवस्था है, वह राग में एकत्व थी। वह वर्तमान की पर्याय-अवस्था त्रिकाल को विषय बनाकर वस्तु में एकाग्र होती है-ध्रुव में एकाग्र होती है। एकाग्रता का अर्थ-उसमें विषय लेकर अभेद (होती है)। अभेद का अर्थ पर्याय और द्रव्य एक नहीं हो जाते। समझ में आया ? परन्तु यहाँ राग में एकत्व था, वह यहाँ (अन्दर एकत्व) हुआ, उसे अभेद कहा जाता है। सूक्ष्म विषय है। समझ में आया ? लालचन्दभाई ने माँग की है कि भाई, सबेरे-दोपहर यह चलाना।

श्रोता : ऐसा ही चलना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं ? ऐसा ही चलना चाहिए, अच्छा। समझ में आया ? जैनदर्शन क्या है, जैनशासन क्या है, वह बात चलती है। जैनशासन.. जो त्रिकाली ज्ञायकभाव है,

उसमें एकाग्रता होना। भावमति-भावश्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्षरूप से अन्दर में एकाग्र होना, वह जैनशासन (है)। जैनशासन कहीं आत्मा की पर्याय से पृथक् रहता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? जैनशासन, वह वीतरागस्वरूप त्रिकाल जो है-जिनबिम्ब त्रिकाल ध्रुव है, जिसे यहाँ पारिणामिकभाव कहा। वह अकषाय-अकषायरसस्वरूप जिनबिम्बस्वरूप आत्मा है। वही वास्तव में आत्मा कहने में आता है। उस आत्मा को विषय करनेवाली जो पर्याय है, उस पर्याय को जैनशासन कहते हैं। समझ में आया? उसमें जो राग और दया, दान और विकल्प-फिकल्प वह नहीं आता। आहाहा! क्या लिखा है इसमें?

तीन भाव-**ऐसे भावत्रय कहा जाता है,..** आगमभाषा से। उपशमभाव, शान्तरस का वेदन, क्षयोपशमभाव, वह भी शान्तरस का वेदन और क्षायिकभाव, उग्र शान्तरस का वेदन, ये त्रयभाव मोक्ष का कारण अथवा निश्चयमोक्षमार्ग इन तीन भावस्वरूप है। समझ में आया? है न शास्त्र सामने? पन्ने हैं या नहीं?

मुमुक्षु : तीन नाम पाड़ दिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम पाड़ दिये। (शान्त) शान्त.. क्योंकि भगवान आत्मा शान्तरस का पिण्ड ही है न? अकषायस्वभाव, वीतरागस्वभाव से भरा पड़ा द्रव्यस्वभाव है। उसका शान्तरस शक्ति में भरा है। शक्ति से भव्यत्व की व्यक्ति। उस स्वभाव में जो शान्त-वीतरागता पड़ी है, उसमें एकाग्रता होकर पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा में शान्तदशा प्रगट होना, वह निश्चयमोक्षमार्ग है, वह भावना है, वह परिणाम है, वह पर्याय है। वह **अध्यात्मभाषा से 'शुद्धात्माभिमुख परिणाम',..** भगवान आत्मा,.. देखो! यहाँ अभिमुख शब्द पड़ा है। यहाँ विषय कहा।

शुद्ध वस्तु जो त्रिकाल ध्रुव है, उसको विषय करनेवाली भावना कहो या शुद्ध-आत्मा-अभिमुख परिणाम कहो। समझ में आया? मार्ग-मूलमार्ग यह है। यह क्या कहते हैं? इस अभिमुख परिणाम से प्राप्त होता है, वह बात तो चलती है।

मुमुक्षु : अभिमुख परिणाम कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : अब करना, अभिमुख करना, वहाँ करता है, वह यहाँ करना - फिर कैसे करना? भाई! कैसे करना कहाँ आया?

मुमुक्षु : आपने कल बताया था न, खाना कैसे खाना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन खाता है ? अभी राग करता है तो राग-परसन्मुख की दशा का अनुभव है और राग का एकान्त अनुभव, वह तो मिथ्यात्व का अनुभव है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा शान्तरस आनन्द.. देखो न! इन तीन भाव को अध्यात्मभाषा से शुद्धात्माभिमुख परिणाम-शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणाम (कहा है)। सन्मुख करना, वह करना (है)। राग और पर्यायबुद्धि से हटकर शुद्धात्मा-अभिमुख परिणाम करना, उस परिणाम में आत्मा की प्राप्ति है। उस परिणाम को तीन भाव से पहिचाना जाता है, उपशम, क्षयोपशम, और क्षायिक। उस परिणाम को-पर्याय को मोक्षमार्ग की पर्याय कहने में आता है। समझ में आया ?

'**शुद्धात्माभिमुख परिणाम**',.. शुद्ध भगवान आत्मा के सन्मुख परिणाम, उसका नाम उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक आगमभाषा से (कहा जाता है) और अध्यात्मभाषा से ध्रुवस्वभाव के समीप झुकना.. पर्याय से बात करे तो कैसे करे ? समझ में आया ? पर्याय को-जो परिणाम है, उसे शुद्धात्मा की ओर झुकाना, वह शुद्धात्मा-अभिमुख परिणाम है। क्या किया आत्मा ने ? करना क्या ? कि परिणाम को स्वभाव के सन्मुख परिणाम, वह करना है। आहाहा! इसमें अनन्त पुरुषार्थ है। समझ में आया ? इस शुद्धात्मा-अभिमुख परिणाम का नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम सम्यग्ज्ञान, उसका नाम सम्यक्चारित्र है, वह निश्चयमोक्षमार्ग (है)। '**शुद्धोपयोग**'.. यह दूसरा नाम। तीन भाव को अध्यात्मभाषा से शुद्धोपयोग कहने में आता है।

देखो, उपशमभाव को भी शुद्धोपयोग कहते हैं। उसमें आया या नहीं वह ? नन्दकिशोरजी! वे लोग कहते हैं—नहीं, शुद्धोपयोग नहीं। यहाँ उपशमभाव को भी शुद्धोपयोग कहते हैं, क्षयोपशमभाव को भी शुद्धोपयोग कहते हैं और क्षायिकभाव को भी शुद्धोपयोग कहते हैं। भले शुद्धोपयोग की शुद्धि की वृद्धि है। क्षायिक में वृद्धि आदि हो, परन्तु हैं तो तीनों शुद्धोपयोगभाव। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम, वह तो शुभ उपयोग है; वह शुभ उपयोग, धर्म नहीं है और वह धर्म का कारण भी नहीं है। समझ में आया ? धर्म ऐसा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है, उसका अवलम्बन / विषय तो ध्रुव है। वह कहा न ? इसलिए वहाँ अभिमुख करना है।

दृष्टि का ध्येय द्रव्य में है। अनन्त पुरुषार्थ है, वह कोई साधारण बात नहीं है, वह कहीं बोलने से प्राप्त नहीं होता। ऐसे धारणा हो जाये कि यह ऐसे प्राप्त होता है, वह कहीं धारणा से प्राप्त नहीं होता।

मुमुक्षु : आत्मचिन्तन से प्राप्त हो जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : चिन्तन का अर्थ एकाग्रता। चिन्तन का अर्थ विकल्प, वह चिन्तन, वह चिन्तन नहीं है। समझ में आया? तो कहते हैं, उसको शुद्धोपयोग.. मोक्षमार्ग को शुद्धोपयोग कहते हैं। शुद्धोपयोग को मोक्षमार्ग कहते हैं और शुद्धोपयोग को तीन भाव कहते हैं और तीन भाव को शुद्धोपयोग कहते हैं। समझ में आया? विशेष तो वह द्रव्यसंग्रह में है, है न भाई! द्रव्यसंग्रह दूसरा है, ऐई? हाँ है, उसमें नाम है और द्रव्यसंग्रह में नाम है। इसमें तो २०४ पृष्ठ, या तो ५७ गाथा होगी। ठीक से पता नहीं। यह ५६, ५६ गाथा में है।

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।
अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं॥५६॥

देखो, उसमें है। यहाँ पैराग्राफ है, देखो! उस परमध्यान में स्थित हुए जीवों को.. है? है भाई? उस परमध्यान में स्थित हुए जीवों को.. द्रव्यसंग्रह है न? यह द्रव्यसंग्रह है, सेठ को दो, पढ़े तो सही कभी? यह तो ख्याल रखेगा। है? द्रव्यसंग्रह है?

मुमुक्षु : लेता आया हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : लेते आये हो, लो यह ठीक किया। तीन-चार थे। समझ में आया? क्या कहते हैं। परमध्यान में स्थित हुए जीवों को.. देखो, भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्यस्वरूप में एकाग्र होकर परमध्यान किया। ऐसे स्थित हुए जीवों को वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासित होता है। है? उसमें है? ५६ गाथा। समझ में आया? वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासित होता है। आहाहा! क्या कहते हैं? कि अपने शुद्ध ध्रुवज्ञायक परमस्वभाव के सन्मुख परिणाम करने से वीतराग परमानन्द सुख प्रतिभासित होता है। उसमें रागरहित आनन्द का अनुभव आता है। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! यही निश्चय मोक्षमार्गस्वरूप है। वही निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप है। जिसे यहाँ शुद्धात्मा-अभिमुख परिणाम कहा, शुद्धोपयोग कहा, वही निश्चय मोक्षमार्गस्वरूप है। यही निश्चय मोक्षमार्ग-यथार्थ

मोक्षमार्ग का स्वरूप है। व्यवहारमोक्षमार्ग है, वह तो विकल्प है, वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया?

दूसरे पर्याय नामों से क्या-क्या कहलाता है, देखो! उसे शुद्ध आत्मा का स्वरूप कहते हैं। है? वही शुद्धात्मस्वरूप है। है पर्याय, परन्तु वह पर्याय उसकी है, इस कारण से अभेद करके वह शुद्ध-आत्मा-अभिमुख परिणाम अथवा उपशम, क्षयोपशम क्षायिकभाव, वह यहाँ त्रिकाल ज्ञायकभाव सन्मुख हुआ है तो उस परिणाम को शुद्धात्मा का स्वरूप भी कहने में आता है। पुण्य-पाप विकल्प, वह शुद्धात्मा का स्वरूप नहीं है, इतना बताने को कहा है। है तो पर्याय। नवरंगभाई!

मुमुक्षु : इतना निषेध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना निषेध करते हैं, इस अपेक्षा से। समझ में आया?

लो, वही परमात्मा का स्वरूप है। आहाहा! परमात्मा-जिसमें पर्याय में प्रगट हुआ, परमात्मा जो शुद्ध त्रिकाली परमात्मा अपना निजस्वरूप निजपरमात्मा-अभिमुख परिणाम करके जो प्रगट परिणाम हुआ, वही परमात्मा का ही स्वरूप है। समझ में आया? इसका नाम मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! समझ में आया? वह परमात्मा का स्वरूप है। चौथी लाईन है नीचे। वही एकदेश में प्रगटतारूप ऐसे विवक्षित एकदेश शुद्ध निश्चयनय से.. क्या कहते हैं? वस्तु तो त्रिकाल ध्रुव शुद्ध है। एक अंश से प्रगट हुआ, एकदेश प्रगट हुआ, मोक्ष भी एकदेश प्रगट हुआ है। सारा द्रव्य तो पर्याय में प्रगट होता नहीं। समझ में आया?

यह कहनेवाले एकदेश शुद्धनिश्चयनय से, एक भाग शुद्धनिश्चयनय से निज शुद्ध आत्मा के ज्ञान से उत्पन्न सुखमय हुआ अमृत जल का सरोबर है। शुद्धनिश्चयनय से-ऐसा कहा, उसमें शुद्ध आत्मा का स्वरूप वही परमात्मास्वरूप, वही एकदेश प्रगटतारूप विवक्षित एकदेश शुद्धनिश्चयनय से निज शुद्ध आत्मा; वही ज्ञान से उत्पन्न सुख; वही अमृत जल का सरोबर। आहाहा! भगवान आत्मा अमृत जल का तो सागर है। उसमें अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान जहाँ हुआ तो अन्तर में-पर्याय में आनन्द का सरोबर उछल गया। समझ में आया? आनन्द का सरोबर पर्याय में उछल गया। पर्याय में-आनन्द का ज्वार आया (ज्वार को गुजराती में) भरती कहते हैं न? क्या? बाढ़, बाढ़...

आनन्द भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ उसके सन्मुख परिणाम हुआ, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक शास्त्रभाषा से; अध्यात्मभाषा से अन्तर्मुख परिणाम हुआ। वह अमृत जल का सरोबर छलक गया। बाढ़... (छलक गया) छलक कहते हैं न? उछल गया, लो!

निजशुद्ध आत्मा का सरोबर, उसमें रागादि मल से रहित होने के कारण वह परमहंसस्वरूप है। आहाहा! भगवान शुद्धस्वभाव के सन्मुख परिणाम-मोक्ष का मार्ग कहा, वह परमहंसस्वरूप है, क्योंकि राग से पृथक् होकर अपने स्वभाव में एकाग्र होती है, वह पर्याय परमहंस है। पर्याय परमहंस है। आहाहा!

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान से...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौथे गुणस्थान से परमहंस, इसमें क्या है। विशेष आगे भले हो, वस्तु यहाँ तो-पहले से / चौथे से। उपशमभाव में से। समझ में आया? जरा सूक्ष्म पड़े ऐसी चीज़ है। वस्तु अनादि से क्या चीज़ है, उसके सन्मुख कभी हुआ ही नहीं और सन्मुख होने से धर्म होता है, ऐसा सुनकर कभी रुचि नहीं की; बाहर में भटक-भटककर ऐसा होता है और ऐसा होता है, यात्रा से और पुण्य से, व्रत से और तप से (धर्म होता है - ऐसा मानता है)। ये सब तो विकार का-राग का भाव है और उसमें धर्म मानना, वह तो मिथ्यात्व के भाव का पोषक है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसे परमहंस परमात्मध्यान के भावना के नामों की माला... माला अर्थात् एक के पश्चात् एक बहुत नाम। एकदेश व्यक्तिरूप, इस शक्ति की व्यक्ति आयी न भाई अन्दर, भव्यत्व की शक्ति की व्यक्ति। एकदेश व्यक्तिरूप... पूरा आत्मा पूर्ण तो प्रगट होता ही नहीं। मोक्ष भी एकदेश व्यक्तिरूप है। है? एकदेश, एक भाग प्रगट हुआ है।

शुद्धनय के व्याख्यान को यथासम्भव सिद्ध तक लेना चाहिए। यथासम्भव एकदेश शुद्धनय की अपेक्षा ये सब समझना चाहिए। यह तो मोक्षमार्ग की बात है, परन्तु मोक्ष भी एकदेश-एक भाग है। आहाहा! समझ में आया? महासमुद्र पड़ा है न, बहुत बड़ा सागर, उसमें से मोक्ष की पर्याय को एकदेश-एक भाग प्रगट हुआ। सारा तो कभी प्रगट नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा सहज परमस्वभाव का पिण्ड प्रभु है, उसके सन्मुख पर्याय में एक भाग से प्रगट आनन्द का भाग हुआ, वह भी सरोबर... यहाँ आनन्द का सरोबर कहने में आता है।

भगवान के १००८ नाम से इन्द्र स्तुति करते हैं। समझ में आया? भगवान को केवलज्ञान होता है, इन्द्र आते हैं और समवसरण में १००८ नाम... जिनसेनस्वामी ने भी आदिपुराण (में) १००८ नाम से (स्तुति की है)। क्योंकि १००८ चिह्न हैं, १००८ कलश से स्नान कराते हैं, १००८ नाम से स्तुति करते हैं तो यह भगवान आत्मा की-पर्याय की स्तुति यहाँ (द्रव्यसंग्रह में) ६५-६६ आदि, अनुभवप्रकाश में ४५ (इस तरह) ११० नाम से स्तुति की है। समझ में आया? परमात्मा की स्तुति की है। यह परमात्मा के मार्ग की स्तुति कहने में आती है। आहाहा!

वह परमब्रह्मस्वरूप है। परमब्रह्मस्वरूप-यह निर्मल वीतरागी पर्याय परमब्रह्मस्वरूप (है)। परमब्रह्मस्वरूप तो त्रिकाली वस्तु है परन्तु त्रिकाल को स्पष्ट विषय बनाकर जो पर्याय प्रगट हुई, (वह) परमब्रह्मस्वरूप है। आहाहा!

मुमुक्षु : उसका माहात्म्य द्रव्य से विशेष है?

पूज्य गुरुदेवश्री : माहात्म्य किसने कहा? यह तो उस और का झुकाव होकर जो प्रगट हुई, उसे इतना कहने में आता है, ऐसा। माहात्म्य है न? पर्याय का माहात्म्य नहीं? पर्याय का पर्याय के योग्य माहात्म्य नहीं? पर्याय से द्रव्य का माहात्म्य अनन्तगुना है।

मुमुक्षु : भाई ने क्या प्रश्न किया था, समझ में नहीं आया?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य के आश्रय में इस पर्याय का तो निषेध करना है, तो पर्याय की इतनी प्रशंसा क्यों? ऐसा प्रश्न है, नन्दकिशोरजी! समझ में आया? इस पर्याय की प्रशंसा पर्याय की है, वह एक अंश की प्रशंसा है तो परमात्मा की प्रशंसा का क्या कहना! ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ऐसा लेना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा लेना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें तो ऐसे शब्द का प्रयोग किया कि माहात्म्य घटाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि पर्याय का माहात्म्य इतना क्यों? अभी तक तो द्रव्य का माहात्म्य गाते हैं और पर्याय तो व्यवहारनय का विषय है परन्तु वह स्वभाव का पुत्र.. पुत्र

हुआ न ? भगवान की प्रजा हुई वह। समझ में आया ? पुण्य-पाप का परिणाम तो कलंक है। कुल में कलंकजात पुत्र कहते हैं। यह भगवान..

मुमुक्षु : मोक्ष है परिणाम, इसलिए माहात्म्य नहीं – मोक्ष नहीं हो इसलिए..

पूज्य गुरुदेवश्री : मोक्ष नहीं हो उसका प्रश्न यहाँ है नहीं। यहाँ तो पर्याय ऐसी है, बस ! मोक्ष होगा तो होगा, वह तो फिर पर्याय इतने माहात्म्यवाली चीज़ है क्योंकि द्रव्य के पक्ष में चढ़कर अभेद हो गयी। परमब्रह्मस्वरूप है (पर्याय का स्वरूप ऐसा है)। ऐसा समझ में आया ? ऐ रतिभाई ! ऐसा सब है। परमब्रह्मस्वरूप है।

वह परम विष्णुरूप है। परम विष्णु व्यापक निर्मल पर्याय ? व्यापक। वास्तव में तो उसका मति और भावश्रुतज्ञान है। लोकालोक और स्वद्रव्य सब उसमें जानने में आते हैं ऐसी पर्याय मति और श्रुत को विष्णुस्वरूप कहने में आता है। आहाहा ! समझ में आया ? परन्तु अब इस बार कक्षा में यह भी जरा सुनना। बहुत स्थूल बात सुनते हैं, यह तो सुनना कि उसमें क्या मूल चीज़ तो यह है। आहाहा ! समझ में आया ?

वह परम शिवस्वरूप है—ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन लिये पहले, भाई ! ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों लिये। ब्रह्मा, विष्णु और महेश। यह ब्रह्मा, यह परमब्रह्मस्वरूप भगवान आत्मा निर्मलानन्ददशा। शुद्धस्वभाव के सन्मुख, परमपारिणामिकभाव को विषय करके जो पर्याय बनी, रची, हुई, वह परम ब्रह्मस्वरूप, परम विष्णुस्वरूप और परम शिवस्वरूप है। जिसमें उपद्रव बिल्कुल नहीं, विकल्प का उपद्रव नहीं, अकेले आनन्द का, आनन्द की पर्याय का अनुभव है। आहाहा ! उसका नाम निश्चयमोक्षमार्ग है। यह कल निश्चयमोक्षमार्ग नाम लिखा, और निश्चयमोक्षमार्गस्वरूप के ये सब नाम हैं।

वह परम बुधस्वरूप है। वे बोद्ध रह गये न वापस। ब्रह्मा, विष्णु और शिव तो आये, परन्तु बुद्ध। आहाहा ! 'बुधयति इति बुध:' भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यध्रुव की महिमा करते-करते उसकी जो पर्याय प्रगट हुई, उसकी भी इतनी महिमा है। परम बुद्धस्वरूप है।

वह परम जिनस्वरूप है। लो परम जिनस्वरूप तो द्रव्य था। वास्तव में यह आत्मा है। वास्तविक आत्मा। ३८ गाथा में तो ऐसा कहा – खरेखर / वास्तव में आत्मा ध्रुव, वह वास्तव में आत्मा है परन्तु यहाँ पर्याय, ध्रुव में एकत्व हुई तो पर्याय को भी परम जिनस्वरूप कहने में आता है।

परम निज आत्मा की प्राप्ति का लक्षण का धारक जो सिद्ध, उस रूप है। देखो, यह पर्याय को सिद्ध कहा। परम निज आत्मा–अपना निज आत्मा, उसकी प्राप्ति। देखो, यह प्राप्ति। ए सेठ! प्राप्ति–निज आत्मा की प्राप्ति। अन्तर सन्मुख होने से आत्मा की प्राप्ति होती है। जो अनादि से राग और पर्याय की प्राप्ति थी, वह मिथ्यात्व था। स्वभाव सन्मुख होकर प्राप्ति हुई तो वह तो आत्मा की प्राप्ति हुई। आहाहा!

मुमुक्षु : पहले यही विधि सीखनी ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कला। तुम ऐसे हो, यह अभी यहाँ बतायेंगे।

देखो, वही निरंजनरूप है। देखो! यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक तीनों भाव को लागू पड़ता है। आहा!

मुमुक्षु : जो उपशमभाव के नामान्तर हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब नाम हैं। शुद्ध–आत्मा–अभिमुख, शुद्धोपयोग और तीन भाव, उनके ये सब नामान्तर हैं, पर्यायमाला (है) माला में बहुत मोती होते हैं न, तो यह पर्यायमाला, एक पर्याय के इतने–इतने नाम। हजारों–लाखों अनन्त नाम हैं। इतना गिनाते हैं–तुम कहते हो न ? गिनाते। इतना गिनाते हैं और तो गिनाते हैं ११०–पर्याय के ११० नाम तो गिनाते हैं। देखो! ६५ तो यहाँ हैं।

वह निर्मलस्वरूप का धारक है—कौन ? वीतरागी पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय, धर्म की पर्याय, धर्म पर्याय इसको कहते हैं कि वह सर्व कर्ममलरहित स्वरूप का धारक है। उसमें राग का भाव–व्यवहार का भी बिल्कुल नहीं, कर्म की बात तो भिन्न रह गयी परन्तु विकार का अंश उसमें नहीं, निर्विकल्प आनन्द की पर्याय को यहाँ मोक्षमार्ग कहने में आता है। समझ में आया ? आहाहा!

वही स्वसंवेदन ज्ञान है। इस टीका में तदेव–तदेव कहा है और फिर स ऐव – स ऐव कहा है पीछे से। समझे ? यह अन्तर क्यों किया होगा ? तदेव परमज्योति वहाँ तक तदेव रखा (नपुंसकलिंग हो तो स एव, पुरुषलिंग हो तो तेवो तेवो होवे तो तदेव ऐसा होवे तो स एव, पण्डितजी ने स्पष्टीकरण किया।) ठीक। कहो, वही संवेदन ज्ञान है। टीका में दो शब्द एक में तदेव–परमज्योति, वहाँ तक तदेव आयेगा और फिर आयेगा सएव शुद्धात्मानुभूति, यहाँ से अनुभूति... स एव शुद्धात्मानुभूति। अच्छा ? समझ में आया ?

भगवान आत्मा–अपने ध्रुवस्वरूप का विषय बनाकर, ध्येय बनाकर जो वीतरागी सम्यग्दर्शन, ज्ञानचारित्र की पर्याय हुई, वह स्वसंवेदन हुआ, वह राग का वेदन था, सो छूट गया। शुद्धात्मानुभूति अर्थात् द्रव्य का अनुभव नहीं होता परन्तु द्रव्य की पर्याय का अनुभव है उसे द्रव्य का अनुभव कहने में आता है। समझ में आया? जो ऐसे राग का वेदन था, विकल्प था; इस अपेक्षा से निर्मल पर्याय हुई, उसे द्रव्य का वेदन हुआ (अनुभव हुआ) ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

'वही परम तत्त्वज्ञान है' शुद्धात्मा का स्वरूप परम तत्त्वज्ञान है। देखो! वही परम तत्त्वज्ञान.. आहाहा! सब जान लिया उसने, अपना आत्मा अखण्डानन्द प्रभु सम्यग्दर्शन में प्रतीति में आ गया और वही परम तत्त्वज्ञान कहने में आता है। उसको वह परम तत्त्वज्ञान हो गया। समझ में आया?

और 'वही शुद्धात्मा का दर्शन है' लो, यह शुद्धात्मा का दर्शन! आहा! इस उपशमभाव में शुद्धात्मा का दर्शन कहा, भाई! उपशमभाव को शुद्धात्मा का दर्शन कहा। उपशमभाव को शुद्ध उपयोग क्यों कहा? अरे भगवान! क्या करता है? लोगों को मूल निज परमात्मा क्या चीज़ है, उसकी खबर नहीं और अपनी दृष्टि से शास्त्र पढ़े, उसमें से अर्थ के अनर्थ निकाले। समझ में आया? वही शुद्धात्मा का दर्शन, यह जो मोक्षमार्ग हुआ–शुद्धात्मा अभिमुख परिणाम (हुआ), वही शुद्धात्मा का दर्शन। आहाहा! भगवान का साक्षात्कार हुआ..

मुमुक्षु : अरिहन्त भगवान का?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्त भगवान का। आत्मा अरिहन्त है न? आत्मा ही अरिहन्त है, दूसरा कौन अरिहन्त है? समझ में आया?

वह आया था न? तत्त्वानुशासन में आया था। तत्त्वानुशासन में नागसेन मुनि कहते हैं। एक प्रश्न हुआ कि तुम अरिहन्त का ध्यान करते हो तो अरिहन्त तो तुम हो नहीं, तुम अरिहन्त का ध्यान करते हो, अरिहन्त का ध्यान है नहीं तो तुम्हारा ध्यान मिथ्या हुआ, झूठा हुआ। अरे! सुन तो सही! तत्त्वानुशासन में (कहा है) अरिहन्त (पद) तो हमारी आत्मा में पड़ा है। अरिहन्तस्वरूप हमारा आत्मा है, उसका हम ध्यान करते हैं और वह ध्यान निष्फल नहीं है। आहाहा! ध्यान निष्फल नहीं है। आनन्द का वेदन होता है; इसलिए

अरिहन्त का ध्यान वह हमारा बराबर है। समझ में आया? हमारा स्वरूप ही अरिहन्त है। आत्मा का स्वरूप ही अरिहन्त है। उस अरिहन्त का ध्यान किया तो उस अरिहन्त के ध्यान से अपना ध्यान हुआ। यह अरिहन्त, वह अरिहन्त नहीं।

तत्त्वानुशासन में (ऐसा कहा है) तत्त्वानुशासन पुस्तक है। उसे नागसेन मुनि ने बनाया है। तो नागसेन मुनि ने ऐसा कहा कि भाई! कोई प्रश्न करता है कि तुम अरिहन्त का ध्यान करते हो तो अभी अरिहन्त तो है नहीं, तुम अरिहन्त का ध्यान करते हो अभी अरिहन्त तो है नहीं तो कैसे? तुम्हारा ध्यान तो निरर्थक हुआ। अरे! सुन तो सही! निरर्थक नहीं हुआ। हमारे भगवान में, जो अरिहन्त को पर्याय प्रगट होनी है ऐसी अनन्त पर्यायें हमारे में है। हम अरिहन्त के अरिहन्त हैं। हमारे द्रव्य का ध्यान करने से हम अरिहन्त का ध्यान करते हैं और (वह) निष्फल नहीं है क्योंकि यदि अरिहन्त का ध्यान निष्फल हो तो आनन्द नहीं आता (किन्तु) हमें तो आनन्द आता है, अतीन्द्रिय आनन्द आता है। अत: हम बराबर अरिहन्त का ध्यान करते हैं।

मुमुक्षु : बराबर, झूठ-मूठ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठ-मूठ नहीं। ऐसा उसमें लिखा है। समझे? ए नन्दकिशोरजी! उसमें लिखा है, हों! वह झूठा साहित्य नहीं है, झूठ-मूठ नहीं है, झूठ-मूठ हो तो आनन्द कैसे आया? समझ में आया? यह तो अलौकिक बातें हैं भाई! यह तो परमेश्वर के घर की, परमेश्वर को पहुँचने की बातें हैं। बाकी सब बातें जगत की हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! उस भगवान का हम ध्यान करते हैं, हम भगवान हैं, हमारा भगवान हमारे पास है। पास है ऐसा नहीं, परन्तु हम ही हैं। ए नन्दकिशोरजी! क्योंकि ऐसी अरिहन्त की अनन्त पर्याय केवलज्ञानादि और ऐसी-ऐसी अनन्त-अनन्त केवलज्ञान की, आनन्द की पर्याय ऐसी अरिहन्त की आनन्द की पर्याय मेरे गर्भ में पड़ी है, पेट में पड़ी है। हम गर्भ का ध्यान करते हैं तो उसमें आनन्द का प्रसव होता है। समझ में आया? आहाहा!

'वही परम अवस्थास्वरूप है'। उत्कृष्ट अवस्था। देखो, वापस अवस्था, यह तो निश्चयमोक्षमार्ग के नाम हैं न?

'वही परमात्मा का दर्शन है' (पहले) वह शुद्धात्मा का दर्शन कहा था। (अब)

परमात्मा का दर्शन, सम्यग्दर्शन में उपशमभाव में, क्षयोपशमभाव में, क्षायिकभाव में जो पर्याय प्रगट हुई, वह परमात्मा का दर्शन है। अनादि का क्षयोपशम, वह क्षयोपशम यहाँ नहीं लेना, हों! अनादि का क्षयोपशमभाव है, वह तो निगोद को भी है, अभव्य को भी है; वह क्षयोपशम नहीं। अपने द्रव्य का आश्रय करके जो आनन्द की दशा उत्पन्न हुई – ऐसे ज्ञान और आनन्द को यहाँ क्षयोपशमभाव कहते हैं। आहाहा! अनादि का क्षयोपशमभाव तो निगोद में भी है। निगोद में ये तीन भाव नहीं हैं।

मुमुक्षु : साधकदशा के।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया?

'वही परम तत्त्वज्ञान है' पहले परम तत्त्वज्ञान आया था, फिर वही आया भाई! परम तत्त्वज्ञान, परम तत्त्वज्ञान फिर से आ गया।

'वही शुद्ध आत्मज्ञान है' उसे शुद्ध आत्मज्ञान कहा।

'वही ध्यान करनेयोग्य शुद्ध पारिणामिकभाव है, उस रूप है।' ऐई! पारिणामिकभाव कह दिया वापस। पारिणामिकभाव त्रिकाल सहजभाव भगवान एकाकार होकर पर्याय में प्रगट हुआ, वह पारिणामिकभाव है, उसका है, उसकी पर्याय है। देखो! अपेक्षा से कथन है भाई! वीतराग का मार्ग बहुत गम्भीर है। ऐसे ऊपर-ऊपर से कोई पढ़ ले – ऐसी बात नहीं है।

'वह ध्यानभावस्वरूप है' वह ध्यानभावस्वरूप। आहाहा!

'वही शुद्धचारित्र'। इस उपशमभाव में भी शुद्ध चारित्र कहा, इतना चारित्रस्वरूप आचारणरूप हुआ न? आहाहा!

'वही अन्तरंग का तत्त्व है' अन्तरंग तो ज्ञायकतत्त्व है, उसके आश्रय से – स्पर्श करके जो निर्मल मोक्षमार्ग पर्याय प्रगट हुई, उसे अन्तरंग तत्त्व कहने में आया है। विकल्प-विकल्प, वह बाह्य तत्त्व है।

जहाँ नियमसार में पर्याय को बहिर्तत्त्व कहा था, वह यहाँ अपेक्षा से अन्त:तत्त्व कहते हैं। यहाँ अन्तरंग ज्ञायकभाव ध्रुव में से स्पर्श करके जो पर्याय हुई, इस अपेक्षा से उसे अन्तरंग तत्त्व कहने में आया है। द्रव्य की अपेक्षा से बहिर्तत्त्व है, परन्तु राग जो बहिर्तत्त्व

है, उससे छूटकर जो अन्तरंग वीतरागी पर्याय हुई, इस अपेक्षा से अन्तरंग तत्त्व कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? धीरे-धीरे पाचन होता है न! हलवे-हलवे (धीरे-धीरे) ग्रास भरे..

मुमुक्षु : हलवे-हलवे अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : धीरे-धीरे। मैसूरपाक खाते हैं न? चार सेर घी पिलाया। मैसूर समझे न, मैसूर, मैसूर? एक सेर आटा और चार सेर घी, मैसूर वह भी थोड़ा-थोड़ा खाते हैं। यह अनुभव भी धीरे-धीरे समझने की चीज़ है, एकदम ग्रास उतार दे, ऐसी चीज़ नहीं है। समझ में आया?

क्या कहते हैं? परमतत्त्व है 'वही परमतत्त्व है' पर्याय को परमतत्त्व कहा। 'वही शुद्ध आत्मद्रव्य है' है न? उस शुद्ध आत्मद्रव्य की पर्याय को भी अभेद करके शुद्ध आत्मद्रव्य कह दिया है। आहाहा!

'वही परम ज्योति है' लो! यहाँ तक तो 'तदैव तदैव' आया है पाठ में। परमज्योति ज्ञानमूर्ति भगवान पर्याय में प्रगट हुआ। सम्यग्दर्शन धर्मपर्याय प्रगट हुई, वह परमज्योति हुई, परमज्योति प्रगट हुई।

'वह शुद्ध आत्मा की अनुभूति है।' लो! यहाँ से 'सएव सएव' आया संस्कृत में। भाई कहते हैं, इसकी भाषा से क्या कहा? यह शुद्ध आत्मद्रव्य है, लो! शुद्ध आत्मा की अनुभूति है। 'वही शुद्धात्मा की प्रतीति है।' देखो! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग है, वही आत्मा की प्रतीति है। समझ में आया?

'वही आत्मा की संविति अर्थात् साक्षात्कार है' वह आत्मा का साक्षात्कार-सम्यग्दर्शन हुआ, उपशमभाव हुआ, क्षयोपशमभाव हुआ, उसको यहाँ आत्मा का साक्षात्कार कहते हैं, परमेश्वर की भेंट हुई। ऐई पण्डितजी! ऐसा महँगा मार्ग गजब किया यह तो। समझ में आया?

'वही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति है' निज आत्मस्वरूप की पर्याय में प्राप्ति हुई तो उस पर्याय को ही निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति कहने में आया?

'वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति है' त्रिकाल भगवान जो नित्य है। नित्य तो पर्याय में

शुद्धता से भान हुआ, वेदन हुआ तो वह शुद्धता की पर्याय, तो यह त्रिकाल शुद्ध है तो उस पर्याय को भी नित्य पदार्थ की प्राप्ति कह दिया है। समझ में आया ?

'वही परम समाधि है' परम समाधि... समाधि यह बाबा लगाते हैं वह नहीं, हों! भगवान आत्मा चिदानन्द का पिण्ड, उसका अन्तर अनुभव करके जो पर्याय प्रगट हुई, उसे यहाँ परम समाधि कहा गया है।

'वही परम आनन्द है' मोक्षमार्ग, वह परम आनन्द है। मोक्षमार्ग में दु:ख नहीं। कोई तो कहते हैं, आहाहा! मुनियों को कितना कष्ट सहन करना पड़ता है। अरे! कष्ट सहन करना पड़े, वह धर्म है ? वह मोक्षमार्ग है ? कष्ट में तो राग आता है, आर्तध्यान होता है; मोक्षमार्ग तो परम आनन्दस्वरूप है। अतीन्द्रिय आनन्द का-शान्ति का वेदन, उसका नाम सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र कहते हैं। समझ में आया ?

'वही नित्य आनन्द है' नित्य आनन्द, लो! है तो नित्यानन्द भगवान, परन्तु पर्याय नित्य में से प्रगट हुई तो (उसे नित्यानन्द कह दिया है।) कल्पित सुख तो अनित्य है बाह्य स्त्री में और पैसा में धूल में मान ले, वह तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया ? कहो, सेठ! यह तुम्हारे बँगले और मकान और पैसे में सुख है। चालीस-चालीस मोटरें, बीड़ियों में घूमती है, वह सुख है। धूल में भी नहीं है। कल्पना है, दु:ख है, दु:खी है। यह भगवान आत्मा आनन्द के कन्द को जब पर्याय मिली, नित्यानन्द हो गया, जाओ। समझ में आया ?

'वही स्वभाव से उत्पन्न आनन्द है' लो! स्वभाव से उत्पन्न हुआ आनन्द।

'वही सदानन्द है' सदानन्द-सदानन्दी भगवान प्रगट हुए। समझ में आया ? भगवान आत्मा सदानन्द की मूर्ति है। इसको स्पर्श करके-विषय बनाकर ध्येय बनाकर, जो पर्याय प्रगट हुई, उसे यहाँ सदानन्द कहने में आता है।

'वही शुद्ध आत्मपदार्थ के पठनरूप स्वरूप का धारक है' वही आत्मपदार्थ पठन सुख का धारक-उस आत्मपदार्थ का पठन किया उसने। अन्तर की अनुभव दशा प्रगट हुई, उसने आत्मा का पठन किया।

मुमुक्षु : वाह रे वाह स्वाध्याय..

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बाद में - स्वाध्याय बाद में लेंगे। (वही परम स्वाध्याय है)

यह तो पठनस्वरूप का धारक है, वहाँ तक.. वही शुद्ध आत्मपदार्थ के पठनरूप स्वरूप का धारक है। यह पर्याय में आत्मा का पठन किया। आहाहा! शास्त्र-पठन तो सब विकल्प है। एई! दिगम्बर सन्तों की मस्ती है, देखो! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में भी ऐसी मस्ती है, ऐसा स्पष्टीकरण करते हैं।

'वही परम स्वाध्याय है' यह शास्त्र स्वाध्याय तो विकल्प है। स्व-अध्याय अपना निजानन्दस्वरूप का अन्तर एकाग्र होकर अनुभव करना, वह स्वाध्याय है।

'वही निश्चयमोक्ष का उपाय है' लो! निश्चयमोक्षमार्ग के ही नाम चलते हैं। वह निश्चय-सच्चा मोक्ष का उपाय है।

'वही एकाग्र चिन्ता निरोध है' अन्तर में एकाग्र होकर चिन्ता का निरोध करके शान्ति का वेदन।

'वही परम ज्ञान है' - यह। 'वही शुद्ध उपयोग है' लो, आया, उसमें नाम आया न उपयोग का अपने, वह शुद्ध उपयोग।

'वह परम योग' वह परम योग है ध्यान। शुद्धस्वरूप में एकाग्र हुआ, वही कहते हैं परम योग है। योग दूसरा क्या योग? योग करो, ध्यान करो, किसका? परन्तु वस्तु बिना? समझ में आया? कितने ही कहते हैं शून्य हो जाओ। लो, रजनीश ने भी अभी लिखा तारणस्वामी का। सन्त तारण शून्य होने का कहते थे। ए धन्नालालजी! ऐसा आया है। वह और नहीं हुआ और यहाँ नाम दिया। पत्र में आया है अपनी बात पुष्टि करने के लिये, सन्त तारण शून्य होने को कहते हैं (ऐसा उसने लिखा)। परन्तु तू कहता है वह शून्य नहीं। सन्त तारण तो कहते हैं ध्रुवस्वरूप को ध्येय बनाकर विकल्प से शून्य हो जाओ, वह शून्य (का आशय है)। एई! शून्य हो जाओ, शून्य हो जाओ। (तत्त्वानुशासन) उस गाथा की बात हुई थी।

'वही परम भूतार्थ है' वही भूतार्थ है, भूतार्थ तो ध्रुव है परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान का अनुभव हुआ, यह उसको भी भूतार्थ कहने में आया है। भाई! बन्ध अधिकार में आता है न? भूतार्थ मोक्षमार्ग-अभूतार्थ मोक्षमार्ग आता है। बन्ध अधिकार (आता है)। मोक्षमार्ग की पर्याय है, उसको भी भूतार्थ मार्ग, मोक्षमार्ग बन्ध अधिकार में

(आता है)। समझ में आया? रागादि हैं, वे अभूतार्थ हैं, मोक्षमार्ग है ही नहीं। भूतार्थ मोक्षमार्ग अपना स्वभाव चैतन्यज्ञायक का आश्रय करके शक्ति की व्यक्तता प्रगट हुई, उस भाव को, मोक्षमार्ग को भूतार्थमार्ग कहने में आया है। ओहोहो! दिगम्बर आचार्यों ने चारों ओर से जहाँ से लो वहाँ से पूर्वापर अविरोधमार्ग खड़ा होता है, कोई भी ग्रन्थ, कोई भी शास्त्र (लो) समझ में आया?

'वही परमार्थ है' लो! अन्दर आत्मा के-ज्ञायकभाव के आश्रय से जो भाव हुआ, वह परमार्थ है, वही निश्चयनय के अनुसार एक परम आत्मा का-आनन्द का अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, शुद्ध आत्मा अभिमुख परिणाम-उसे ज्ञान कहते हैं, उसे दर्शन कहते हैं, उसे चारित्र कहते हैं, उसे तप कहते हैं। उसे वीर्यरूप आचार कहते हैं- ये पाँच आचार उसको कहते हैं। समझ में आया? ये विकल्प के आचार और ये देह के आचार तो कहीं बाहर रह गये।

'वही समयसार है' लो, कारणसमयसार है न? मोक्ष का कारण-वह समयसार है। त्रिकाल को समयसार कहते हैं, पर्याय को-मोक्षमार्ग को कारणसमयसार कहते हैं और पूर्ण को कार्यसमयसार कहते हैं, तो यहाँ वही समयसार है। 'वही अध्यात्मसार है' यह अध्यात्मसार, हों! समझ में आया? यशोविजयजी ने अध्यात्मसार बनाया है, समयसार देखकर उसने अपना बनाया है। वह तो भगवान सर्वज्ञ परिपूर्ण ध्रुवस्वभाव, परमस्वभाव का आश्रय करके जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, आनन्द का वेदन, वीतराग अनुभव जो आनन्द हुआ, उसको अध्यात्म का सार कहते हैं। समझ में आया?

'वही समता आदि निश्चय से आवश्यक है' यह उसको सामायिक कहते हैं, यह वीतराग सामायिक इसको कहते हैं। आहाहा! बाकी विकल्प कहते हैं। 'इरियाविहीया मिच्छामि दु:क्कडं' ऐसा करते-करते दो घड़ी हो गया, वह सामायिक, वह सामायिक नहीं है। समझ में आया? अपने अखण्ड परमात्मा में जम जाना, वही पर्याय जो प्रगट हुई, वह परम वीतराग सामायिक है। समझ में आया? लो, इस मोक्षमार्ग को वीतराग सामायिक कहते हैं।

'वही परम शरण उत्तम मंगलं है' लो, शरण उत्तम, मंगल तीनों भगवान आत्मा

ज्ञायकभाव, आचार्य स्वयं कहते हैं और मानते हैं न, यहाँ देखो न! शुद्ध उपयोग इत्यादि 'पर्यायसंज्ञा जानना' अपने यह चलता है, इस पन्ने में यह चलता है, ये सब नाम उसमें कहने का अभिप्राय है। कैसे नाम थे उसमें जान लेना। यहाँ कितना कहें। अपने चलता है न उसमें ? ऐ चन्दुभाई! इत्यादि... इत्यादि कहना...

'वही परम शरण, उत्तम और मंगल है' अरिहन्ता मंगलं, सिद्धा मंगलं, यह सब व्यवहार है। भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप में-ध्रुव में एकाग्र होकर जो वीतरागी पर्याय प्रगट हुई वही परम मांगलिक, परम उत्तम और परम शरण है।

'वही केवलज्ञान उत्पत्ति का कारण है' यह मोक्षमार्ग, केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। 'वही समस्त कर्मों के नाश का कारण है' यह मोक्ष का मार्ग, कर्मों के नाश का कारण है। व्यवहाररत्नत्रय, वह मोक्ष का मार्ग है नहीं।

'यही निश्चयनय की अपेक्षा से दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तप - चार आराधना' यह चार आराधना भी उसे कहते हैं। आहाहा!

'वही परमात्मा की भावनारूप है' लो.. भावना, भाई! उस भावना का अर्थ करते हैं न ? भावना अर्थात् चिन्तवना, कल्पना। यहाँ भावना का अर्थ परमार्थनय से अन्तर अनुभव, वह परमार्थ की भावना है। रतनचन्दजी अर्थ करते हैं, वह प्रवचनसार में चलता है न ? श्रावक को सामायिक में शुद्धभावना होती है-ऐसा पाठ है तो भावना का अर्थ करते हैं (कि) वह तो शुद्धभावना भावे-परन्तु शुद्धभावना होती है - ऐसा नहीं। शुद्धभावना का अर्थ शुद्ध उपयोग सामायिक में होता है। समझ में आया ? अर्थ में बहुत बदलाव! भावना का अर्थ-वस्तु जो ध्रुवस्वरूप है, उसरूप पर्याय में भाना, वीतरागी पर्याय एकाग्र होकर (भाना), उसका नाम भावना अर्थात् चिन्तवना करो ऐसा आत्मा, ऐसा आत्मा ऐसा, परन्तु वह भावना नहीं है।

मुमुक्षु : आतमभावना भावतां....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आत्मभावना आती है न श्रीमद् में। 'आतमभावना भावतां जीव लहै केवलज्ञान रे' यह रटे अवश्य परन्तु आत्मा क्या और कौन है ? यह कुछ खबर नहीं होती।

आत्मा अनन्त आनन्द का कन्द सच्चिदानन्द प्रभु है, इसकी भावना अर्थात् एकाग्रता करते-करते केवलज्ञान होता है। दूसरा कोई केवलज्ञान का उपाय / कारण-फारण है नहीं। ऐइ! राजकुमारजी! समझ में आता है? पहले ग्रास में ऐसा कठिन आया है। ऐइ! मनसुखभाई!

मुमुक्षु : पहले ग्रास में मैसूरपाक आया, ऐसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैसूर आया। मैंने ऐसा कहा, वह कहाँ कहा?

मुमुक्षु : पोला लगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : पोचा (पोला) लगा। यह पहले-पहले आया है। हमारे पालेज रहता है न? पालेज का है। समझ में आया?

'शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न सुख की अनुभूतिरूप परम कला' लो! यह परम कला है। कलाबाज आत्मा जागृत हुआ, यह परम कला है-ऐसा कहते हैं। बाकी दुनिया की कला-फला सब निरर्थक चार गति में भटकनेवाली है। शोभालालजी! तम्बाकू ऐसी है और वैसी है, ऐसी है बीड़ी और ऐसी है तम्बाकू, ऊँची-ऊँची तम्बाकू पीवे, यहाँ आवे तब थोड़ी दुर्गन्ध आती हो। समझ में आया? शुद्ध आत्मा की अनुभूति, वही परम कला है, वही परम कला। हम तो जंगल में रहते हैं न? नाक में, दूर हो तो भी बहुत गन्ध आती है। कोई बीड़ी पीकर आवे और तम्बाकू ऐसा हो नहीं, शरीर में भी वह लगाता है, गन्ध-बन्ध क्या कहलाता है? इत्र-इत्र दूर से गन्ध मारता है।

'वही दिव्य कला है' ओहोहो! दिव्य कला आत्मा अन्दर परमात्मा, सर्वज्ञ परमात्मा ने कहा, ऐसा आत्मा का अनुभव करना, वह अनुभव दिव्य कला है।

'वही परम अद्वैत' लो, अद्वैत आया। वे वेदान्त कहते हैं, वैसा नहीं, हों! आहाहा! विकल्प का राग छोड़कर एकाकारस्वरूप है, उसमें एकाकार होना, वह परम अद्वैत है। समझ में आया?

'वही परम अमृतस्वरूप परम धर्मध्यान है'-ऐई, देखो भाई! धर्मध्यान को तो यह कहा। वे कहते हैं धर्मध्यान शुभोपयोग में है। पढ़ने में हेतु है इसमें, जरा, वे लोग कहते हैं। धर्मध्यान शुभभाव में होता है और शुद्ध उपयोग में शुक्लध्यान होता है। देखो, यहाँ कहते हैं। 'वही अमृतस्वरूप परम धर्मध्यान है' आहाहा! उपशमभाव में, क्षयोपशमभाव में,

क्षायिकभाव में; शुद्धात्मा-अभिमुखपरिणाम, शुद्धोपयोग वह शुद्ध अमृतस्वरूप है, वह धर्मध्यान है। समझ में आया? उसका नाम धर्मध्यान, विकल्प से विचारना कि भगवान ऐसा कहते हैं-ऐसा विकल्प, वह धर्मध्यान नहीं है। आहाहा!

वही शुक्लध्यान है - उत्कृष्ट उपयोग हो जाये, वह शुक्लध्यान। यहाँ तीनों भाव लिये न?

'वही रागादिरहित निर्विकल्प ध्यान है' वह आत्मा का विकल्परहित ध्यान है। 'वही निष्कल ध्यान है' निष्कल अर्थात् शरीररहित का ध्यान है।

'वही परम स्वास्थ्य-परम निरोगता' परम स्वास्थ्य, वीतराग की मूर्ति भगवान का साक्षात्कार करके निर्मल पर्याय हुई, वह परम स्वास्थ्य है। निरोग हुआ, निरोग हुआ। राग-द्वेष था, वह रोग था। यह शुभ रत्नत्रय का राग, वह रोग है। आहाहा! ऐ मूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : किसी-किसी को किसी काल में प्रयोजनवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी-किसी को प्रयोजनवान क्या कहा? जानना प्रयोजनवान, किसी-किसी को किसी काल में कहा, करना प्रयोजनवान है-ऐसा नहीं कहा है। सेठ बारहवीं गाथा रखते हैं-किसी-किसी को व्यवहार प्रयोजनवान। किसी-किसी को किसी काल में किसी को किसी काल में अर्थात् साधकजीव को जब तक सिद्ध न हो, तब तक उसकी पर्याय में अल्प निर्मलता है, रागादि है, वह जानने में आता है, वह प्रयोजनवान (का आशय है); करना प्रयोजनवान-ऐसा नहीं है। समझ में आया? अब इतने बोल हो गये हैं, थोड़े बाकी हैं।

'वही परम वीतरागतारूप है' लो! 'परम समतास्वरूप है' 'वही एकत्व है', लो, एकत्व। 'परम तेज ज्ञान' और 'वह परम समरसीभाव' लो, पैंसठ बोल हुए। उसे मोक्ष का मार्ग कहते हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

जयसेनाचार्य की टीका, यहाँ आया, अपने सबेरे आया था न ? सबेरे आया था न ? यह आत्मा जो त्रिकाल शुद्ध ध्रुवतत्त्व है... वह आगे कहेंगे। परन्तु यहाँ आया... वह तत्त्व तो निष्क्रिय है। आगे निष्क्रिय आयेगा। गाथा में भी निष्क्रिय आता है। सिद्धान्त-पंचास्तिकाय ५६ गाथा की टीका में (आता है)। 'परिणामो निष्क्रिय:' ऐसा पाठ संस्कृत टीका में है। संस्कृत टीका में है-सिद्धान्त कहा है - ऐसा कहा है न, वह यह पाठ है।

वस्तुरूप से त्रिकाल आनन्द और ज्ञानस्वरूप जो नित्य ध्रुव, वह तो अक्रिय है। सबेरे जो अक्रिय आया था, वह ऊपर जैसा, ऐसा यह नहीं। पण्डितजी! वे चार द्रव्य अक्रिय, निष्क्रिय है न, तत्त्वार्थसूत्र में।

मुमुक्षु : जैनतत्त्वमीमांसा.....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो तत्त्वार्थसूत्र का दृष्टान्त है और उसमें धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और (काल) क्षेत्रान्तर नहीं होता, इस अपेक्षा से चार को निष्क्रिय कहा। यहाँ निष्क्रिय कहा, वह वर्तमान पर्याय की क्रिया उसमें नहीं, (इस अपेक्षा से कहा)। समझ में आया ? यहाँ निष्क्रिय अर्थात् शुद्ध पारिणामिकभाव ध्रुव, वह तो, बन्ध और मोक्ष के परिणाम जो सक्रिय हैं और उसका कारणरूप परिणाम-परिणमन जो सक्रिय है परिणमन है, इस अपेक्षा से, तो वह द्रव्यस्वभाव ध्रुवस्वभाव उस पर्याय से रहित है। आहाहा ! समझ में आया ? परन्तु यह जो पर्याय होती है उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव की... उदयभाव की तो मोक्षमार्ग है नहीं, तो उसका तो निषेध कर दिया। जिस किसी पर्याय में दया, दान, व्रत आदि व्यवहारमोक्षमार्ग की पर्याय जो कहते हैं, वह तो उदयभाव है, वह तो मोक्षमार्ग में है नहीं। मात्र ध्रुव चैतन्य प्रभु शुद्ध आनन्दस्वरूप को ध्येय करके... यहाँ आयेगा विषय बनाकर - त्रिकाली वस्तु को ध्येय बनाकर, विषय बनाकर, लक्ष्य में लेकर जो परिणति खड़ी होती है, वह परिणति तीन भाव से है—आगमभाषा से उपशम,

क्षयोपशम और क्षायिक इन तीन भाव में। अध्यात्मभाषा से शुद्धआत्मा अभिमुख परिणाम। परिणाम कहो, पर्याय कहो। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य वस्तु के सन्मुख की अवस्था, दशा वह मोक्ष का मार्ग और यह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव यह शुद्ध उपयोग (है)। सबेरे बहुत कहा, द्रव्यसंग्रह में से। चन्दुभाई! ख्याल था तुम्हारा? परन्तु इत्यादि आया। इसलिए स्पष्टीकरण किये बिना समेट लेना। ऐ नवरंगभाई! इन लोगों को सुनना है पाठ, परन्तु यह पाठ आवे तब पाठ आवे न?

अब यहाँ आया देखो, **वह पर्याय,...** दूसरा पैराग्राफ **वह पर्याय,...** कौन सी पर्याय? जो आत्मा त्रिकाली आनन्दस्वरूप, ध्रुवस्वरूप के आश्रय से, ध्येय से, उसे विषय बनाकर, ध्येय बनाकर, जो पर्याय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वीतरागीदशा उत्पन्न हुई, वह पर्याय। है न पाठ? **वह पर्याय, शुद्धपारिणामिकभावलक्षण शुद्धात्मद्रव्य...** यह विषय तो एकदम (अलग है)। समझ में आया? इस टीका में से किसी-किसी समय यह बात कहते थे, परन्तु किसी-किसी समय। यह टीका है न? यह बात तो सब पहले आ गयी है परन्तु इस श्लोक का अर्थ एकसाथ नहीं आया था। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जो वस्तु है, ध्रुव - उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत् और जो मोक्ष का मार्ग हुआ, जो तीन भाव से। राग उदयभाव से तो मोक्षमार्ग है नहीं परन्तु तीन भाव से हुआ, वह उत्पाद-व्यय की पर्याय है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्, जो तत्त्वार्थसूत्र में कहा है, वह उत्पाद / नयी-नयी पर्याय उत्पन्न होती है, पुरानी व्यय होती है। उत्पाद-व्ययरूप तीन भाव हैं; पारिणामिकभाव ध्रुव है। समझ में आया? यह उत्पाद, व्यय और ध्रुव में सारा द्रव्य आ गया, त्रिकाली द्रव्य वस्तु और परिणाम जो निर्मल मोक्षमार्ग की दशा शुद्ध उपयोग स्वसंवेदनभाव, मतिश्रुतभाव जो जैनशासन कहने में आया है न? १५ वीं गाथा में (कहा है कि) श्रुतज्ञान, वह जैनशासन है। कल किसी ने प्रश्न किया था - भावश्रुतज्ञान है तो जैनशासन है न? भावश्रुत तो आत्मा है न, ऐसा किसी ने प्रश्न किया था। भावश्रुत आत्मा है न, ऐसा प्रश्न किया था, किसी ने किया था।

मुमुक्षु : कपूरचन्दजी ने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कपूरचन्दजी ने किया था। कहाँ गये कपूरचन्दजी? पीछे बैठा

है, उसने किया था। किस अपेक्षा से ? भावश्रुत वीतरागी पर्याय, वीतरागबिम्ब चैतन्यप्रभु में एकाग्र होकर शक्ति में से जो व्यक्तता-प्रगटता शान्ति की, श्रद्धा की, ज्ञान की होती है, उसे आत्मा कहा, वह तो अभेद से आत्मा कहने में आया। बाकी 'है पर्याय, द्रव्य से कथंचित् भिन्न।' गजब बात है। सुनो, सुनो! यह शब्द आया न एक—

वह पर्याय,... कौन सी पर्याय ? जो आत्मा में शुद्धभाव की पर्याय प्रगट हुई, शुद्ध उपयोग की-जो मोक्ष का मार्ग; जो पर्याय, मोक्ष का कारण है। मोक्ष पूर्ण आनन्द-सिद्धपद, उसका वह पर्याय कारण है। वह पर्याय, शुद्धपारिणामिकभाव लक्षणवाला जो शुद्ध द्रव्य-शुद्ध आत्मद्रव्य त्रिकाली... समझ में आया ? धीरे से समझे तो समझ में आये ऐसी बात है, परन्तु यह तो मूल बात है, अलौकिक बात है। जैनदर्शन का मक्खन, मक्खन है यह। लोग मक्खन खाते हैं या नहीं ? तो यहाँ कहते हैं कि भैया! तेरी चीज़ जो शुद्धपारिणामिक स्वभावभाव ऐसा शुद्धात्मद्रव्य, शुद्धात्मवस्तु, उससे यह पर्याय-मोक्ष के मार्ग की पर्याय... सबेरे ६५ बोल जहाँ से कहे थे वह, **शुद्धात्मद्रव्य से कथंचित् भिन्न है**। समझ में आया ? एक अपेक्षा उसमें यह है कि वर्तमान परिणाम जो उत्पन्न होता है, वह वहाँ सत्‌रूप अस्तित्व है, तो द्रव्य के साथ व्यवहार से अभिन्न है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? निश्चय से भिन्न है। लो, आया यह। समझ में आया ?

वह पर्याय स्वयं व्यवहार है। मोक्षमार्ग की जो पर्याय है, वह व्यवहार है तो वह व्यवहार एक अपेक्षा से द्रव्य के साथ अभिन्न है और निश्चय की अपेक्षा से भिन्न है। यह आया, भाई अन्दर से। कहो, समझ में आया ? वस्तु, वस्तु है। वैसे तो परिणाममात्र व्यवहार है—ऐसा सिद्धान्त में आता है 'परिणाममात्र व्यवहार और ध्रुव निश्चय।' समझ में आया ? **व्यवहारोऽभूयत्थो** (समयसार, गाथा ११) ऐसा आया है न! व्यवहार अर्थात् पर्याय अभूतार्थ है, वहाँ तो ऐसा कहा है। पर्याय अर्थात् मोक्ष के मार्ग की पर्याय, वह भी असत्यार्थ है; सत्यार्थ तो प्रभु ध्रुव त्रिकाली द्रव्य, वह सत्यार्थ है। समझ में आया ? सत् आत्मा वह त्रिकाली द्रव्य, वह सत्य है और पर्याय को असत् कहा, वह गौण करके कहा था। समझ में आया ? आश्रय करनेयोग्य नहीं है, इस कारण वहाँ उसे असत्यार्थ कहा। यहाँ जरा लेते हैं कि वह पर्याय है, वर्तमान में तो उस द्रव्य के साथ अभेद है, क्योंकि भावना विनाशीक कहते हैं न, भाई! भावना को विनाशीक कहेंगे। विनाश की अपेक्षा से, कायम नहीं रहती

इस अपेक्षा से भिन्न है। एक समय की पर्याय वहाँ द्रव्य के साथ एकाकार है, इस अपेक्षा से अभिन्न कहने में आया है। आहाहा!

सूक्ष्म विषय है भाई! आचार्य ने पंचम काल के जीवों के लिये यह कहा है। ऐसा कोई कहे–ओहोहो! यह तो चौथे काल की बातें हैं। अरे! चौथा नहीं, आत्मा के लिये है तो आत्मा जहाँ है, उसके लिये कहा है। नन्दकिशोरजी! आहाहा!

यहाँ तो आठ वर्ष की बालिका हो या करोड़पूर्व की आयुष्यवाला आदमी हो, आत्मा तो आत्मा है; वह आत्मा स्त्री नहीं और पुरुष भी नहीं; वह आत्मा राग भी नहीं और कर्म भी नहीं, परन्तु उस त्रिकाली आत्मा में जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की पर्याय उत्पन्न हुई, वह भी कथंचित् भिन्न और कथंचित् अभिन्न है। समझ में आया?

मुमुक्षु : अपेक्षा से कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले तो भिन्न ही कह दिया है, बाद में भी भिन्न कहेंगे। समझ में आया? परन्तु यहाँ जरा पर्याय एक समय रहती है, एक समय, शुद्ध भगवान आत्मा का–आनन्द का अनुभव, एक समयमात्र अनुभव रहता है। समझ में आया? लो! यह फिर आया, भाई! वह पर्याय–बीसवाँ बोल, अलिंगग्रहण (प्रवचनसार गाथा १७२)। लो, कहाँ का कहाँ आया, कौन जाने, यह कोई विचार नहीं किया था।

उस बीसवें बोल में आता है न, कि जो आत्मा प्रत्यभिज्ञान, प्रत्यभिज्ञान अर्थात् कायम रहनेवाला ऐसा आत्मा, वह पर्याय, वह द्रव्य पर्याय को स्पर्शता नहीं, ऐसी पर्याय को आत्मा कहते हैं, वहाँ ऐसा कहा। आत्मा त्रिकाली ज्ञायक चैतन्य ध्रुव जो प्रत्यभिज्ञान का विषय सामान्य द्रव्य जो वस्तु है वह पर्याय को स्पर्श नहीं करती अर्थात् वह द्रव्य जो है, वह पर्याय को आलिंगन नहीं करता। समझ में आया? परन्तु उस पर्याय को ही वहाँ आत्मा कहा है। समझ में आया?

इसी प्रकार एक समय की पर्याय अभिन्न है, वह आत्मा है–ऐसा कहा और वस्तुरूप से कायम नहीं रहती, इस कारण उसको भिन्न कह दिया। समझ में आया? एक समय के अतिरिक्त दूसरे समय वह पर्याय नहीं रहती। गजब बातें भाई! आहाहा! समझ में आया? देखो, यह वीतराग का मार्ग! सर्वज्ञ परमेश्वर ने ऐसा मार्ग देखा है, ऐसा अनुभव

करके मोक्ष लिया है। वे कहते हैं ऐसा भगवान जितने यह मोक्षमार्ग की तीन भावरूप पर्यायें कही, वे सब परमपारिणामिकस्वभाव ऐसा द्रव्यस्वभाव / वस्तुस्वभाव से कथंचित् भिन्न हैं। प्रमाण के विषय से अभिन्न और निश्चय के विषय से भिन्न – ऐसा यहाँ लागू नहीं होता। ऐ चन्दुभाई! क्यों? यहाँ तो शुद्धपारिणामिकलक्षण शुद्ध आत्मद्रव्य से कथंचित् भिन्न – ऐसा लिया है। उस द्रव्य से कथंचित् भिन्न और उस द्रव्य से कथंचित् अभिन्न, भाई! समझ में आया? प्रमाण की अपेक्षा से अभिन्न और निश्चय की अपेक्षा से भिन्न, वह यहाँ लागू नहीं होता। लागू नहीं होता (को) क्या कहते हैं? घटित नहीं होता। तुम्हारी भाषा है। ऐसा यहाँ घटित नहीं होता। क्योंकि यहाँ वह पर्याय, शुद्धपारिणामिकभाव लक्षणवाला ऐसा जो शुद्धद्रव्य वस्तु ध्रुव, जो सम्यग्दर्शन का ध्येय, जो सम्यग्दर्शन का विषय, जो सम्यग्दर्शन को लक्ष्य करनेयोग्य चीज़ है, वह शुद्धात्मा भगवान आत्मा जो नित्य ध्रुव है, उससे यह जो मोक्ष के मार्ग की पर्याय, किसी अपेक्षा से भिन्न है, कायम नहीं रहती (इस अपेक्षा से भिन्न है)। आचार्य स्वयं कहेंगे, भाई! भावना विनाशीक है, इसलिए वह भावना कायम नहीं रहती; इसलिए कथंचित् भिन्न है। समझ में आया? आहाहा!

कथंचित् भिन्न है। किसलिए?... देखो! किसलिए भिन्न है कि **भावनारूप होने से**। वह त्रिकाली, भावरूप होने से यह चीज़ नहीं है। वह भावना... देखो! यहाँ भावना का अर्थ विकल्प और चिन्तवन नहीं है। यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव को यहाँ भावना कहने में आया है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु जो त्रिकाल है, उस ओर की एकाग्रता। एक + अग्र – आत्मा अग्ररूप से लक्ष्य में लेकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, उसे भावना कहते हैं। यह फिर बारह भावना और उस भावना की बात नहीं है तथा यह भावना अर्थात् विकल्प और चिन्तवन है, वह भावना नहीं। यहाँ तो त्रिकाली ज्ञायकभाव में एकाग्रता एक समय की, उसको यहाँ भावना कहते हैं। समझ में आया? एक समय की पर्याय दो समय नहीं रहती। मूलचन्दभाई! समझ में आया? यह बहुत सूक्ष्म आया है तो यह निकला। कहीं माना होगा लोगों ने, ऐ सेठ!

कहते हैं, वह भावनारूप होने से (भिन्न है)। क्यों भिन्न है? कि भावनारूप होने से भिन्न है। वह त्रिकालीभावरूप नहीं, इसलिए (भिन्न है)। समझ में आया? **शुद्धपारिणामिक (भाव) तो भावनारूप नहीं है**। देखो! जो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव है, वह तो भावनारूप

नहीं है। यह पर्यायरूप नहीं होता एक समय की भावना है। वह त्रिकाली भाव, भावना नहीं है। समझ में आया ? अरे ! भारी-सूक्ष्म, भाई ! **शुद्धपारिणामिक (भाव) तो भावनारूप नहीं है।** भावनारूप नहीं है। यहाँ तो भावना है मोक्षमार्ग, वीतरागी पर्याय है। वीतरागी त्रिकाली बिम्ब नहीं। त्रिकाल वीतरागी बिम्ब जो प्रभु आत्मद्रव्य, वह नहीं है। यह तो भावनारूप नयी पर्याय उत्पन्न होती है। ऊपर शक्ति में से व्यक्ति कहा था न ? भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति। समझ में आया ?

तो कहते हैं कि **यदि (वह पर्याय) एकान्तरूप से शुद्ध-पारिणामिक से अभिन्न हो,...** देखो ! एकान्तरूप से अभिन्न हो। कथंचित् भिन्न, ऐसा कहा कथंचित् अभिन्न ऐसा कहा, ऐसा आया न पहले ? कथंचित् भिन्न, इसका अर्थ कथंचित् अभिन्न। किसके साथ ? त्रिकाली द्रव्य के साथ। भगवान आत्मा, अपना निजानन्दस्वरूप की दृष्टि करने से जो मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, वह आनन्द का अनुभव, शुद्धोपयोग, वह पर्याय त्रिकाली द्रव्य से कथंचित् भिन्न है। क्यों ? कि वह पर्याय भावनारूप है। वह वस्तु त्रिकाली भावनारूप नहीं है। समझ में आया ? ऐसा, **यदि (वह पर्याय) एकान्तरूप से शुद्ध-पारिणामिक से अभिन्न हो,...** एकान्त से-एकदम वह पर्याय और द्रव्य अभेद हो तो वह पर्याय कायम रहनी चाहिए अथवा पर्याय का नाश होने से द्रव्य का नाश हो जायेगा। गजब बात ! समझ में आया ?

वह पर्याय... मोक्षमार्ग की पर्याय, क्षायिकभाव की पर्याय। देखो ! उसमें वह 'भी' आया न ? केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिकभाव की पर्याय, क्षायिक समकित की पर्याय। यहाँ मोक्षमार्ग अर्थात् केवलज्ञान नहीं लेना। क्षायिक समकित, क्षायिक चारित्ररूपी पर्याय, वह भावनारूप है। त्रिकाली भगवान आत्मा में ध्येय करके ध्यान में जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह भावना है; त्रिकाली भाव नहीं। यदि त्रिकाली भाव से-शुद्धपारिणामिकभाव से वह पर्याय एक ही हो, एकमेक हो, अत्यन्त अभिन्न हो, एकान्त से अभिन्न हो तो **मोक्ष का प्रसंग आने पर...** जब केवलज्ञान और मुक्ति होगी तो यह भावनारूपी पर्याय नहीं रहेगी। समझ में आया ? मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय और मोक्ष की पर्याय का उत्पाद, जो भावना और त्रिकालीभाव अत्यन्त अभिन्न हो तो मोक्ष होने से पर्याय का नाश होगा और पर्याय तथा

द्रव्य सर्वथा अभिन्न हो तो पर्याय का नाश होने से द्रव्य का भी नाश हो जायेगा। तो द्रव्य का तो नाश कभी होता नहीं। समझ में आया?

मोक्ष का प्रसंग आने पर... प्रसंग आने पर उसे मोक्ष होगा ही – ऐसा कहते हैं। जिसमें ऐसी भावना... भगवान आत्माा वस्तु है, उसे ध्येय बनाकर जो पर्याय धर्म की, शान्ति की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति की चारित्र की जो भावना उत्पन्न हुई है, वह जब पूर्ण मोक्ष-केवलज्ञान होगा, तब वह भावना नहीं रहेगी तो वह पर्याय नहीं रहेगी, वह पर्याय नहीं रहेगी। यदि वह पर्याय और द्रव्य सर्वथा अभिन्न हो तो पर्याय का नाश होने से द्रव्य का भी नाश हो जायेगा। अभिन्न हो तो यह नाश हो तो उसका भी नाश हो जायेगा। **परन्तु ऐसा तो होता नहीं...** न्याय समझ में आता है? अरे! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : पर्याय अभिन्न हो तो पर्याय का नाश होने पर द्रव्य का नाश हो जाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का नाश हो जाये। पण्डितजी! है उसमें?

तो कहते हैं यदि शुद्ध एकान्तरूप से भगवान के साथ-द्रव्य के साथ वह मोक्ष के मार्ग की पर्याय-भावना, उस त्रिकाली भाव के साथ वह भावना सर्वथा एक हो तो मोक्ष का प्रसंग आने पर वह पर्याय नहीं रहेगी। समझ में आया? मोक्ष की पर्याय जब होती है, तब यह भावनारूप मोक्ष के मार्ग की पर्याय नहीं रहती है, नाश होती है।

मोक्षकारणभूत (पर्याय)... देखो! मोक्ष होने पर मोक्ष के कारणरूप दशा का तो व्यय होता है, नाश होता है। **शुद्धपारिणामिकभाव भी विनाश को प्राप्त हो,...** लो, आहाहा! यह क्रीड़ा-परिणाम और परिणामी दो के बीच की बातें करते हैं। समझ में आया? राग को छूता ही नहीं, निमित्त को छूता ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? अपनी वीतरागी धर्म पर्याय जो द्रव्य का ध्येय बनाकर... आगे कहेंगे। विषय बनाकर, विषय अर्थात् ध्येय, यह द्रव्य वस्तु। समझ में आया? अपने आया था वहाँ, नहीं अष्टपाहुड़ में? मतिरूपी धनुष, श्रुतरूपी डोरी, सम्यग्दर्शनज्ञानरूपी बाण लगाया ध्रुव पर, लक्ष्य पर। समझ में आया? भावमतिज्ञानरूपी धनुष, भावश्रुतज्ञानरूपी डोरी और सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्ररूपी बाण तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मति-श्रुत आदि सब उसमें आ गया। बाण मारा ध्रुव के ऊपर, त्रिकाली ध्रुव वह लक्ष्य करने योग्य है। आहाहा! समझ में आया? यह धर्म

करनेवाले को लक्ष्य और ध्येय ध्रुव ऊपर ध्यान लगाने का है। इसके अतिरिक्त धर्म कभी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं जो यह मोक्षमार्ग की पर्याय-भावना, मोक्ष का प्रसंग होने पर.. यहाँ तो निश्चय से उसको मोक्ष होगा ही ऐसा कहा है। मोक्ष (मार्ग) की पर्याय हुई है तो मोक्ष तो होगा ही। समझ में आया? तो जब मोक्ष होगा-सिद्धपर्याय, केवलज्ञान की पर्याय (होगी) तो इस पर्याय का (भावनारूप पर्याय का) तो विनाश होता है। मोक्षमार्ग की जो पर्याय है, उसका तो अभाव होता है, नाश होता है। यदि त्रिकाली द्रव्य के साथ इस पर्याय को अत्यन्त एक कहो, एक कहो, अभिन्न कहो तो पर्याय का नाश होने से उसके साथ जो अभिन्न द्रव्य था, उसका भी नाश होगा। समझ में आया? गजब बात, भाई! भाषा तो सादी आती है, उसमें कोई भाव भले ऊँचे हों, भाव तो.. आहाहा! भाषा आती है, हों! ऐसा। आहाहा!

कहते हैं मोक्ष हो जाने पर इस भावनारूप **मोक्षकारणभूत (पर्याय)...** मोक्षकारणभूत पर्याय। कोई कहते हैं न सिद्ध को आठ गुण हैं। वे तो गुण नहीं, वे गुण नहीं; वह तो पर्याय है। सिद्ध को जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन वह गुण नहीं, वह तो पर्याय है, अवस्था है। जब ऐसी अवस्था प्रगट होती है, तब मोक्षमार्ग की पर्याय का नाश होता है, तो मोक्षमार्ग की पर्याय-अवस्था और वस्तु त्रिकाली, यह सर्वथा एक हो, सर्वथा एक हो तो पर्याय का नाश होने से वस्तु भी नाश हो जायेगी। इसलिए सर्वथा एकान्त से अभिन्न है नहीं। कथंचित् भिन्न है। कथंचित् अभिन्न है - ऐसा इसका अर्थ हुआ न? समझ में आया? आहाहा!

परन्तु ऐसा तो होता नहीं है... भगवान आत्मा ध्रुव, ध्रुव सत् का सत्व, प्रभु आत्मा सत्, उसका भाव परमस्वभावभाव सत्व, ऐसा का ऐसा अनादि से रहता है। सिद्ध में भी ऐसा है, सिद्ध की पर्याय प्रगट हुई तो सत्व में कोई कमी आ गयी - ऐसा है नहीं और यहाँ नरक की योनि में-नरक में रहा, (निगोद में) अक्षर के अनन्तवें भाग ज्ञान के विकास का अंश बहुत थोड़ा रहा तो भी ध्रुव तो ध्रुव ही है, उसमें कोई कमी नहीं होती और सिद्ध हो तो कोई वृद्धि नहीं होती। समझ में आया? गजब बात भाई!

यह ध्रुव का समुद्र, ध्रुव का सागर तो ऐसा का ऐसा रहता है। यह बाढ़... क्या कहते हैं तुम्हारे? हमारे (यहाँ) भरती-ओट कहते हैं। बाढ़ आती है ओट पानी आता है। फिर

ऐसी पर्याय ध्रुव में नहीं है। बाढ़ आओ केवलज्ञान का कि हट जाओ अनन्तवें भाग-अक्षर के अनन्तवें भाग तो वस्तु में कुछ बढ़-घट नहीं होती। समझ में आया? ऐसा जो द्रव्य है, वह यदि अभिन्न एकपना पर्याय और द्रव्य को एकपना हो तो मोक्ष का प्रसङ्ग होने पर पर्याय का नाश होता है तो वस्तु का भी नाश हो जाये - एक, एक यदि मानो तो। **परन्तु ऐसा तो होता नहीं है...** आहाहा! कहाँ लिया? शरीर नाशवान, राग नाशवान, यह पर्याय नाशवान, मोक्ष का मार्ग नाशवान। ऐ! आहाहा! समझ में आया?

एक गाय पड़ी थी न आज। जंगल गये, (तब देखी थी) चौबीस घण्टे से पड़ी थी। दु:खी, कल गये थे सबेरे नौ बजे, अभी गये साढ़े नौ बजे तो जीवित थी, सांस चलता था। समाप्त होने की तैयारी थी, चौबीस घण्टे से ऐसी की ऐसी पड़ी थी।

क्या रोग का दु:ख, दु:ख किसको है? एकत्व का दु:ख है, शरीर के रोग का दु:ख नहीं। राग की एकता के साथ जो मिथ्यात्वभाव उत्पन्न होता है, उस मिथ्यात्व में आकुलता, वह दु:ख है। वह दु:ख की पर्याय, द्रव्य में नहीं है। आहा! और धर्म की पर्याय प्रगट हुई, वह भी द्रव्य में नहीं है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

परन्तु ऐसा तो होता नहीं है (क्योंकि शुद्धपारिणामिकभाव तो अविनाशी है)। भगवान आत्मा का द्रव्यस्वरूप तो त्रिकाल अविनाशी है, त्रिकाल अविनाशी है। समझ में आया?

इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ.... लो! इस कारण से ऐसा सिद्ध हुआ कि... तुम्हारे पास नहीं, है न पन्ना? तुम्हें पन्ना दिया नहीं, वहाँ है। समझ में आया? ओहो! अमृत का सागर उछला है। आहाहा! ऐसा कहते हैं देखो! कितनी बात में ध्यान रखना चाहिए? कहते हैं कि **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ - शुद्धपारिणामिकभावविषयक (शुद्धपारिणामिकभाव का अवलम्बन लेनेवाली)...** भाषा देखो! फिर भले अवलम्बन लिया, उसमें विषय करनेवाली भावना है, वह तो शुद्धपारिणामिक को विषय करनेवाली है, ध्येय करनेवाली है। बस! फिर अवलम्बन भी उसे कहा जाता है। वास्तव में तो पर्याय, द्रव्य का आश्रय करती है - ऐसा नहीं है। निश्चय से तो परिणाम परिणाम के अवलम्बन से है, द्रव्य के अवलम्बन से नहीं। अरे! गजब बात भाई! सत् है न, वह सत् है न? पर्याय सत् है न?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय सत् है न ? अरे ! मोक्ष की पर्याय भी सत् है न ? है, उससे द्रव्य का अवलम्बन कहना, वह भी अपेक्षित ज्ञान करना है। उसमें-निरपेक्ष में तो वह पर्याय, पर्याय से है; द्रव्य से भी है नहीं।

वास्तव में तो पर्याय, द्रव्य का अवलम्बन लेती नहीं है-ऐसा कहते हैं। यह तो कहा न ? आश्रय कहा-वहाँ कहा, वहाँ आश्रय कहा, यहाँ विषय कहा, उसका अर्थ यह कि पर्याय इस ओर झुकती है न, तो आश्रय लिया, आलम्बन लिया ऐसा कहने में आता है। कौन सी पर्याय ? यह प्रश्न बाद में, देखो ! यह वर्तमान पर्याय है, यह पर्याय तो अन्दर में झुकती नहीं। समझ में आया ? क्योंकि इस पर्याय का लक्ष्य तो पर के ऊपर है तो पर्याय झुकती है द्रव्य में, इस अपेक्षा से पर्याय को आश्रय-अवलम्बन द्रव्य का है - ऐसा कहने में आया है। बहुत सूक्ष्म !

भूदत्थमस्सिदो खलु ग्यारहवीं गाथा (में) ऐसा शब्द है न ? भूतार्थ के आश्रय से। वह तो उत्पन्न होता है अव्यक्तरूप से, इस अपेक्षा से कहा परन्तु है अपने से उत्पन्न हुई। आलम्बन-फालम्बन किसी का है नहीं। समझ में आया ? ध्रुव त्रिकाली सत् है, वैसे एक समय की पर्याय भी सत् है। उस सत् का विषय क्या ? ध्रुव है - ऐसा कहते हैं। आहा ! वह मेंढ़क भी समकित प्राप्त करता है तो ध्रुव के लक्ष्य से प्राप्त करता है। लाख बात की बात अनन्त करे परन्तु ध्रुव भगवान आत्मा का अन्दर में पर्याय को भेंट करने से... पर्याय भेंट क्यों ? पर्याय से काम लेना है न ? इसलिए बात तो पर्याय से आती है परन्तु यह पर्याय उसका आश्रय करती है, यह भी व्यवहार से आया। वह प्रगट होती है उसके आश्रय से-ऐसा कहने में आता है।

शुद्धपारिणामिकभावविषयक (शुद्धपारिणामिकभाव का अवलम्बन लेनेवाली).... अर्थात् विषय करनेवाली। **जो भावना,...** क्या कहा ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो धर्म पर्याय है, उसका विषय ध्रुव है, वह भावना ध्रुव को विषय करती है। समझ में आया ? गजब बात भाई ! ऐई, शोभालालजी ! यह सुना ही नहीं अभी तक कुछ, ऐसे का ऐसे हो गया सेठ, वहाँ फिर धर्म में भी बड़ा कहलाये।

श्रोता : अब तो सुनने को मिल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो सच्ची है, योग्यता से मिलती है। निरालम्बी प्रभु को पर्याय का भी आलम्बन नहीं है और पर्याय को द्रव्य का आलम्बन कहना... अंश है न और लक्ष्य जाता है, इस अपेक्षा से आलम्बन कहने में आया है। विषय करना है न ? पाठ है न ? शुद्धपारिणामिकभाव को विषय बनानेवाली, शुद्धपारिणामिक त्रिकाल भाव को ध्येय बनानेवाली। समझ में आया ? आहाहा ! मार्ग तो देखो ! वीतराग सर्वज्ञ ऐसी बात (करते हैं)। वीतराग सर्वज्ञ के अतिरिक्त अथवा दिगम्बर धर्म के अतिरिक्त यह बात अन्यत्र कहीं नहीं होती। समझ में आया ? वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

पर्याय को पर्याय आलम्बन नहीं है। पर्याय का पर्याय विषय नहीं है। क्या ? समझ में आया ? सम्यग्दर्शन की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय, यह पर्याय, पर्याय है। उसका विषय पर्याय नहीं तो उस पर्याय का विषय राग और निमित्त तो कहीं रह गये ? आहाहा ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा जो परम स्वभावभाव / द्रव्यभाव, उसको विषय बनानेवाली वर्तमान पर्याय–मोक्षमार्ग की, धर्म की पर्याय, त्रिकाली धर्मी को विषय करती है, उसे ध्येय में लेती है। वह धर्म की पर्याय अपना भी आश्रय करके पर्याय का आलम्बन लेती है – ऐसा नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? यह शास्त्र से ज्ञान हुआ न ? उस पर्याय को भी धर्म की पर्याय का ध्येय और आलम्बन नहीं है परन्तु वह पर्याय प्रगट हुई – वह धर्म की पर्याय प्रगट हुई वह पर्याय, पर्याय का विषय नहीं है। मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय, पर्याय का विषय नहीं है। समझ में आया ? मार्ग भाई ! गजब बात भाई !

पर्याय, जो मोक्ष कहो, मोक्षमार्ग कहो, सब पर्याय है–अवस्था है – सक्रिय परिणमन है। समझ में आया ? धर्म, वह पर्याय है और धर्म का पूर्ण फल केवलज्ञान, वह भी एक पर्याय है, वह पर्याय नाशवान है। आहाहा ! इसलिए वह पर्याय, द्रव्य से कथंचित् भिन्न है। भिन्न न हो तो पर्याय के नाश से वस्तु का भी नाश हो जाये... ऐसा शुद्धपारिणामिक को जिसने विषय बनाया, ऐसी जो भावना–सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र... समझ में आया ? सम्यग्दर्शन–ज्ञान और चारित्र ने विषय बनाया ध्रुव को, ऐसी भावना और... क्या कहते हैं ? अब ऊपर ली थी वह बात ली, 'उसरूप जो उपशमादि तीन भाव...' देखो, यह भावना है।

यह उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तीन भावरूप है। समझ में आया? देखो, यहाँ व्यवहार का निषेध करने को यह लिया है, भाई! व्यवहाररत्नत्रय है तो निश्चयरत्नत्रय धर्म प्रगट होता है-ऐसा नहीं है। निश्चयरत्नत्रय प्रगट होने में ध्येय ध्रुव है। देखो! यह लोग चिल्लाते हैं - एकान्त कहते हैं। अरे, सुन तो सही! यह क्या कहते हैं यहाँ? ऐ..ई.. लालचन्दजी! कहते हैं न ऐसा? व्यवहार से कुछ लाभ नहीं आत्मा को। व्यवहार से कुछ लाभ नहीं? लाभ है बन्ध का। समझ में आया?

कहते हैं वह धर्म पर्याय.... आहाहा! वह कैसी धर्म पर्याय? वीतरागी शोभित पर्याय, वह भावनारूप होने से तीन भावरूप है, क्योंकि तीन भाव पर्यायरूप है। उदय भी पर्याय, परन्तु उदय का तो यहाँ निषेध करेंगे, देखो! **समस्त रागादि से रहित होने के कारण...** यह उदय का निषेध कर दिया। चार-पहले पर्याय को बताया था कि पर्याय चार भावरूप है और द्रव्य पारिणामिकभावरूप है। पाँच भाव समाहित कर दिये थे। वस्तु जो त्रिकाली है, वह पारिणामिकभाव त्रिकालरूप ध्रुवभाव है—पारिणामिकभाव है और पर्याय, वह चार भाव पर्याय है, तो उसमें जो तीन भाव की पर्याय है, वह मोक्षमार्ग की पर्याय है। वह उदय भाव की पर्याय है परन्तु वह उदय - समस्त रागादि से रहित होने के कारण, सम्यग्दर्शन की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय वह तो वीतरागी पर्याय है। वह समस्त रागादि से रहित, पंच महाव्रत के विकल्प और नवतत्त्व की श्रद्धा के विकल्प -सबसे रहित वह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा!

मुमुक्षु : समस्त रागादि से रहित तो बारहवें में...

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! यहाँ चौथे गुणस्थान की बात है। मोक्ष का मार्ग रागादि से रहित ही है। समस्त रागादि से रहित अर्थात्? परन्तु वह रागादि से रहित ही है। सम्यग्दृष्टि व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार का आश्रय / विकल्प, वह राग है। दया, दान, व्रतादि का विकल्प है, उससे दृष्टिवन्त ध्येय बनाना ध्रुव को तो राग से तो वह मुक्त ही है, वह बताते हैं, देखो! उपशमभाव में कहते हैं-ये तीन भाव कहे हैं या नहीं? उपशम आदि तीन भाव कहे हैं या नहीं? या उसमें क्षायिकभाव, क्षयोपशम (भाव) दो ही लिये हैं? उपशमभाव, वह भी पर्याय है, वह उदय अर्थात् समस्त राग से रहित है। समझ में आया? वे तीन भाव

ऊपर कहे थे, तत्पश्चात् वह भावना जिसे कहा, जिसके सबेरे बहुत बोल लिये थे, वह सब पर्याय है। हमारे पण्डितजी कहते हैं – पर्याय का इतना अधिक माहात्म्य? माहात्म्य तो द्रव्य का है, परन्तु पर्याय का इतना माहात्म्य तो द्रव्य का कितना माहात्म्य? ऐसा लेना है। ऐ..ई.. शशीभाई!

सबेरे पर्याय के इतने गीत गाये, इतने गीत? भाई! वह तो पुत्र है, प्रजा है, द्रव्य की पर्याय है, प्रजा है। समझ में आया? इसकी पर्याय। प्रमाण की अपेक्षा से पर्याय इसकी (द्रव्य की) कहलाती है। समझ में आया? और एक समय की पर्याय अभिन्न है, इस अपेक्षा से आत्मा की पर्याय कहने में आती है। समझ में आया? सबेरे बहुत आया था। शुद्धात्मद्रव्य कहा, लो! इसको (पर्याय को) शुद्धात्मद्रव्य कहते हैं। यहाँ जो शुद्धात्मद्रव्य कहते हैं, ऐसा शुद्धात्मद्रव्य कह दिया। वह तो अभेद की अपेक्षा से–पर्याय इस ओर झुक गयी है, राग से हटकर स्वभाव की ओर झुक गयी है तो शुद्ध द्रव्य के साथ अभेद करके शुद्ध द्रव्य ही है (–ऐसा) उसे कह दिया है। समझ में आया? कहते हैं कि उपशम आदि तीन भाव, उपशम आदि में अकेला उपशमभाव नहीं लेना और अकेला क्षायिकभाव लेना? **समस्त रागादि से रहित...** पण्डितजी! तीनों भाव, राग से रहित कहे हैं, क्योंकि उदयभाव पर्याय है तो उसका तो यहाँ निषेध करके स्वभाव प्रगट हुआ है – ऐसा बताते हैं। निषेध का अर्थ (यह है कि) उससे लक्ष्य छोड़ दिया, वह निषेध है। द्रव्य / वस्तु को ध्येय बनाया तो पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय यहाँ समस्त राग से रहित, वह पर्याय है। समझ में आया?

देखो न! यह पृष्ठ तो सबके हाथ में दिये हैं। पृष्ठ में क्या लिखा है देखो? क्या नहीं लिखा है – उपशमआदि, वह भावना? जो निर्मल पर्याय है, वह भावना विनाशीक है। शाश्वत् द्रव्य के साथ रहती नहीं, इस कारण से भावना को तीन भावरूप कहा। उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव – तीन भाव कहा। वे तीन भाव समस्त रागादि से रहित हैं। अब पाठ है या नहीं उसमें? स्पष्ट है? विकल्प-फिकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, इस राग से उपशमभाव, क्षायोपशमिकभाव, क्षायिकभावरहित है। है न? पृष्ठ दिया है न तुम्हारे हाथ में? रामजीभाई ने उस दिन पन्द्रह सौ पृष्ठ छपाये हैं। कोई कहता है पाँच सौ छपाओ, ये कहते हैं पन्द्रह सौ छपाओ। भाई! पृष्ठ वह पृष्ठ। पृष्ठ फिरे, और सोना झरे ऐसा नहीं कहते तुम्हारे? उगाही भरी हो न अन्दर पृष्ठ में? उगाही समझते हो? लेन–

देन। ऐसा खुले तो ओहो! अमुक से इतना लेना है। इस प्रकार पन्ना फिरे और सोना झरे, वह पन्ना फिरे और सोना झरे, उसमें धूल कुछ नहीं मिलता।

यह ज्ञान की पर्याय फिरे और अन्दर आनन्द का झरना झरे - ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! चिद्‌विलास में आता है न, कि जैसे-जैसे आचार्य गुण के भेद करके समझाते हैं, वैसे-वैसे शिष्य को अधिक आनन्द आता है। यह चिद्‌विलास में है।

मुमुक्षु : कारणकार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कारणकार्य में डाला है। पृष्ठ सब कहीं याद रहते हैं? चिद्‌विलास में है। आचार्य जैसे-जैसे गुण के भेद करते-करते-करते बताते हैं, वैसे-वैसे शिष्य को आनन्द आता है - ऐसा कहते हैं। लो, भेद बताते हैं, और आनन्द आता है, क्योंकि जिसकी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, उसे तो विकल्प के काल में भी शुद्धि ही होती है। समझ में आया? चाहे तो अशुभ विकल्प का काल हो, तो भी स्वभावसन्मुख के झुकाव की वह दशा है तो वहाँ निर्जरा ही होती है, अशुद्धता टलती है और शुभभाव हो तो अधिक स्वभावसन्मुख झुकाव है, तो अधिक शुद्धि बढ़ती है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि यहाँ तो दृष्टिवन्त शिष्य लिया है न? भाई! दृष्टिवन्त शिष्य, जहाँ द्रव्य पर दृष्टि है, उस शिष्य को जैसे-जैसे यह सत्य सुनाते हैं तो वह श्रद्धा-ज्ञान उस समय शून्यरूप नहीं रहा; भले विकल्प आया, सुनने में विकल्प आया और विकल्प से सुनते हैं, परन्तु उस समय श्रद्धा-ज्ञान, श्रद्धा-ज्ञान का कार्य करते हैं या श्रद्धा-ज्ञान का कार्य नहीं करते हैं? क्या कहा यह? समझ में आया?

धर्मी जीव अपने द्रव्यस्वभाव को ध्येय बनाकर जो धर्म-श्रद्धा-ज्ञान सम्यग्दर्शन-ज्ञान, तीन भावरूप था वह प्रगट हुआ। अब उसका विकल्प में लक्ष्य गया। समझ में आया? तो वह तो चारित्र के दोष की अपेक्षा से पर में लक्ष्य गया परन्तु उस समय श्रद्धा-ज्ञान कोई कार्य करते हैं या नहीं? या श्रद्धा-ज्ञान कार्य किये बिना शुष्क पड़े हैं? समझ में आया? सबेरे दो मिनिट आ गया था, ख्याल नहीं था परन्तु देखा तो ओहो! यह तो समय हो गया।

क्या कहा उसमें? कि यहाँ कहा कि उपशमभाव, क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव, यह मोक्षमार्ग की पर्याय का भाव कहा, वह भाव **समस्त रागादि से रहित होने के कारण...**

क्योंकि धर्मी को ध्रुव पर दृष्टि होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और कितने ही शुद्ध स्थिरता हुई है। अब वह राग से रहित है तो ऐसे श्रद्धा-ज्ञान में ध्रुव का जो कार्य है, वह श्रद्धा-ज्ञान में होता है। स्वरूप की स्थिरता का भी कार्य होता है। समझ में आया? चारित्रगुण जितना निर्मल, इतना कार्य तो उस समय भी करता है, चाहे तो विकल्प हो शुभ का या अशुभ का हो, परन्तु जो निर्मल पर्याय प्रगट श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का अंश हुआ, वह कहीं कूटस्थ पड़ा है या कोई परिणमन / कार्य करता है? समझ में आया? अब थोड़ा सूक्ष्म आया। समझ में आया या नहीं कुछ?

आत्मा, भगवान सागर सरोवर, सागर बड़ा समुद्र स्वयंभूरमण समुद्र है आनन्द का- स्वयंभूरमण समुद्र। दृष्टि की उस पर जहाँ थाप पड़ी, उस पर्याय में श्रद्धा में सारा आनन्दस्वरूप ऐसा आया तो साथ में श्रद्धा हुई, ज्ञान हुआ, आनन्द की पर्याय हुई, आनन्दगुण की परिणति और चारित्रगुण की परिणति शुद्ध हुई तो विकल्प के काल में वह श्रद्धा-ज्ञान आदि चारित्र की पर्याय निर्मल हुई। वह कुछ कार्य करती है या नहीं? या राग ही अकेला काम करता है? आहाहा! समझ में आया? समझ में आये ऐसी बात है, हों! न समझ में आये ऐसी बात नहीं है। ऐसा नहीं समझना कि नहीं... नहीं... हमारे से नहीं समझ में आयेगी।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण स्पष्ट आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट ही है, वस्तु ही ऐसी है।

देखो! यहाँ क्या कहा? कि तीन भाव है, प्रगट हुआ सम्यग्दर्शन-ज्ञान धर्म-पर्याय प्रगट हुई तो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र-आनन्दादि का कार्य होता है या नहीं (होता है) हैं? (होता है) तो उसक कार्य में रागरहित है। विकल्प आने पर भी वह वस्तु तो रागरहित कार्य करती है। भाई! क्या कहा? फिर से, देखो! जो द्रव्यवस्तु ध्रुव को ध्येय बनाकर जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की पर्याय, आनन्द की पर्यायरूप कार्य हुआ तो वह कार्य समय-समय होता है या नहीं? (होता है) विकल्प के काल में विकल्परहित वह कार्य होता है। आहाहा! इसलिये यह अन्दर ले लिया है। समझ में आया? हो राग, राग राग के घर में रहा, आत्मा में राग कहाँ घुस गया है? (कोई ऐसा कहे-निर्विकल्प का अर्थ पारिणामिकभाव) यहाँ तो निर्विकल्प इसी बात के लिये तो यह लिया है।

ए भगवान! सुन तो सही प्रभु! यहाँ तो समस्त रागादिरहित का अर्थ यह है कि

निर्मल पर्याय में राग का अंश नहीं तो उस समय जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र आनन्द स्वच्छता कर्ता-कर्म आदि निर्मल पर्याय जो कार्यरूप परिणति है, उस विकल्प के काल में परिणमता है या नहीं ? या विकल्प के काल में नहीं परिणमता ? और यहाँ तो कहते हैं विकल्प से रहित ऐसी दशा श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र की जो अनन्त गुण की हुई, वह राग से रहित अपना कार्य करती है। समझ में आया ? यह तो प्रगट पर्याय की बात चलती है न ? ध्रुव तो ध्रुव है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-धर्मपर्याय प्रगट हुई, वह समय-समय कोई कार्य किये बिना रहती है ? एक समय की भावना है, यह तो कह दिया। दूसरे समय में ऐसी क्रिया, तीसरे समय में ऐसी क्रिया... क्रिया अर्थात् परिणमन, ऐसा परिणमन तो निरन्तर चालू है। आहाहा ! समझ में आया ? थोड़ा बहुत न समझ में आये तो रात्रि को पूछना। रात्रि को समय रखा है या नहीं ?

मुमुक्षु : अभी फिर से बता दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमारे धन्नालालजी निकालते हैं, सब (प्रश्न) रात्रि को। यह प्रश्न बिल्कुल स्वयं प्रश्न निकालते थे। समझ में आया ? क्या कहा ? तीन बात।

एक तो ध्रुव त्रिकाली है, उसमें पर्याय कथंचित् अभिन्न और कथंचित् भिन्न। एक समय की पर्याय बदल जाती है, इसलिए भिन्न है – ऐसा कहा। दूसरी बात, पर्याय जो प्रगट हुई धर्म की, तीन भावरूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागपर्यायरूप, वह राग से रहित है। वह सम्यग्दृष्टि ध्रुव का ध्येय करनेवाला, उसका राग विषय रहा नहीं तो राग विषय रहा नहीं तो राग का ज्ञान अपने में से अपने कारण से ज्ञान अपने से होता है। समझ में आया ? उस ज्ञान की, श्रद्धा, आनन्द की पर्याय कार्य करती है। समय-समय में ज्ञानगुण की पर्याय जानना हुई, वह कार्य करती है या नहीं ? तो यहाँ कहते हैं कि रागरहित कार्य करती है वह। ऐ नवरंगभाई ! आहाहा ! ऐसा कार्य करती है 'समस्त रागादि से रहित है' सुनो तो सही ! सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वरूपाचरण जहाँ प्रगट हुआ, वह तो बिल्कुल राग से रहित ही अपने स्वभावसन्मुख की परिणति है, वह परपरिणति से तो रहित ही है। चौथे (गुणस्थान) से ऐसा है, सम्यग्दृष्टि को ऐसा है। आहाहा !

चारित्र के दोष की अपेक्षा से कहो तो उसकी पर्याय में राग है – ऐसा कहने में आता है, परन्तु जहाँ दृष्टि के विषय में तो उसकी पर्याय में राग ही नहीं – ऐसा कहने में आता

है क्योंकि दृष्टि का विषय भगवान परमशुद्ध परमात्मा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : श्रद्धा में राग-द्वेष निकल गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रद्धा-ज्ञान में, परिणति में से राग-द्वेष निकल गया, दृष्टि की अपेक्षा से वह तो। क्योंकि सम्यग्दृष्टि की परिणति द्रव्य का पारिणामिक त्रिकाली भाव के आश्रय से हुई है न? वह तो शुद्ध का परिणमन हुआ। वस्तु शुद्ध है, पवित्र है - ऐसा शुद्ध परिणमन हुआ तो शुद्ध परिणमन, अशुद्ध परिणमन से रहित है - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : उसी काल में रहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी काल में। समझ में आया? आहा! उसी काल में रागरहित हुआ ऐसा पण्डितजी कहते हैं। पण्डितजी पुष्टि करते हैं। उसी समय निर्मल पर्याय कार्य करती है, उस समय रागरहित है, ऐसा। दूसरे समय में नहीं उसी समय रागरहित है। समझ में आया? चारभाव कहा न पर्यायरूप, वे तीन भाव जो मोक्षमार्ग की पर्याय हुई, वह उदयभाव की पर्यायरहित है - ऐसा कहना है। आहाहा! समझ में आया?

कारण... शुद्ध-उपादानकारणभूत होने से मोक्षकारण (मोक्ष के कारण) हैं... भाई! यहाँ वापस 'भूत' आया। (पर्याय आयी)। है पर्याय, परन्तु यहाँ वापस कारणभूत लिया, उस पहले में अन्तर था, पहले आया था न? पहले 'शुद्धउपादानभूत' कहा था। पहले पहला साधारण आया था। पहले शुद्धउपादानरूप आया था। पैराग्राफ की पाँचवीं लाईन—'शुद्धउपादानरूप' वह पर्याय थी। समझ में आया? और पश्चात् 'शुद्धउपादानभूत' आया न? यह दूसरे पैराग्राफ की पहली लाईन 'सर्वविशुद्धपारिणामिक-परमभावलक्षण शुद्धउपादानभूत' यह द्रव्य है। पहले उपादान जो पाँचवीं लाईन में आया था, वह पर्याय है और यह सर्वविशुद्ध का जो है, वह द्रव्य है और यहाँ जो शुद्धउपादानभूत कहा, तथापि वह पर्याय है। समझ में आया? **शुद्ध-उपादानकारणभूत...** ऐसा लिया न? 'शुद्धउपादानभूत' ऐसा नहीं लिया है, ऐसी अस्ति सिद्ध करना है। समझ में आया? **मोक्षकारण हैं...** कौन? पर्याय मोक्ष का कारण है। **परन्तु शुद्धपारिणामिक नहीं...** शुद्धपारिणामिकभाव मोक्ष का कारण नहीं है। विशेष आयेगा समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

समयसार, ३२० गाथा, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार। जयसेनाचार्यदेव की टीका चलती है। तीसरे पृष्ठ का, तीसरा पैराग्राफ हो गया। बराबर है ? तीसरे में क्या कहा ? इसलिये यह सिद्ध हुआ... अकेली चीज़ मक्खन अकेली चीज़ है। जिसे धर्म करना हो तो उसे परमस्वभाव-मोक्षस्वभाव जो त्रिकाल स्वरूप ध्रुव है, उसकी दृष्टि करने से ही सम्यग्दर्शन होगा। बाकी कोई दूसरा उपाय नहीं है। तो कहते हैं कि **इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ - शुद्धपारिणामिकभावविषयक...** यह द्रव्यनय का विषय हुआ। ऐसे चार बोल पहले आये थे, यह पाँचवाँ बोल आया।

शुद्धपारिणामिकभावविषयक, अपना जो सहज ध्रुव ज्ञायक अभेद सामान्य नित्य एकरूप ऐसा जो तत्त्व है, उस तत्त्व को विषय करनेवाली, उस तत्त्व को ध्येय करनेवाली ऐसी भावना.... समझ में आया ? वह भावना **उसरूप जो औपशमिकादि तीन भाव...** उसरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल वह तो ध्रुवभाव है, वह तो ध्येय, विषय, लक्ष्य करनेयोग्य है। जिसे धर्म करना हो, सुख के पंथ में आना हो... समझ में आया ? दु:ख का नाश करना, यह भी नास्ति से बात है। सुख के पंथ में आना हो... अनादि से दु:खी है। समझ में आया ? अपना अकषाय ज्ञायकस्वभावभाव को भूलकर रागादि, विकल्प आदि मेरे हैं, यही मिथ्यात्वभाव संसार का बीज है। समझ में आया ? रागादि, पुण्यादि विकल्प मेरे हैं, यह मिथ्यात्वभाव है तो इससे रहित पारिणामिक मेरा है, यह सम्यक् भाव है। पण्डितजी !

भगवान आत्मा अपना ज्ञायकभाव पूर्ण ध्रुवस्वरूप अविनाशी पद को भूलकर रागादि विकल्प, चाहे तो महाव्रत का विकल्प हो या दया-दान का, भक्ति-पूजा का (विकल्प हो) परन्तु वह विकल्प दूसरा तत्त्व है। दूसरे तत्त्वसहित स्वतत्त्व है, ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है, वह संसार का बीज है। उस मान्यता का नाश करना नहीं है। भगवान आत्मा पारिणामिकभाव है, उस ओर का झुकाव, ऐसी जो भावना, ऐसा जो मोक्ष का मार्ग

उसका विषय—ध्येय तो ध्रुव है। नन्दकिशोरजी! बात तो ऐसी है। लोगों को बाहर में... अन्तर चीज़ पाताल में महा भगवान पूर्णानन्द पड़ा है। समझ में आया? अन्तर-अन्तर पाताल में पर्यायबुद्धि छोड़कर जा, यह पर्यायबुद्धि छोड़कर। समझ में आया?

एक समय की पर्याय-अवस्था या राग या पर, वह तो कहीं दूर रह गया, उसकी रुचि में पड़े हैं, वे मिथ्यात्वभाव में हैं, निगोद के पंथ में पड़ने का वह पंथ है। समझ में आया? पन्ना है या नहीं? मनसुखभाई! दो हैं न? दो कहाँ से आये? न हो तो यहाँ से ले जाना। पढ़े, सुने तो सही। पालेज में ऐसा नहीं वाँचा जाता। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, परमस्वभाव भगवान पूर्ण ध्रुव को विषय करनेवाली भावना, **उसरूप जो औपशमिकादि तीन भाव...** आगे ज्ञानप्रधानता से क्षयोपशमभाव एक लेंगे, भाई! यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की अपेक्षा लेकर त्रिकाल वस्तु को विषय दर्शन ने किया, ज्ञान ने किया और उसमें लीन हुआ, ऐसा जो उपशम-क्षयोपशम, क्षायिकभाव, ये **तीन भाव वे समस्त रागादि से रहित होने के कारण....** देखो! लोगों को ऐसा लगता है कि समस्त रागादि से रहित तो तेरहवें-बारहवें (गुणस्थान में) होते हैं। अरे... यह कहाँ? यह तो दूसरी बात है। यह तो पर्याय का ज्ञान में राग का जो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध था, वह बारहवें में छूट जाता है। यहाँ तो दृष्टि में से रागादि सब छूट गया, (उसकी बात है)। समझ में आया?

श्रोता : चौथे गुणस्थान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; यहाँ पहले कहा न? दो बात तो पहले की है कि विकल्प राग है, पुण्य है, उस सहित मैं हूँ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। उसकी संधि की बात १४ वीं गाथा में कही। पुरुषार्थसिद्धि-उपाय की चौदहवीं गाथा। समझ में आया? भगवान चैतन्यतत्त्व निर्मल ज्ञान भगवान, ज्ञान भण्डार परमात्मा, वह तो मोक्षस्वरूप ही है। आयेगा, देखो! शक्ति के बाद में आयेगा।

ऐसी दृष्टि बिना एक सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प जो राग है, गुण-गुणी का भेद, गुणी-भगवान आत्मा द्रव्य और उसमें रहनेवाला ज्ञायकभाव, ऐसा भेदरूप जो विकल्प है, वह विकल्प अर्थात् राग है। रागसहित आत्मा को मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

गजब बात! त्रिकाल शुद्धभाव में अशुद्धतासहित मानना... दूसरी भाषा से लें तो... आहाहा! शान्ति से समझने की चीज़ है। यह तो किसी समय वँचती है। यहाँ तो क्लास के समय वाँचने का विकल्प था तो क्लास के समय आ गया। बात तो ऐसी है। ऐसी वाणी, ऐसा वीतराग का भाव किसी-किसी समय निकलता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वाणी क्रमबद्धपर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो उसके कारण है।

श्रोता : किसी समय ऐसा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी समय वह परन्तु ऐसा होता है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज, परमेश्वर का जो भाव है, उसे स्पष्ट करते हैं। मर्म-रहस्य (स्पष्ट करते हैं)। भगवान! तेरी चीज़ जो पूर्ण है, उसे विषय करनेवाली, ध्येय करनेवाली भावना तीन रूप है-उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। यहाँ तीन कहते हैं, पश्चात् ज्ञानप्रधान में यह क्षयोपशमज्ञान (लेंगे)। यह साधक की बात है न? यह क्षायिकभाव ऊपर के (गुणस्थान की) बात नहीं है। केवली के क्षायिकभाव की यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो साधकभाव में जो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक है, उसकी बात है। क्या कहा समझ में आया?

यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो तीन भाव कहते हैं, वह क्षायिक, केवली के क्षायिक की यहाँ बात नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो निचली श्रेणी में जो सम्यग्दर्शनस्वरूप परमात्मा आनन्द का धाम हूँ - ऐसी दृष्टि हुई, उस दृष्टि को उपशमभाव कहते हैं, क्षयोपशमभाव कहते हैं और क्षायिकभाव कहते हैं। यहाँ तो निचले (गुणस्थान की बात है)। क्योंकि उसके तीनों बोल में ज्ञान की कथनशैली आयेगी तो उन तीनों में क्षयोपशमज्ञानरूप पर्याय स्वसंवेदन है - ऐसा कहेंगे। समझ में आया?

कहते हैं कि तीन भाव समस्त रागादि से रहित है। सूक्ष्म में सूक्ष्म विकल्प उठता है, उससे भी भगवान पर्याय में अत्यन्त भिन्न है। द्रव्य तो भिन्न है ही। समझ में आया? द्रव्य तो पर्यायरहित है, परन्तु यह तो पर्याय रागरहित हुई। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! मार्ग तो संक्षिप्त में बहुत है परन्तु लम्बी-लम्बी बात कर दी है। इसलिये कहीं पता नहीं लगता।

त्रिकाल ज्ञायकभाव को विषय करके, ध्येय करके जो पर्याय उत्पन्न हुई तो कहते हैं कि द्रव्य में तो वह पर्याय भी नहीं, परन्तु वह मोक्षमार्ग की पर्याय जो सम्यग्दर्शनादि प्रगट हुए, उस पर्याय में राग नहीं। शोभालालजी! पन्ना रखा है न? बाद में घर ले जाना, हों! वहाँ बराबर विचार करना। आहाहा! कहते हैं ऐसे **रागादि से रहित होने के कारण....** देखो, कारण को सिद्ध करना है, भाई! परन्तु रागादिरहित वह चीज़ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप-सन्मुख के आचरण की दशा, ये तीनों पर्याय, विकल्प अर्थात् अशुद्धता से रहित है। समझ में आया? ऐसा होने से उसका क्या नाम दिया? देखो! **शुद्ध-उपादानकारणभूत...** यह पर्याय की बात है। समझ में आया? शुद्ध-उपादानकारणभूत-ऐसा लिया है न? यह पर्याय का शुद्ध उपादान। द्रव्य का त्रिकाल शुद्ध उपादान पहले आ गया। यहाँ तो त्रिकाल भगवान आत्मा, परमात्मा का मूलमार्ग, द्रव्य को ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह पर्याय **शुद्ध उपादानकारणभूत होने से**। शुद्ध उपादान। पहले अशुद्ध निकाल दिया न? भाई! अशुद्धता जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह तो निकाल दिया। समझ में आया? आहाहा!

भगवान आत्मा अपने ध्रुवध्येय पर दृष्टि पड़ते ही, और ज्ञान की वर्तमान पर्याय ध्रुव को ज्ञेय करते ही, और स्वरूप में एकाकार चारित्र की दशा उत्पन्न होते ही राग का अभाव (हो जाता है)। समझ में आया? यह विकल्प व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं न? व्यवहारमोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग। यह व्यवहारमोक्षमार्ग इसमें है ही नहीं- ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तो फिर यह क्या है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह राग है, वह बन्ध का कारण है। बन्ध के कारण का पर्याय में अभाव है क्योंकि आत्मा अबन्धस्वरूप है, अबन्धस्वरूप है-मोक्षस्वरूप ही है, लो!

श्रीमद् में आता है न? भाई! दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा माना है कि.... आता है? एक बार आया था, यह आत्मधर्म में आ गया है। मोक्ष समझ में आता है। देखो! श्वेताम्बर के आचार्य की बात कहीं नहीं ली है क्योंकि उसमें यह है नहीं। समझ में आया? कौन सा वर्ष? ३२ में आता है? ४९८ पृष्ठ, अमुक आचार्य ऐसा कहते हैं कि.... देखो! श्रीमद् को भी यह ख्याल आ गया। श्वेताम्बर की शैली का ख्याल वहाँ छोड़ दिया। अमुक आचार्य

ऐसा कहते हैं कि—दिगम्बर के आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि... दिगम्बर सन्तों-आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि.... दिगम्बर के आचार्यों ने। बहुवचन है न? देखो! दिगम्बर सन्त सनातन मार्ग के साधक ऐसे मुनि-कुन्दकुन्दाचार्य आदि समस्त दिगम्बर आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष होता नहीं। जीव का मोक्ष होता नहीं।

बात जरा सुनो! त्रिकाल भगवान आत्मा मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! वस्तु में बन्ध कैसा? बन्ध तो पर्याय का आया? बन्ध पर्याय तो उसमें है नहीं। बन्धसहित द्रव्य मानना, वह तो मिथ्यात्व में ले लिया। समझ में आया? बन्धसहित कहो या अशुद्धतासहित कहो या रागसहित कहो, एक ही बात है। समझ में आया? भगवान आत्मा अबन्धस्वरूपी प्रभु.. अबन्धस्वरूप कहो तो अबन्ध तो निषेध से आया; मोक्षस्वरूप कहो। वह तो मोक्षस्वरूप ही है। ऐसा भगवान आत्मा मोक्षस्वरूप परमात्मा, आचार्यों ने ऐसा स्वीकार किया है कि जीव का मोक्ष नहीं होता। डालचन्दजी! गजब बात!

देखो! यहाँ दिगम्बर की बात सनातन सत्य है, उसे यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। समझ में आया? परन्तु मोक्ष समझ में आता है। समझ में आता है, मोक्ष समझ में आता है। मात्र जो विकल्पसहित जो मैं हूँ - ऐसा माना था; वह मान्यता बन्धसहित की जो मान्यता थी, मान्यता थी, वह छूट गयी। मूलचन्दभाई! यह कभी वहाँ सुना भी नहीं होगा। इतने वर्ष वाड़ा में बिताये। अब तो इसे उत्साह होता है न! आहाहा!

भगवान! यहाँ तो कहते हैं, देखो! सीधी बात है, बहुत सीधी है कि जो विकल्प-राग है, वह भावबन्ध है। द्रव्यबन्ध की बात छोड़ दे। कर्म का बन्ध इसमें है ही नहीं, वह तो पर है। विकल्प जो राग है, वह भावबन्ध है। भावबन्ध क्यों माना? कि मैं मुक्त नहीं, बन्ध हूँ - ऐसी मान्यता में वह राग खड़ा था। मैं रागसहित, भावबन्धसहित हूँ - ऐसी मान्यता की थी। समझ में आया? धन्नालालजी! देखो, आहाहा! क्लास के लिये रखा था। कहा, इस क्लास में सुने तो सही। यहाँ जंगल में ३६ वाँ वर्ष हुआ, जंगल में ३६ वाँ चातुर्मास है। सुने तो सही। यह तो जंगल था न। यह तो अब बस गया। यहाँ तो जंगल था, अकेला मकान था। हमारे जीवराजजी महाराज को नीचे से कोई जंगल का जानवर खा गया था। जंगल में जानवर घुस गया था क्योंकि यह तो खुला था, न उस समय तो... क्या

कहते हैं उसे ? बण्डी, बण्डी ही नहीं थी। अकेला मकान,अकेला मकान जंगल में अकेला (मकान) बण्डी तो बाद में हुई। खुला था, उसमें जीवराजजी नीचे कोई सियार या कोई जंगली जानवर नीचे घुस गया था। जंगल था, एकदम जंगल। मकान तो कहाँ था ? यहाँ ३६ वें वर्ष में सुने तो सही। यह ख्याल आया था, हों ! ६ और ३ = ९ ! इस छत्तीसवें वर्ष में वीतराग का मार्ग कुछ सुने (तो सही)।

(यहाँ) कहते हैं कि मोक्ष समझ में आता है, मोक्ष होता नहीं। समझ में आया ? वह इस प्रकार कि जीव शुद्धस्वरूपी है। भगवान आत्मा तो परमशुद्ध स्वभाववस्तु है। शुद्धस्वरूपी है। अशुद्धस्वरूपी तो मान्यता में किया था। आहाहा ! त्रिकाल वस्तु शुद्धस्वरूप ही है। जीव शुद्धस्वरूप है, उसे बन्ध नहीं होता। शुद्धस्वरूप में अशुद्धता आती ही नहीं। बन्ध का अर्थ (यह कि) शुद्धस्वरूपी भगवान में भावबन्ध अशुद्धता होती ही नहीं। आहाहा ! देखो न ! कैसी बात की है ! दिगम्बर आचार्यों ने ऐसा माना है – ऐसा कहकर सन्तों की बात परम सत्य प्रसिद्ध किया है। समझ में आया ? ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं होती।

कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है, उसे बन्ध हुआ नहीं तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहता है ? जहाँ बन्ध हुआ नहीं, फिर मोक्ष होना कहाँ से आया ? आहाहा ! समझ में आया ? भगवानजीभाई ! मार्ग यह है। आहाहा ! कहते हैं कि शुद्धस्वरूपी है, उसे अशुद्धता हुई ही नहीं। बन्ध हुआ नहीं, इसका अर्थ क्या ? अशुद्धता है ही नहीं, अशुद्धता हुई ही नहीं। आहाहा ! तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहता है ? यह हिन्दी होगा, अपने हिन्दी है। 'वढ़वा' वाले पण्डित ने किया है। जगदीशचन्द ! अपने यहाँ यह चलता है।

परन्तु इसने माना है, देखो ! भगवान आत्मा शुद्धस्वरूपी बन्ध में है ही नहीं। शुद्ध है, वह अशुद्ध हुआ ही नहीं – ऐसा कहते हैं। तथापि माना है कि मैं बँधा हूँ। मान्यता में बन्ध हुआ है – ऐसा माना है क्योंकि वस्तु तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव है, उसमें मान रखा है कि रागसहित हूँ, रागसहित हूँ, बन्धसहित हूँ–ऐसी मान्यता थी। आहाहा ! मणिभाई ! कहो, समझ में आया इसमें ? समझाये छे ? यह हमारी गुजराती भाषा है। समझ में आया या नहीं ?

माना है कि मैं बँधा हूँ। भाषा देखो ! माना है कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ या बँधा हूँ, एक ही बात है। समझ में आया ? यह मान्यता विचार द्वारा समझ में आती

है, यह माना था। भगवान शुद्धस्वरूपी प्रभु, यह शुद्ध वह द्रव्य वस्तु अशुद्ध हुई ही नहीं परन्तु मान्यता में माना कि मैं अशुद्ध हूँ, – ऐसी मान्यता में मैं बन्ध (स्वरूप हूँ – ऐसा माना था)। अशुद्ध कहो या बन्ध कहो, एक ही बात है। मैं बन्धसहित हूँ – ऐसा माना था, यह मान्यता विचार द्वारा समझ में आती है। दूसरे किसी क्रियाकाण्ड नहीं अथवा यह व्यवहार कषाय की मन्दता, व्रत की क्रिया की, उससे (हुआ) – ऐसा नहीं है। सेठ! यह तुम्हारे दान... सेठिया सब दस-बीस हजार दान दे। ये थोड़ा दे, इतना सब कोई नहीं दे। लाख, दो लाख, पाँच लाख नहीं दे, दस-बीस हजार खर्च करे। लाख रुपये अभी खर्च किये थे न? समझ में आया? पचास-साठ लाख वाला कहीं पचास लाख दे देगा?

यहाँ तो कहते हैं कि मेरे हैं, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? यह तो ठीक, परन्तु इसमें जो राग है, उस रागसहित हूँ, रागसहित हूँ, मैं बँधा हुआ हूँ – ऐसी मान्यता मिथ्यात्व में है। वह विचार से (समझ में आती है)। ओहो! इस चीज़ में बन्ध है ही नहीं, इसमें अशुद्धता है ही नहीं। समझ में आया? कल्पना थी, मान्यता (थी) आहाहा! समझ में आया? मिथ्यामान्यता। बन्धसहित हूँ, वास्तव में यह इसका विषय हुआ ही नहीं। समझ में आया? मिथ्यामान्यता का यह विषय हुआ नहीं। आहाहा! माना कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं बन्ध हूँ, आहाहा! यह मिथ्यात्व विचार द्वारा समझ में आता है। ज्ञान द्वारा समझ में आता है कि मैं बन्ध नहीं। देखो! अभी सम्यग्दर्शन की, सम्यग्ज्ञान की बात चलती है, चौथे गुणस्थान की बात चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : गुरु के ज्ञान द्वारा?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा के द्वारा। आत्मा गुरु, आत्मा तीर्थ, आत्मा देव, और आत्मा धर्म, आत्मा देव। कहो, समझ में आया? ऐसी बात है या नहीं? पन्ना है या नहीं? यह समझ में आता है कि मुझे बन्धन नहीं है। आहाहा! देखो! यह वस्तु। देखो, अशुद्ध-अशुद्ध मैं हूँ – ऐसी मिथ्यात्व की मान्यता थी। मान्यता थी, हों! आहाहा! क्या शैली, देखो तो सही! यह वस्तु की, स्वतन्त्र वस्तु ऐसी है, उस तत्त्व में अशुद्धता कैसी? भावबन्ध कैसा? भावबन्ध मैं हूँ – ऐसी मान्यता तो खड़ी की थी। उसमें नहीं। समझ में आया? ऐसी मान्यता तो खड़ी की थी। आहाहा! बनावटी, साहूकार के इसके वेष करते हैं या नहीं?

बनावटी वेष अज्ञानी ने खड़ा किया है। आहाहा! उसका स्वरूप तो मुक्त है। राग और विकल्प के बन्ध से रहित है। आहाहा! ऐ.. मनसुखभाई! समझ में आता है या नहीं? इस तुम्हारे राजकुमार को ऐसा सूक्ष्म समझ में आता है या नहीं? वहाँ पालेज में कहीं मिले ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : अब यहाँ लेने आये हैं न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मनसुखभाई बहुत कहते हैं इसे।

मुमुक्षु : एक बार माल चख जाये तो बारम्बार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे जिज्ञासा हुई तब आया न। आहाहा! परन्तु क्या बात! अन्दर समुद्र उछला! आनन्दकन्द प्रभु है – ऐसी जहाँ मान्यता ज्ञान से हुई कि मुझे बन्धन नहीं क्योंकि बन्ध और अशुद्धता तो भिन्न तत्त्व है, उसकी द्रव्य के साथ एकता नहीं है। समझ में आया? यह मुझे बन्धन नहीं है अर्थात् मुझे अशुद्धता नहीं है। आहाहा! ए जयकुमारजी! बहुत सरस? यह तुम्हारी सब गड़बड़ में से यह सब बात (आयी है)। यह पन्ना पढ़ने का भाव.. ज्ञानचन्दजी चले गये। यह तो रुक गया। इसे तो जिज्ञासा है। आहाहा! क्या कहते हैं?

दिगम्बर आचार्यों का ऐसा मानना है कि जीव का मोक्ष नहीं होता। आहाहा! क्योंकि उसमें अशुद्धतारूपी बन्धनभाव नहीं है। मान्यतारूप से माना था कि मैं अशुद्ध और भावबन्धरूप हूँ, यह ज्ञान द्वारा समझ में आया कि मैं राग नहीं, मैं अशुद्धता नहीं, मैं तो त्रिकाली आनन्दकन्द हूँ। चिमनभाई! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! सादी भाषा में है परन्तु भाव भले ऊँचे हों। आहाहा!

मुझे बन्धन नहीं है। धर्मी को जहाँ स्वभाव पर दृष्टि पड़ी, वहाँ वह तो मुक्तस्वरूप है, मुझे बन्धन है ही नहीं। आहाहा! अशुद्धता है ही नहीं। बन्धन कहो या अशुद्धता कहो, एक बात है या नहीं? ऐ... धन्नालालजी! अशुद्धता कहो या बन्धन कहो, दोनों एक बात है या अन्तर है? भाई! आस्रवसहित हूँ – ऐसा कहो, बन्धसहित हूँ कहो, मैं बँधा हुआ हूँ कहो, अशुद्धतासहित हूँ कहो, यह मान्यता थी। आहाहा! समझ में आया? यह मान्यता शुद्धस्वरूप समझने से नहीं रहती। ऐसी मान्यता, शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञात हुआ तो यह मान्यता—अशुद्ध हूँ, भावबन्ध है—यह बात नहीं रहती। समझ में आया? देखो! सम्यग्दृष्टि की ध्येय वस्तु बन्धरहित है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें ऐसा लिखा है, शुद्धस्वरूप समझाने से... परन्तु समझने से चाहिए। मूल शब्द दूसरी जगह ऐसा शब्द था। यह मान्यता-जो मिथ्यात्व की गाँठ थी कि मैं अशुद्ध हूँ... अशुद्ध तत्त्व तो भिन्न है, तो ज्ञायक के साथ मान्यता से अशुद्धता मिलाना। आहाहा! समझ में आया? मानता है। तो वह मान्यता शुद्धस्वरूप समझने से नहीं रहती अर्थात् मोक्ष समझ में आता है। मोक्ष समझ में आता है। मोक्ष समझ में आता है, मोक्ष होता नहीं। समझ में आया? पण्डितजी!

यह बात शुद्धनय की-निश्चयनय की है। वास्तविक तत्त्वदृष्टि का विषय है। पर्यायार्थिकनयवाले आचरण करे तो भटक मरे। राग पर लक्ष्य है पर के प्रति लक्ष्य है और फिर आचरण में कहे कि हम शुद्ध हैं, शुद्ध हैं - ऐसा कहेगा मर जायेगा, चार गति में भटकेगा - ऐसा कहते हैं। यह तो श्रीमद् राजचन्द्र, ४९८ पृष्ठ पर है। ३२वाँ वर्ष, ४९८ पृष्ठ, उसमें वर्ष (प्रमाण) है न? समझ में आया? ठीक आया, आहाहा!

एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व को माना था - ऐसा कहते हैं। एक तत्त्व में दूसरा तत्त्व मेरा है - ऐसा माना था, हुआ नहीं - ऐसा कहते हैं। ज्ञायक तो ज्ञायक ही त्रिकाल रहा। प्रवचनसार में आता है न? भाई! प्रवचनसार में २०० वीं गाथा, अन्त में (आता है)। भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध तो शुद्ध ही रहा है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है; अन्य प्रकार से अध्यवसित हुआ है, यह बात यहाँ है। ओहोहो! ठीक... यह तो अभी ख्याल आया। कहाँ का कहाँ... लो, २०० गाथा, देखो!

शुद्ध आत्मा सहज अनन्त शक्तिवाले ज्ञायकभाव द्वारा एकरूपता को नहीं छोड़ता। अनादि संसार से इस स्थिति से ज्ञायकभावरूप रहा है। टीका अमृतचन्द्राचार्यदेव की है। २०० गाथा। प्रवचनसार २०० गाथा की टीका। क्या कहा? मैं तो अनादि संसार से ज्ञायकभावरूप ही आत्मा रहा है। टीका में है। समझ में आया? और ऐसा होने पर भी मोह द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। लो, भाई! यह तो बराबर आया। समझ में आया?

आचार्य-दिगम्बर आचार्यों ने यह बात ली है। कहाँ का कहाँ आया, लो! यह तो पता भी नहीं, हों! आचार्यों ने (कहा) कि आत्मा तो ज्ञायकभाव ही रहा है। वह ज्ञायक मिटकर अन्यथा नहीं हुआ अनादि से, परन्तु मोह द्वारा अर्थात् मिथ्यात्व द्वारा... ओहोहो!

देखो ! वाह ! कहाँ का कहाँ मिला, देखो ! सहज कहाँ मिला ! मोह–मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। मिथ्यात्व द्वारा दूसरे प्रकार से जानने में आता है। कल्पना... समझ में आया? देखो, यह अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका। दिगम्बर सन्तों ने ऐसा कहा कि ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। समझ में आया? परन्तु मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित, अन्यथा निर्णय अज्ञानी ने किया है (परन्तु) ऐसा है नहीं। मूलचन्दभाई ! यह ऐसी बातें हैं। आहाहा ! दिगम्बर सन्तों ने केवलज्ञान के पेट खोलकर रख दिया है परन्तु इसकी दृष्टि जाती नहीं और यह बात अन्दर प्रविष्ट होती नहीं। अन्दर खटक... खटक (रहती है) मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : गुरु मिलेंगे तब जँचेंगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा अन्दर में ध्यान करेगा तो जँचेगी, तब गुरु मिले – ऐसा व्यवहार से आरोप दिया जाता है। निश्चय हुआ तो व्यवहार में आरोप दिया जाता है। समझ में आया?

देखो ! संस्कृत है, हों ! 'पृष्ठ १२९' माना था। यह मैं, मेरी मान्यता में जो था कि मैंने अन्य अध्यवसाय किया कि मैं अशुद्ध हूँ, उस मोह को मैं उखाड़ डालता हूँ। उस मोह को मैं छोड़ देता हूँ, मैं अशुद्ध हूँ नहीं। ऐ... वजुभाई ! देखो ! यहाँ की साक्षी दी। आचार्यों ने कहाँ कहा है? यह कहा है, भाई ! २०० वीं गाथा में कहा है। लो ! समझ में आया? यहाँ फिर साक्षी मिल गयी। कहाँ का कहाँ आया? ओहो ! मोह से अन्य रीति से अध्यवसित होता है – ऐसा हुआ नहीं। है तो ज्ञायकरूपी ज्ञायकभाव, मिथ्यात्व से अन्य अध्यवसाय–निर्णय किया है, उस मोह का निर्णय छोड़ दे। है वह है। समझ में आया?

अपने यहाँ आया, देखो ! यहाँ रागादि रहित (कहा है), उसमें सब आया, **समस्त रागादि से रहित....** अर्थात् कोई ऐसा कहे कि ये रागादि... अरे ! सुन तो सही ! त्रिकाल राग से रहित ही है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव तो त्रिकाल ऐसा का ऐसा रहा है। मोह द्वारा, मिथ्यात्व द्वारा जो अन्यथा निर्णय किया था कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं भावबन्ध हूँ–ऐसा (निर्णय) किया था, वह छोड़ दिया। उस **समस्त रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध–उपादानकारणभूत होने से....** यह पर्याय।

पर्याय में अशुद्धता 'मैं हूँ' - ऐसी जो दृष्टि थी, वह छूट गयी क्योंकि त्रिकाल स्वभाव सन्मुख का भेद-विषय करने से, उसे ध्येय बनाने से छूटता है, छूटता है। छोड़ता नहीं, छूट जाता है। आहाहा! भ्रान्ति-भ्रम जो है कि मैं अशुद्ध हूँ, बन्ध हूँ, उसकी जो उत्पत्ति हुई है, उस उत्पत्ति का नाश तो दूसरे समय सहज होता ही है, करना नहीं पड़ता। उसमें निमित्तपना भी नहीं। क्या कहा?

फिर से, जो मोह से एकत्व माना था - ऐसी जो एक समय की पर्याय (का) दूसरे समय में व्यय होगा, होगा और होगा ही। उसमें कोई आत्मा का पुरुषार्थ किया तो निमित्त हुआ और नाश हुआ - ऐसा नहीं है। क्षणिक के अर्थ में थोड़ा मर्म है कि यह मोह जो अध्यवसाय निश्चित किया था, वह भाव तो भाव है। अब यह तो पर्याय है तो दूसरे समय पर्याय का नाश होता है, परन्तु उस पर्याय में अपने शुद्धध्येय का परिणमन होकर जो मिथ्यात्व की उत्पत्ति होनेवाली थी, वह नहीं हुई, उसे मिथ्यात्व का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। यह मर्म है। ऐ... हीराभाई! कहो, समझ में आया?

शुद्ध उपादान पर्याय में ध्रुव को ध्येय में लिया है कि मैं तो शुद्ध त्रिकाल ज्ञायकभाव हूँ-ऐसा लिया तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं हुई। पहले जो मिथ्यात्व था, वह तो उसके कारण से नाश होता ही है, वह तो पर्याय का धर्म है कि दूसरे समय नहीं रहती। समझ में आया? परन्तु जो मिथ्यात्व का निर्णय था, वह ज्ञायकभाव का निर्णय - सन्मुख हुआ तो मिथ्यात्व की उत्पत्ति नहीं हुई, उसे मिथ्यात्व का नाश किया - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! नाश किसे करे? भगवान आत्मा नाश करे - ऐसा तो आत्मा में है नहीं। राग के नाश का कर्तापना आत्मा में है नहीं। नाश का कर्तापना इसमें नहीं, हों! आहाहा! ऐसी चीज़ है। समझ में आया? बहुत बात की है, हों!

पहले बोल में ऐसा लिया, शुरुआत में लिया न कि कर्ता-भोक्ता है, भाई! पहले शुरुआत में आया न? अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व पहले (आ गया)। उसमें ऐसा लिया कि भगवान आत्मा, जैसे यहाँ अध्यवसाय से माना था, वैसा भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध है, वह पर का कर्ता तो नहीं परन्तु राग का कर्ता भी नहीं। समझ में आया? यदि राग का कर्ता द्रव्य हो तो त्रिकाली राग करने में ही उसकी दृष्टि हो जाये, कभी सम्यग्दर्शन हो नहीं। समझ में आया? यही आया कि अशुद्धता विकार जो है, वह तो मान रखा था कि मेरा है,

वह दृष्टि छूट गयी तो आत्मा, राग का कर्ता तो नहीं, परन्तु राग का नाश करता भी नहीं। क्योंकि राग के नाश कर्ता में भी आत्मा निमित्त है – ऐसा है नहीं। कर्तापने में निमित्त नहीं तो नाशकर्ता में भी निमित्त नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस राग का कर्ता अज्ञानरूप से माना था, परद्रव्य की पर्याय का तो कर्ता नहीं परन्तु परद्रव्य की पर्याय में जो राग और कम्पन निमित्त होते हैं, उनका कर्ता ज्ञानी नहीं। अज्ञानी मानता है कि राग और कम्पन मेरे हैं। ऐसी मान्यतावाला जीव दूसरे द्रव्य की पर्याय के काल में इस मान्यतावाले जीव की पर्याय निमित्त होती है। निमित्त कहने में आती है। आहाहा! समझ में आया? यह तो वह की वह बात खड़ी हुई।

राग और कम्पन है, वह अशुद्धता है, लो! ठीक है? अशुद्धता सहित हूँ – ऐसी जिसकी मान्यता है, वह मिथ्यादृष्टि, राग और कम्पन का कर्ता होता है और उस मिथ्यादृष्टि का राग और कम्पन अशुद्धपर्याय, दृष्टि वहाँ है इस कारण से जगत की, जड़ की पर्याय होती है, उसमें अज्ञानी के (राग को) निमित्तकर्ता का आरोप देते हैं। ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं है। आहाहा! क्योंकि राग और कम्पन से भिन्न है। वह अशुद्धभाव है न! भावबन्ध है न! तो भावबन्ध तो माना था, वह मान्यता छूट गयी। मैं तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्यद्रव्य हूँ – ऐसी दृष्टि हुई तो कम्पन और राग से मुक्त हुआ। वह राग का कर्ता भी नहीं और राग का नाश कर्ता भी नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! आहाहा! ओहो!

कहते हैं **शुद्ध-उपादानकारणभूत होने से मोक्ष का कारण है...** कौन? ये तीन भावरूप मोक्षमार्ग, वह अन्तर ध्रुवस्वभाव का अवलम्बन लेकर मिथ्यात्व की पर्याय का नाश हो गया, उत्पन्न नहीं हुआ, वह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की शान्ति की पर्याय उत्पन्न हुई, उन तीन भावरूप है, वह शुद्ध उपादानकारणभूत पर्याय है। वह मोक्ष का कारण है। मोक्ष का कारण है, देखो! रागादि विकल्प-फिकल्प मोक्ष का कारण नहीं। मोक्ष के कारण दो हैं – ऐसा नहीं, ऐसा यहाँ लिया है। मोक्ष का कारण एक ही है, दूसरा मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा! कौन जाने ऐसी गड़बड़ करते हैं न! मोक्ष का कारण कहा है। अरे! सुन तो सही! यह तो कथन की शैली है। निरूपण दो प्रकार से है, वस्तु दो प्रकार से नहीं। क्या कहते हैं? देखो न! क्योंकि व्यवहाररत्नत्रय तो उदयभाव है। समझ में आया? उदयभावसहित हूँ – ऐसा जहाँ तक मानता है, वहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो उदयभाव तो नहीं परन्तु यह एक समय की शुद्धपर्याय हुई, उससे रहित मेरी चीज़ है – ऐसी दृष्टि हुई तो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई। मलिन पर्याय उत्पन्न नहीं हुई और निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, वह मोक्ष का कारण निर्मल पर्याय है। निश्चयमोक्षमार्ग, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय ही मोक्ष का कारण है; व्यवहाररत्नत्रय मोक्ष का कारण नहीं है – ऐसा यहाँ सिद्ध कर दिया है। इसमें है या नहीं ? आहाहा!

मुमुक्षु : है वह हमें तो दिखता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब देखो। देखनेवाला देखेगा, दूसरा कौन देखेगा ? समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसीलिए तो आपके पास आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पास तो स्वयं के समीप जाना, वह पास जाना है। आहाहा!

परन्तु शुद्धपारिणामिक नहीं... मोक्ष का कारण त्रिकाली द्रव्यस्वभाव नहीं। आहाहा! समझ में आया ? मोक्ष का कार्य, उसका कारण पारिणामिक ध्रुव चीज़ की दृष्टि, ज्ञान और रमणता जिसे यहाँ तीन भाव कहा, वह मोक्ष का कारण है। व्यवहार, मोक्ष का कारण नहीं; द्रव्य, मोक्ष का कारण नहीं। क्या कहा ? व्यवहार कारण नहीं, वह तो रागादि रहित में आ गया। अब यहाँ शुद्धपारिणामिक नहीं–इसमें द्रव्य आ गया। समझ में आया ? गजब! परन्तु अलौकिक गाथा रची है, हों! वस्तु के स्वरूप को आचार्यों ने जंगल में रहकर... आहाहा! खजाना खोल दिया है, खजाना! आहाहा!

यह **शुद्धपारिणामिक नहीं...** क्या नहीं ? यह मोक्ष का कारण नहीं। कौन ? त्रिकाली द्रव्यस्वभाव मोक्ष का कारण नहीं है। वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है। समझ में आया ? आहाहा!

जो शक्तिरूप मोक्ष है,... लो! अब पैराग्राफ आया। **जो शक्तिरूप मोक्ष है,...** शक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्तस्वरूप ध्रुव है, वह मोक्ष तो पहले से है, अनादि से वह तो शुद्ध पारिणामिक है। शक्तिरूप मोक्ष जो त्रिकाल है, जो यहाँ कहा कि आत्मा की मुक्ति होती नहीं; मुक्त हूँ – ऐसा समझ में आता है। राग से बँधा नहीं। मान्यता में था कि राग से बँधा हूँ, अशुद्धता

से बँधा हूँ। आहाहा! देखो, दृष्टि के विषय में कहाँ जोर जाता है? और अन्य में पर्याय में जोर जाता है, इसका इसे पता नहीं पड़ता। ऐ... जयकुमारजी! सूक्ष्म भाव है।

शास्त्र से चर्चा करते-करते तो दोष देखा है या नहीं? दोष देखा है या नहीं? अब, सुन तो सही। आहाहा! आता है वह जाने, ज्ञात हो, वह ज्ञात हो उसका जोर क्या? ज्ञात होता है, इसलिये दोष का नाश होता है? दोष के नाश की उत्पत्ति तो स्वभाव का आश्रय लेते हैं तो उत्पत्ति नहीं होती। समझ में आया? यह तो व्यवहार के कथन ऐसे आते हैं। दोष की उत्पत्ति न हो, वह किसके आश्रय से? भगवान चिदानन्द प्रभु शुद्ध ध्रुव का माहात्म्य आया और उस पर दृष्टि पड़ी तो (दोष) उत्पन्न नहीं होते। जितने अंश में अन्तर एकाग्रता होती है, उतने अंश में अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती। अशुद्धता के नाश का उपाय यह आत्मद्रव्य है। समझ में आया?

कहते हैं कि **जो शक्तिरूप मोक्ष है,...** यह तो मोक्ष का कारण कहा न? तो मोक्ष क्या? जो पर्याय में मोक्ष होता है, उसकी बात चली और शक्तिरूप जो मोक्ष त्रिकाल है, पहले जो कहा कि मोक्षरूप ही पारिणामिकस्वभाव है, वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, **वह तो शुद्धपारिणामिक है,** वह **प्रथम से ही विद्यमान है।** वह मोक्ष तो प्रथम से ही त्रिकाल विद्यमान है। आहाहा! अनादि से है। समझ में आया? आहाहा! हमारे राजमलजी बहुत प्रसन्न होते हैं, देखो!

प्रथम से ही विद्यमान है। क्या कहते हैं? मोक्ष तो पहले से है, शक्तिरूप मोक्ष तो पहले से है। आहाहा! समझ में आता है न रामदासजी? ऐई! प्रकाशदासजी कहाँ गये? पन्ने हैं या नहीं? (है।) अच्छा।

यह तो अनादि की भूल हो, हो उससे क्या है? मुझमें भूल ही नहीं यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भूल ही नहीं, भगवान में भूल कैसी? भगवान को भूलवाला मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : आप क्या कहते हो, वह कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कह रहे हैं? अच्छा। यह कह रहे हैं कि भगवान शुद्धस्वरूपी प्रभु को अशुद्ध कहना, भूलवाला कहना, भूलवाला द्रव्य कहना, वह मिथ्यात्वभाव है।

आहाहा! वह तो अशुद्धतारहित को अशुद्धता मानना या भूलरहित को भूलसहित मानना दोनों एक ही चीज़ है। यह तो दूसरे प्रकार से कथन हुआ। आहाहा! कहते हैं कि ऐसा मोक्ष का मार्ग? ऐसी कथा होगी? उसमें ऐसा और वैसा और अमुक....

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने तो पाँचवीं गाथा में प्रतिज्ञा की है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं तो शुद्धस्वरूप कहूँगा। तो कैसा शुद्ध है? कि जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय नहीं है - ऐसा वह शुद्ध है। यह छठी गाथा से शुरु कर दिया है। कैसा शुद्ध है कि जिसे जानना चाहिए? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव उत्तर देते हैं। परमेश्वर हैं न! आचार्यपद में है न! पंच परमेष्ठी में हैं। आहाहा! उसे हम शुद्ध कहते हैं कि जिसमें प्रमत्त और अप्रमत्त, निर्मलपर्याय और मलिनपर्याय जिसमें नहीं, उसे हम शुद्ध कहते हैं। प्रमत्त-अप्रमत्त चौदह गुणस्थान ही जिसमें नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसे हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्ध सन्मुख की सेवा करने से निमित्त का लक्ष्य और पर का लक्ष्य छोड़कर, द्रव्य के लक्ष्य में जो आया, सेवा की कि यह शुद्ध है। समझ में आया? तथापि यह शुद्ध है - ऐसी पर्याय भी द्रव्य में नहीं है। आहाहा! यह तो उसमें बहुत स्पष्टीकरण आ गया। समझ में आया?

प्रथम से ही विद्यमान है। 'ही' (कहा है) भगवान! तेरी मुक्ति तो पहले से-अनादि से है।

मुमुक्षु : जैनदर्शन में 'ही' प्रयोग नहीं होता, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह 'ही' प्रयोग किया है, देखो! यह क्षुल्लकजी ने कहा है कि इसमें ही आया। जोरदार आया, 'ही' आया न ही! नित्य है तो नित्य ही है। नित्य है, इसलिये अनित्य भी है-ऐसा है? शुद्ध ध्रुव, वह ध्रुव ही है। फिर अशुद्ध भी है - ऐसा है नहीं। (यह) सम्यक् एकान्त। मार्ग ऐसा है, भगवान! समझ में तो ले, बात ज्ञान में तो ले, इसे ख्याल में तो ले कि मार्ग... आहाहा! अलौकिक मार्ग, लौकिक में कहीं मिलता नहीं। सम्प्रदाय में भी दिगम्बर सम्प्रदाय के सिवाय बात नहीं। दिगम्बर सम्प्रदाय में तो अभी सम्प्रदाय के नाम से क्या होता है? शरीर की क्रिया से धर्म होता है-ऐसे तो प्रश्न चलते हैं। गजब बात, प्रभु! जैनदर्शन में ऐसी बात कलंक है। आहाहा! ऐई शोभालालजी! शरीर की

क्रिया से धर्म होता है। अरे! भगवान! क्या कहता है? प्रभु! आहाहा! अशुद्धता दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म होता है, यह भी वस्तु में नहीं है। आहा! और यह अशुद्धता वस्तु में नहीं है। अशुद्धता से धर्म होता है, यह तो नहीं परन्तु यह अशुद्धता वस्तु में नहीं। समझ में आया? ऐसी वस्तु की दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता मोक्ष का कारण है; परमस्वभाव नहीं। क्योंकि शक्तिरूप मोक्ष तो त्रिकाल है। **यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है।** प्रगटरूप दशा की बात चल रही है। विशेष कहेंगे..... पैराग्राफ बाद में आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आत्मस्वरूप की यथार्थ समझ सुलभ है !

अपना आत्मस्वरूप समझना सुगम है; किन्तु अनादि से स्वरूप के अनाभ्यास के कारण कठिन मालूम होता है। यदि यथार्थ रुचिपूर्वक समझना चाहे तो वह सरल है।

चाहे जितना चतुर कारीगर हो, तथापि वह दो घड़ी में मकान तैयार नहीं कर सकता, किन्तु यदि आत्मस्वरूप की पहचान करना चाहे तो वह दो घड़ी में भी हो सकती है। आठ वर्ष का बालक, एक मन का बोझा नहीं उठा सकता, किन्तु यथार्थ समझ के द्वारा आत्मा की प्रतीति करके केवलज्ञान को प्राप्त कर सकता है। आत्मा, परद्रव्य में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता, किन्तु स्वद्रव्य में पुरुषार्थ के द्वारा समस्त अज्ञान का नाश करके, सम्यग्ज्ञान को प्रगट करके, केवलज्ञान प्राप्त कर सकता है। **स्व में परिवर्तन करने के लिए आत्मा सम्पूर्ण स्वतन्त्र है, किन्तु पर में कुछ भी करने के लिए आत्मा में किञ्चित्मात्र सामर्थ्य नहीं है। आत्मा में इतना अपार स्वाधीन पुरुषार्थ विद्यमान है कि यदि वह उल्टा चले तो दो घड़ी में सातवें नरक जा सकता है और यदि सीधा चले तो दो घड़ी में केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्ध हो सकता है।**

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

समयसार शास्त्र सिद्धान्त है, उसकी ३२० गाथा, सूक्ष्म भाव है। अनन्त काल से क्या चीज़ है, इसका उसको बोध कभी हुआ नहीं। इसमें यह गाथा तो बहुत मक्खन है अकेली। हिम्मतभाई! यह पढ़े न तो वहाँ हाथ आवे ऐसा नहीं है, कहीं कभी, कुछ अभ्यास नहीं होता। सूक्ष्म पड़ेगी। सुनो!

मुमुक्षु : सुनने के बाद समझना या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझने की तो दरकार करे तब, बात सुने तो सही अभी। क्या कहते हैं? बात यह चलती है कि पाँच भाव है, एक पारिणामिकभाव और एक उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव। एटले शूं? एटले क्या? अर्थात् क्या? क्या – शुं हमारी भाषा में, तुम्हारी भाषा में क्या?

जो आत्मा त्रिकाली द्रव्य है, त्रिकाली द्रव्य वस्तु सत् चिदानन्द, सत् शाश्वत्, चित् अर्थात् ज्ञान और आनन्द का कन्द ध्रुवस्वरूप है, उसको यहाँ पारिणामिक सहजभाव कहने में आता है। समझ में आया? जो वस्तु, त्रिकाल जो वस्तु आत्मा अविनाशीपना उसमें, त्रिकालपना आनन्द और ज्ञानादि गुणों का त्रिकालपना—ऐसी उस चीज़ को यहाँ पारिणामिकभाव-सहजभाव किसी की अपेक्षारहित अनादि-अनन्तभाव, उसे यहाँ पारिणामिकभाव कहने में आया है।

और उसकी पर्याय जो है, अवस्था जो है, हालत है, दशा-उस पर्याय के चार बोल कहने में आये हैं। समझ में आया? तब तो पर्याय उदय आ गया, जरा विचार आया। रात्रि को प्रश्न था न? विकार का उदय आत्मा की विकारी पर्याय है। यह प्रश्न पर के कारण वह होता है, यह प्रश्न यहाँ है नहीं। समझ में आया? पर्याय आयी या नहीं? चार भाव पर्यायरूप है। एक विकारभाव / उदयभाव, एक उपशमभाव, एक क्षयोपशमभाव (अर्थात्) किंचित् विकास और किंचित् विघ्न, उपशम में विकास और विघ्न बिलकुल नहीं और

क्षायिक में विघ्न बिलकुल नहीं और निर्मलदशा, ये सब चार अवस्थायें हैं। अवस्था है, पर्याय है, यह अपनी पर्याय अपने से है। समझ में आया? चाहे तो उदयभाव हो या चाहे तो क्षायिकभाव हो, चाहे तो धर्मभाव हो या चाहे तो अधर्मभाव हो परन्तु है अपनी पर्याय-निजद्रव्य की पर्याय। अरे! यह...

द्रव्य जो ध्रुव है, उसकी जो अवस्था-पर्याय-हालत है, वह अपनी है, अपने से है; पर की अपेक्षा कुछ है नहीं-यहाँ तो ऐसा सिद्ध किया है। समझ में आया? रात्रि को प्रश्न हुआ था न? ऐसा कि कर्म के वश है - ऐसा आया था न, भाई! स्वयं वश होता है, कर्म वश कराता नहीं। कर्म के-जड़ के आधीन होकर आत्मा अज्ञान में पूर्ण आधीन होकर विकार करता है और भान में जरा अस्थिरता (रूप) पर के आधीन हो जाता है। उस कारण उसमें विकार होता है तो विकार वह जीव की दु:खरूप विकारी अवस्था है और पश्चात् उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक वह निर्विकारी, निर्दोष, आनन्द की पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था।

इन चार भाव में से किस भाव से मुक्ति होती है, यह बात चलती है। समझ में आया? तो यहाँ कहा, देखो! दूसरा पैराग्राफ है न? कल चला न? **जो शक्तिरूप मोक्ष है, वह तो शुद्धपारिणामिक है,...** कल चला है, पृष्ठ तीसरा, उसका अन्तिम का दूसरा पैराग्राफ अथवा पहला-दूसरा से चौथा पैराग्राफ, दो लाईन का पैराग्राफ है, दो लाईन। इसे हाथ में नहीं आवे, बताओ। इसने कभी यह पुस्तक देखी नहीं होगी।

जो शक्तिरूप मोक्ष है,... क्या कहते हैं? कि मोक्ष होता है, वह किस भाव से होता है? किस पर्याय से होता है? यह बात चलती है। मोक्ष क्या? मोक्ष अपनी अवस्था में परम आनन्द की दशा, उसका नाम मोक्ष है। वह परम आनन्द की पूर्ण दशा जो पर्याय में होती है, उसे यहाँ क्षायिकभाव, पारिणामिक मोक्षभाव कहते हैं, पारिणामिक की पर्याय, हों! परन्तु वह यहाँ नहीं लेना, परन्तु यहाँ तो मोक्ष का कारण कौन है - ऐसा लेना है। समझ में आया? मोक्ष जो पूर्ण आनन्द की पर्याय है, परम शुद्ध, परम शुद्ध, उस अवस्था का कारण कौन?

तो कहते हैं कि शक्तिरूप मोक्ष है, वह तो कारण नहीं। जो त्रिकाल मोक्ष है, आत्मा का स्वभावभाव, सहजभाव, शुद्धभाव, अविनाशी ध्रुवस्वभाव, वह मोक्ष तो अनादि का है, वह तो शुद्धपारिणामिकभाव है, उसकी बात यहाँ नहीं चलती है। **प्रथम से ही विद्यमान है।**

वह त्रिकाल मोक्षस्वरूप को पहले से अनादि का अन्तर में स्वभावरूप भाव है, वह नया प्रगट होता है-ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? **प्रथम से ही विद्यमान है।**

यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है। यहाँ तो भगवान आत्मा ध्रुव, आनन्दस्वरूप, वह तो मुक्तस्वरूप ही अनादि से है, वह मोक्ष तो विद्यमान ही है, उसका यहाँ कोई प्रश्न है नहीं परन्तु उसकी पर्याय में, अवस्था में, हालत में शक्ति में से मोक्ष की-परम आनन्द की व्यक्तता प्रगट हो, उस दशा का कारण कौन है, यह बात चलती है। समझ में आया? तो कहते हैं **यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है।** शक्तिरूप के मोक्ष की बात नहीं है। समझ में आया?

इसी प्रकार... जरा सूक्ष्म है, जरा सूक्ष्म है - ऐसा कहते हैं। बहुत सूक्ष्म है - ऐसी बात तो है नहीं।

मुमुक्षु : जरा अर्थात्।

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा, अल्प।

इसी प्रकार... अन्तिम पैराग्राफ। **सिद्धान्त में कहा है कि...** भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिनको त्रिकाल ज्ञान हुआ, उस ज्ञान में जो तीन काल-तीन लोक भासित हुआ, उनकी दिव्यध्वनि निकली। दिव्यध्वनि-दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। उस आवाज को गणधरदेव ने सिद्धान्त में रचना की। उस सिद्धान्त में। **इसी प्रकार सिद्धान्त में कहा है कि - 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः'...** समझ में आया? इस श्लोक का अर्थ पंचास्तिकाय ५६ गाथा में है। संस्कृत टीका में, पंचास्तिकाय-जयसेनाचार्य की टीका में। यह '**निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः**'... समझ में आया? पहले पता नहीं था। कहते हैं कि शास्त्र में यहाँ-निष्क्रियः पारिणामिकः परन्तु कहाँ आया? समझ में आया? अभी तक दो-तीन बार पढ़ा परन्तु कहाँ आया, उसका पता नहीं था, फिर अभी-अभी पंचास्तिकाय देखते थे, चार भाव हैं न भाई उसमें? फिर कहा - लाओ इसमें होगा कुछ? है यहाँ पंचास्तिकाय? ५६-५६। पहले तीन बार पढ़ा तो कहाँ है - ऐसा ख्याल कभी नहीं। यह पहले-पहले यहाँ आता है, देखो! यह शब्द है यहाँ '**अत्र व्याख्यानेन मिश्र उपशमिक, क्षयोपशमिक, क्षायिक मोक्ष कारणम्**' भाई! यह चार भाव की ही व्याख्या है यहाँ। जयसेनाचार्य की टीका, यह भी जयसेनाचार्य की टीका है।

क्या कहते हैं ? **अत्र व्याख्यानेन** यहाँ व्याख्यान अर्थात् प्रसिद्ध कथन में मिश्र, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक, मोक्षकारणम् ...मोक्ष का कारण है। शोभालालजी ! मोक्ष अर्थात् आत्मा की परमशुद्ध आनन्ददशा। यह संसारदशा है, वह विकारदशा–दु:खदशा। यह दु:खदशा उदयभाव की है और पूर्ण आनन्द की दशा, वह क्षायिकभाव की है। उस क्षायिकभाव का कारण कौन ? उस क्षायिकभाव का कारण कौन ? कि **मिश्र, उपशम, क्षायिक मोक्षकारणम् मोहोदयो सहित उदयो बंधकारणम्** परन्तु आत्मा में जो मिथ्यात्व और राग–द्वेष की पर्याय उत्पन्न होती है, वह उदयभाव है, वह बन्ध का कारण है। तीन भाव मोक्ष का कारण है, उदयभाव बन्ध का कारण है। समझ में आया ? इसमें बहुत व्याकरण–संस्कृत की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। इसकी रुचि की आवश्यकता है। नन्दकिशोरजी !

'**शुद्ध पारिणामिक: अस्तु बंध मोक्षयो: अकारणं इति भावार्थ:**' संस्कृत है पंचास्तिकाय। **शुद्ध पारिणामिक: अस्तु** भगवान त्रिकाल शुद्धभाव, त्रिकाल ध्रुव, वह बन्ध मोक्ष का अकारण है। बन्ध और मोक्ष का कारण वह ध्रुव वस्तु नहीं। **तथा चउकतम** फिर कहा है **मोक्ष कुर्वन्ति मिश्र उपशमिक क्षायिक अभिता:** अर्थात् अभिता अर्थात् बंध उदय का भाव। **निष्क्रिय परिणामिक:** भाई ! यह श्लोक है। पहले श्लोक कहने के पश्चात् यह दूसरा श्लोक आया। ऐ..ई ! **मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रौपशमिकक्षायिकाभिधा:।** आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा सच्चिदानन्द प्रभु, उस मोक्ष की दशा का कारण मिश्र अर्थात् क्षयोपशमभाव, उपशमभाव और क्षायिक अभिता: जिसका नाम यह तीन है–उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक।

बंधमौदयिकाभावा जितनी पर्याय में अपने से मिथ्यात्व अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग की पर्याय प्रगट होती है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : बन्ध का कारण है यह बात सत्य, परन्तु अपने से..

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने से.. वह कहा न ? समयसार जयसेन आचार्य की टीका में है, १०७ गाथा, समयसार है, न भाई ! उपादेय–उपादेय करके वहाँ है, देखो ! ***अनादि बंधपर्याय वसेन:...*** संस्कृत है, भाई ! इसमें पृष्ठ १७२, गाथा १०७, संस्कृत की पहली

लाईन टीका की, जयसेनाचार्य की। यह रात्रि को प्रश्न हुआ था न? ***अनादि बंधपर्याय वसेनः*** अनादि का कर्म जो पड़ा है, उसके वश होते हैं तो विकार होता है। कहीं कर्म विकार कराता नहीं। है भाई! १०६ के बाद तुरन्त ही। समझ में आया?

परन्तु यहाँ —यहाँ आया न अपने कि चार पर्याय है, अवस्था है और एक ध्रुवतत्त्व है तो उसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय उसकी, उसमें, उसके कारण से होती है। पण्डितजी! समझ में आया? परन्तु लोगों को पता नहीं कि मार्ग क्या है, विकार क्या है, धर्म क्या? सिरपच्ची (में पड़े हैं)। यह व्रत करो, पूजा करो और भक्ति करो, हो गया धर्म... धूल भी धर्म नहीं, सुन तो सही। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप जो ध्रुव है, वह तो निष्क्रिय है। यहाँ कहा न? सिद्धान्त में पारिणामिक को निष्क्रिय कहा है तो यह गाथा है। कहाँ की गाथा है, यह पता नहीं परन्तु यह गाथा है और यह विकार जो उत्पन्न होता है, अपनी अवस्था में (उत्पन्न होता है), जिसको यहाँ चार भाव पर्यायरूप कहा, अवस्थारूप कहा, दशारूप कहा और त्रिकाली भाव पारिणामिकरूप निष्क्रिय कहा, वह त्रिकाली भाव बन्ध-मोक्ष का कारण नहीं है। समझ में आया? यह तो अलौकिक बात है! अगम्य को गम्य करना ऐसी चीज़ है यहाँ तो।

कहते हैं आत्मा में यह विकार क्यों उत्पन्न होता है? '**अनादि बंधपर्याय वसेनः**' वश होने से। कर्मबन्धन है, वह आत्मा को विकार कराता है - ऐसा तीन काल में नहीं है। परद्रव्य विकार नहीं कराता परन्तु परद्रव्य के पर्याय में आधीन हो जाता है। समझ में आया? '**वसेन**' ऐसा पाठ है। '**वीतराग स्वसंवेदन लक्षण भेदज्ञान अभावभात्**' वापस यह न्याय दिया। समझ में आया? राग से भिन्न भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु निजस्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप शुद्ध है, ध्रुव आनन्द (है)। उसको राग से भिन्न करने का वीतरागभावरूपी भेदज्ञान के अभाव के कारण... समझ में आया? '**रागादि परिणाम हि उपादेयति**' यह उपादेय की व्याख्या की है। है न? १०७ गाथा। समझ में आया? भगवान आत्मा अपनी वर्तमान पर्याय-अवस्था में... पर्याय चार प्रकार की, अवस्था चार, उसमें जो एक उदयभाव की अवस्था है, वह अनादि कर्म जड़ है, उसके आधीन आत्मा होता है तो विकार होता है। समझ में आया? आधीन न हो तो विकार नहीं होता। पर, विकार नहीं कराता। समझ में आया? १०७ गाथा। प्रवचनसार, देखो, ४५ गाथा (औदयिकाभावा:)

(जयसेनाचार्यदेव की टीका) **अत्राह शिष्य :- 'औदयिका भावाः बन्धकारणम्' इत्यागमवचनं तर्हि वृथा भवति। परिहारमाह-औदयिका भावा बन्धकारणं भवन्ति, परं किंतु मोहोदयसहिताः।** अकेला उदय बन्ध का कारण नहीं है। गति आदि का उदय होता है न? २१ बोल आये न? तो अकेला गति आदि उदय, बन्ध का कारण नहीं है। उसमें मोह मिले, मिथ्याभ्रम मिले तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? विशेष **द्रव्यमोहोदयेऽपि सति** अब जड़कर्म का उपस्थित उदय होने पर भी... उपस्थित की व्याख्या थी न! धन्नालालजी! यह उपस्थित आया, आहा..हा..! ४५ गाथा **द्रव्यमोहोदये** द्रव्य-जड़कर्म का उदय होने पर भी, उपस्थित होने पर भी **यदि शुद्धात्मभावनाबलेन भावमोहेन न परिणमति** अपनी शुद्ध भावना का आश्रय लेकर यदि विकाररूप न हो तो **तदा बंधो न भवति।** समझ में आया? वश और यह वश न हो और अपने शुद्धस्वभाव भगवान आत्मा निर्मलानन्द का आश्रय लेकर वीतरागभाव प्रगट करे तो उदय होने पर भी उसका बन्ध का कारण उत्पन्न नहीं होता। ४५ गाथा प्रवचनसार, ४ और ५। क्या कहते हैं तुम्हारे? ४५। समझ में आया? और समयसार की १०७ गाथा। जयसेनाचार्य की टीका, हों! दोनों जयसेनाचार्य की टीका है। आहा..हा..!

देखो, क्या कहते हैं? जड़कर्म का उदय जड़ में है - ऐसा होने पर भी भगवान आत्मा उसके आधीन हो जाये तो राग-द्वेष अज्ञान उत्पन्न करे और स्वभाव के आधीन हो जाये तो उदय होने पर भी राग नहीं होता, मिथ्यात्व नहीं होता, बन्धकारण नहीं होता। समझ में आया? **न परिणमति तदा बंधो ने भवति। यदि पुनः कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति** - कर्म की उपस्थिति मात्र से यदि बन्ध होता हो तो **तर्हि संसारिणां सर्वदैव मोदयस्य विद्यमानत्वात् सर्वदैव बन्ध एव, न मोक्ष इत्यभिप्रायः।** समझ में आया?

मुमुक्षु : हमेशा बन्ध रहेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : हमेशा बन्ध रहेगा। हमारे पण्डितजी (कहते हैं)। अच्छा। समझ में आया? यदि कर्म की उपस्थितिमात्र से बन्ध हो तो सर्व प्राणी को कर्म के उदय की उपस्थिति तो है तो कभी उसको मोक्ष होने का अवसर नहीं मिलेगा। धन्नालालजी!

मुमुक्षु : इसीलिए सोनगढ़वाले निमित्त को उड़ा देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त को उड़ाते क्या ? है ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त को सिद्ध करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त है, परन्तु यदि निमित्त के आधीन हो तो विकार होता है; निमित्त के आधीन न हो, भगवान आनन्दस्वरूप-भगवान सच्चिदानन्द का आश्रय लेकर वीतरागभाव से परिणमते हैं तो रागभाव से कर्म की उपस्थिति परिणमित नहीं करती नन्दकिशोरजी! इसलिए यहाँ कहने में आता है कि निमित्त आत्मा में कुछ नहीं करता। समझ में आया ? क्योंकि '**कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति**' कर्म के उदय की उपस्थितिमात्र से यदि बन्ध होता हो तो **संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य** - तो संसारी को तो कर्मोदय सदा है और **विद्यमानत्वात्** - कर्म के उदय की अस्ति तो है तो **सर्वदैव बन्ध एव,** सर्वदा बन्ध ही हो, **न मोक्ष इत्यभिप्रायः।** उसको मोक्ष नहीं होगा, सम्यग्दर्शन नहीं होगा क्योंकि कर्म विकार करावे, कर्म मिथ्यात्व करावे, कर्म अव्रत करावे, कर्म प्रमाद करावे, तो उसको छूटने का अवकाश नहीं मिलेगा। धन्नालालजी! बराबर है ? वहाँ सब बहुत गड़बड़ है। ऐसा पण्डित लोग कहते हैं और कितने ही (कि) ऐसा होता है वैसा होता है... धूल भी नहीं होता। सुन तो सही! यह तो कितना स्पष्ट है, देखो! (प्रवचनसार गाथा) ४५ में है और उसमें (है)।

यहाँ तो अपने क्या कहना है, देखो यहाँ - कि बन्ध-उदय का भाव **निष्क्रिय पारिणामिकः** अपने यह चलता है न ? ५६ वीं गाथा जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा लिया है, यह यहाँ बताते हैं, देखो! **इसी प्रकार सिद्धान्त में कहा है कि...** अपने चलता है। **'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' अर्थात्, शुद्धपारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है।** अर्थात् त्रिकाल ज्ञायक ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु तो परिणति / पर्याय बिना की चीज़ है। सेठ!

मुमुक्षु : बराबर, जिसका जोर ज्यादा हो जाये...

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका ?

मुमुक्षु : कर्म से जीव का - पटनी का आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं ऐसे पटनी आया था, यहाँ भावनगर से, नहीं ? प्रभाशंकर पटनी दीवान। दीवान था। भावनगर में, नहीं ? दरबार का दीवान था।

मुमुक्षु : राजकीय व्यक्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : राजकीय, ठीक! मैं पॉलीटिकल कहना चाहता था। यह ठीक कहा। राजकीय व्यक्ति था, व्याख्यान सुनने आया था, सारी कोर्ट आयी थी, (संवत्) १९९३ अषाढ़ कृष्ण अमावस्या, सारी कोर्ट आयी थी, तो व्याख्यान चलता था, सुना, लौकिक में बहुत मस्तिष्कवाला था, राजकीय व्यक्ति था तो उसने सुना और सुनकर खड़ा हो गया, फिर कहा – महाराज! क्या कहें? यह तो अरस-परस की लड़ाई है, अरस-परस की लड़ाई है, कभी कर्म की डोर जोर करे तो विकार और कभी आत्मा का जोर रहे। यह सेठ ने ऐसा कहा।

मुमुक्षु : परन्तु शास्त्र में ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है परन्तु वह तो निमित्त की बात है। आता है, इष्टोपदेश में-टीका में आता है। कभी जीव बलवान, कभी कर्म बलवान—यह पाठ आता है, देखो 'कम्मोबलियो' का अर्थ क्या? अपनी पर्याय में विकार करने का जोर है तो कम्मोबलियो कहने में आता है और स्वभावसन्मुख जोर होता है, अपने पुरुषार्थ से तो आत्माबलियो (बलवान) होकर विकार को उत्पन्न नहीं करता।

मुमुक्षु : वाह रे वाह! अपनी गलती से...

पूज्य गुरुदेवश्री : गलती अपनी और डालता है कर्म के ऊपर। अनादि से टेव ही ऐसी पड़ी है। समझ में आया? यह तो बड़े पण्डित का प्रश्न है, पहले से। हमारे तो ५५ वर्ष से चलता है, ५५ दो पाँच समझ में आया? (संवत्) १९७१ के वर्ष से चलता है कि कर्म से विकार होता है, कर्म से विकार होता है। बिल्कुल नहीं होता है। परद्रव्य से अपनी पर्याय में विपरीतता हो तो कभी विपरीतता छूटेगी नहीं। समझ में आया?

यहाँ क्या कहते हैं? अपने तो निष्क्रिय की बात ली थी। वह तो रात्रि के लिये प्रश्न था, इसलिए १०७ गाथा ली थी।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ही ऐसी है, भाई! परन्तु वह अपनी स्वतन्त्र वर्तमान दशा, उस दशा का कर्ता तो आत्मा है। समझ में आया? आत्मा अर्थात् वर्तमान भले पर्याय, परन्तु

आत्मा। परन्तु वह कर्ता कोई जड़द्रव्य है ? 'करे कर्म सो ही करतारा' विकार करे, वह विकार का कर्ता है। समझ में आया ? 'जो जाने सो जाननहारा' परन्तु राग का कर्ता न होकर मैं तो ज्ञान चिदानन्दमात्र हूँ – ऐसी दृष्टि करे तो राग का कर्ता न होकर राग का ज्ञाता होता है। ऐ सेठ ! जोर नहीं है। आहा..हा.. !

भगवान आत्मा '**निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः**' अर्थात् भगवान ध्रुव अविनाशी जो सत् है, अविनाशी जो ध्रुव सत् है, नित्य सत् है, एक समय की पर्याय / परिणतिरहित चीज़ है। एक समय की अवस्था है, उस सिवाय की चीज़, ऐसा जो ध्रुव भगवान आत्मा, परम स्वभावभाव, वह तो निष्क्रिय है। उसमें कोई परिणति विकार की नहीं और मोक्षमार्ग की परिणति / पर्याय उस द्रव्य में नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? **निष्क्रिय का क्या अर्थ है ? (शुद्धपारिणामिकभाव)...** भगवान त्रिकाल ध्रुव सच्चिदानन्दप्रभु नित्यानन्द अविनाशी अंश वह **बन्ध के कारणभूत जो क्रिया...** देखो ! बन्ध के कारणभूत क्रिया **रागादिपरिणति, उसरूप नहीं है...** पर्याय में-अवस्था में विकार है; ध्रुव, विकार का कारण नहीं और ध्रुव में विकार है नहीं। आहा..हा.. !

मुमुक्षु : त्रिकाल में विकार नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं है, विकार पर्याय में है; इसीलिए तो चार बोल पर्यायरूप कहे, चार भाव पर्यायरूप / अवस्थारूप और एकभाव द्रव्यरूप कहा। समझ में आया ? सादी बात है परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं न, इसलिए बाहर की सिरपच्ची में घुस गये हैं धर्म के नाम से भी। यह सत्य क्या है उसका पता नहीं।

कहते हैं **निष्क्रिय का क्या अर्थ है ? (शुद्धपारिणामिकभाव)...** त्रिकाल भाव, त्रिकाल दल, लो ! दल याद आया। एक प्रश्न आया था दर्पण का, दल लिया है न भाई ! दल क्या ? ऐसा शब्द है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय है न ? पहली कड़ी, वन्दन किया है न वन्दन ! दर्पण के दल में जैसे सब दिखता है, वैसे भगवान की पर्याय में सब दिखता है – ऐसा वहाँ पाठ है, हों ! परन्तु दल का अर्थ वहाँ दर्पण की पर्याय लेना – ऐसा है। समझे या नहीं ?

है पुरुषार्थसिद्धियुपाय ? दल का फिर यह वापस मस्तिष्क में उठा था। दल –तल। दर्पणतल, तल, सपाटी ऊपर की – देखो !

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र॥१॥

देखो, क्या कहते हैं, देखो! दर्पण तल। दर्पण जो है न, दर्पण। क्या कहते हैं? अरीशा। उसकी ऊपर की सपाटी की पर्याय में यह त्रिकाल जानने में आता है, त्रिकाली दल में नहीं। तल में जानने में आता है, वह दल में नहीं।

मुमुक्षु : तल और दल दो शब्द....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर उसके साथ। फिर से – जैसे दर्पण है दर्पण, वह तो सारा दल भी है और एक समय की अवस्था दशा में ऊपर के तल अर्थात् नीचे का न लेकर यहाँ से–ऊपर से लेना, नहीं तो तल अर्थात् तलिया लेना है – परन्तु वह न लेकर बाहर की जो अवस्था उसका नाम तल–दर्पण में एक समय की अवस्था में जो–जो चीज़ देखने में आती है न? वह तो दर्पण की अवस्था है। वह चीज़ नहीं। एक समय की दर्पण का दल जो त्रिकाल है, उसकी ऊपर की अवस्था को यहाँ तल कहते हैं। उस तल में सब जानने–देखने में आता है; इसी प्रकार भगवान आत्मा... यहाँ देखो! ज्ञान की–केवलज्ञान की पर्याय भी क्षायिकभाव से भी पर्याय है तो उस पर्याय में लोकालोक जानने में आता है। दर्पण का दल जो त्रिकाल है, वैसे यहाँ पारिणामिकभाव जो त्रिकाल दल है, उसमें ज्ञान की पर्याय नहीं, केवलज्ञान की पर्याय नहीं। आहा! समझ में आया?

यह तो अमृतचन्द्राचार्य का श्लोक – **दर्पणतल इव सकला** समस्त लोकालोक, तीन काल के द्रव्य / वस्तु, उसकी शक्ति और उसकी अवस्था। जैसे दर्पण के तल में देखने में आता है; (उसी प्रकार) भगवान की ज्ञानपर्याय में जानने में आता है। उस ज्ञान का दल जो त्रिकाल ध्रुव है, उसमें नहीं। ऐ... हीराभाई! आहाहा!

भगवान ध्रुव वस्तु है, वह तो तल की एक समय की केवलज्ञान की पर्याय से भी भिन्न है। जैसे उस दर्पण का दल भिन्न है, एक समय की पर्याय... यहाँ दृष्टान्त, भाई! बहुत दिया है भाई ने, अपने सोगानी, सोगानी ने दृष्टान्त बहुत बार दिया है। निहालचन्द्र सोगानी। समझ में आया? कलकत्तावाला। जो आत्मज्ञान पाकर स्वर्ग में चले गये और अल्पकाल में केवलज्ञान लेंगे – ऐसी उसकी ताकत है। समझ में आया? उसने बहुत बार दर्पण तल–

दर्पण दल, दर्पण दल ऐसी बात ली है कि दर्पण का दल तो त्रिकाल भिन्न है, ऊपर की अवस्था में सब स्वच्छता के कारण वह सब प्रतिबिम्ब-बिम्ब का प्रतिबिम्ब, उसकी पर्याय में देखने में आता है। दर्पण का दल तो अत्यन्त भिन्न है। समझ में आया?

इसी प्रकार भगवान आत्मा का ज्ञान दल जो त्रिकाल है, ज्ञान दल-गुण, ध्रुव, उसमें जानने की क्रिया की परिणति नहीं, वह तो निष्क्रिय है। आहा..हा..! समझ में आया?

तो दर्पण तल का कहा न? यहाँ तल का अर्थ ऐसा न लेकर, ऐसा तल लेना।

मुमुक्षु : तल अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर की सपाटी, ऊपर की सपाटी, दर्पण की ऊपर की सपाटी। इसी प्रकार भगवान आत्मा आनन्दकन्द ज्ञान का ध्रुव वस्तु है, उसकी ऊपर की पर्याय उसकी सपाटी है, वस्तु तो वस्तु ध्रुव है, उसमें तीन काल का जानना-फानना की पर्याय उसमें है नहीं। अरे! यह! समझ में आता है न? समझ में आये ऐसी बात है, हों! (न समझ में आये) ऐसा कुछ नहीं। भगवान तीन लोक का नाथ स्वयं है, उसे कहाँ इसका पता है। समझ में आया? परमात्मास्वरूप स्वयं अपने में पूरा पड़ा है। कहीं खोजते-खोजते कहीं पर्वत में पड़ा होगा, कहीं शत्रुंजय में होगा, कहीं सम्मेदशिखर में होगा। ऐई आता है न? भाई! समयसार नाटक में (आता है) 'मेरो धनी है मेरे पास' ऐसा कुछ आता है। बन्धद्वार है उसमें होगा। (४८ पर)

कहीं होगा? 'मेरो धनी है' ऐसा कहीं लिखा है। यह यहाँ आया देखो! रागादि शुद्धता-अशुद्धता अलख की। विकारी पर्याय भी भगवान की पर्याय है और त्रिकाली शुद्धपर्याय भी अलख, पर्याय है, हों! निर्मल पर्याय, वह भी आत्मा की है, वह कहीं पर्याय पर की है - ऐसा है नहीं। समयसार नाटक में, बन्धद्वार। **केई उदास रहे प्रभु कारन, केई उदास रहे प्रभु कारन, केई कहे उठी जाय कहीके**-चले जाएं ऐसे, मिलेगा कहीं, **केई प्रनाम करे गढ़ि मूरति**-मूर्ति-गढ़ को प्रणाम करता है। भगवान! कुछ देना। ''**केई पहाड़ चढै चढि छींकै।**''

छींकै क्या कहलाता है? यह डोली, डोली में चढ़ते हैं न लोग ऊपर! '**केई पहाड़ चढ़े चढि छींकै' केई कहे असमान के उपरि, केई कहे प्रभु हेठ जमी के'**, कोई कहे नीचे

और कोई कहे ऊपर। अरे सुन तो सही भगवान! '**मेरो धनी नहीं दूर देशान्तर**' मेरा भगवान नहीं दूर देशान्तर–काल से दूर नहीं और क्षेत्र से दूर नहीं। '**मोही में है मोही सूझत नीके**' – मुझमें है, मैं परमात्मा अखण्डानन्द सच्चिदानन्द शुद्धस्वरूप हूँ '**मोही में है मोही सूझत नीके**' बराबर मुझे सूझता है। बनारसीदास (कहते हैं)। कलश टीका में है नहीं, ऊपर से लिया है। '**मेरो धनी नहीं दूर देशान्तर, मोही में है मुझे सूझत नीके।**' समझ में आया? अन्य क्षेत्र में कोई नहीं, हममें हैं और हमें भले प्रकार अनुभव में आता है। बन्ध द्वार–४८। समझ में आया?

क्या कहते हैं? जैसे दर्पण का दल त्रिकाल कायम दल–पिण्ड में स्वच्छता की ऊपर की जो पर्याय है, उसमें–पर्याय में सब झांईं–प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। दल तो ऐसा का ऐसा है। इसी प्रकार भगवान आत्मा का जो त्रिकाली दल है, एक समय की केवलज्ञान की पर्याय सिवाय का, सिवाय कहते हैं न? अलावा। सब तुम्हारी हिन्दी आती है हमें। यहाँ अलावा शब्द चलता है। एक समय की केवलज्ञान की पर्याय जिसमें तीन काल–तीन लोक जानने में आता है, उस पर्याय से दल तो अत्यन्त भिन्न है। मूलचन्दभाई!

इस **निष्क्रिय का क्या अर्थ है? बन्ध के कारणभूत जो क्रिया–रागादिपरिणति, उसरूप नहीं है...** देखो! उदयभाव की परिणतिरूप राग अपनी पर्याय में होता है, वह द्रव्य में नहीं–ध्रुव में नहीं, अन्तरस्वभाव त्रिकाल आनन्दमूर्ति भगवान में राग नहीं। राग की – बन्ध की पर्याय, बन्ध के कारण की अवस्था, वह त्रिकाल पारिणामिक सहजभाव में है नहीं। कहो, समझ में आता है या नहीं? यह तो सादी भाषा है। इसमें कोई ऐसी कोई नहीं है। **उसरूप नहीं है।** जैसे दर्पण में कोयला, केरी–आम अन्दर दिखता है न, तो आम अन्दर है नहीं; अन्दर में तो दर्पण की ऊपर की तल की सपाटी की पर्याय है वह तो। वह तो कोई आम नहीं, कोयला नहीं, वैसे भगवान आत्मा अखण्डानन्द ध्रुव प्रभु अविनाशी तत्त्व जो है, ऊपर की एक समय की पर्याय में तीन काल–तीन लोक देखते हैं, वह एक समय की पर्याय और राग वह द्रव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वह अशुद्धता जिसे दोष कहते हैं, वह द्रव्य में नहीं। वह अशुद्ध की परिणति, वस्तु में नहीं है। क्योंकि वह तो अशुद्ध परिणति है, पर्याय है, सक्रिय अवस्था का भाव है। वह

सक्रिय राग की अवस्था का भाव, त्रिकाल द्रव्य में है नहीं। शोभालालजी! यह तो जँचे ऐसा है, हों! समझ में आये ऐसा है। न समझ में आये ऐसा नहीं। न समझ में आये – ऐसा यहाँ हमारे पास नहीं कहना। वह था न भाई! क्या कहलाता है?

मुमुक्षु : नेपोलियन, अशक्य मेरे पास नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नेपोलियन। अशक्य हमारे पास कहना नहीं। वह तो व्यर्थ का। पर का कर सके नहीं न! अशक्य है, वह मेरे पास लाना नहीं... उसके शब्दकोष में नहीं। इसी प्रकार यहाँ न समझ में आये – ऐसा आत्मा में है नहीं। शब्दकोष में, सिद्धान्त में भी ऐसा है नहीं।

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अखण्ड आनन्दधाम की पर्याय में न समझने में आवे – ऐसी चीज़ वह है नहीं। कलंक लगता है। न समझ में आये – ऐसा कहना यह कलंक लगता है। कहते हैं। शुद्धपारिणामिकभाव जो त्रिकाल दल, वह तो बन्ध के कारणभूत क्रिया, क्रिया... देखो, क्रिया कहा न? वह (पारिणामिकभाव) निष्क्रिय है न? त्रिकाल शुद्धभाव ध्रुव निष्क्रिय है तो रागादि की क्रिया कहने में आयी, जड़ की क्रिया नहीं, पर की क्रिया नहीं। आहा..हा..!

बन्ध के कारणभूत जो क्रिया... अर्थात् परिणति अर्थात् पर्याय, **रागादिपरिणति...** राग, मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष, क्रोध-मान की अवस्था **उसरूप...** वह त्रिकाली दल भगवान ध्रुव वह नहीं है। बराबर है? इसके लिये तो सामने पन्ने रखे हैं। **और मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया...** मोक्ष के कारणरूप क्रिया **शुद्धभावना...** भी पर्याय **शुद्धभावना-परिणति,...** वह रागादि परिणति थी, यह शुद्धभावनापरिणति है। आत्मा में शुद्ध ध्रुव का लक्ष्य करके वीतरागी दर्शन, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी परिणति उत्पन्न होती है, वह परिणति क्रिया है। वह त्रिकाली निष्क्रिय में है नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यही बात समझाने को आपने शिविर लगाया था?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कुछ पता नहीं, हमें विकल्प तो इतना था कि यह गाथा अमृतचन्द्राचार्य की चल गयी, तो फिर कहा यह गाथा रह जाती है, रह जाती है तो शिविर के समय लेंगे, कहा – ऐसा विकल्प आया था तो रामजीभाई ने छपा दिये

१५०० पन्ने, सबके हाथ में रखे तो कैसा अर्थ होता है। अद्धर से अर्थ होगा? कहाँ से होगा? समझ में आया?

भगवान आत्मा अविनाशी जो अंश है त्रिकाल और पर्याय है, वह तो नाशवान है। चाहे तो केवलज्ञान की पर्याय ही नाशवान है। ऐ... नन्दकिशोरजी!

मुमुक्षु : क्या कहते हैं आप?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं यह? केवलज्ञान है, यह गुण के उत्पाद की नयी पर्याय है, एक समय का जो केवलज्ञान हुआ, वह दूसरे समय नहीं रहेगा, दूसरे समय व्यय होगा, नाश होगा, केवलज्ञानपर्याय नाशवान है; भगवान त्रिकाली पारिणामिकभाव अविनाशी है। समझ में आया? तो अविनाशी भगवान पर दृष्टि देने से सम्यग्दर्शन और धर्म होता है। समझ में आया?

कहते हैं मोक्ष के कारणभूत दशा... मोक्ष तो पूर्ण दशा है। उसका उपाय-उपाय, कारणभूत लिया न? वास्तव में पर्याय में है - ऐसा कहते हैं। **जो क्रियाशुद्ध-भावनापरिणति,...** देखो! शुद्धभावना अर्थात् शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव में एकाग्रतारूप परिणति, शुद्ध त्रिकाली भाव में एकाग्ररूपी अवस्था, जिसे मोक्षमार्ग कहते हैं, जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं। ध्रुव **उसरूप भी नहीं है;...** मूलचन्दभाई! आहाहा! ईश्वर की लीला है ऐसी अपनी। अपनी लीला, हों! दूसरे की नहीं। यह भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु ध्रुव अविनाशी भगवान अन्दर वस्तु का भाव, उसमें तो कहते हैं, यह भाव पारिणामिकभाव से पहिचानने में आता है, इस भाव में बन्ध का कारण जो मिथ्यात्व-राग-द्वेषपरिणाम जो बन्ध के पाँच कारण कहते हैं न? मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग-वह क्रिया, ध्रुव में नहीं है। पारिणामिकभाव जो निष्क्रिय है, उसमें वह क्रिया नहीं। ऐ... हिम्मतभाई! यह थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा। कभी सुना ही नहीं होगा इसने। जयन्तीभाई को तो अभी नया लगे न? कहो, समझ में आया?

मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया... देखो, क्रिया तो आयी; कोई कहते हैं कि क्रिया को उड़ाते हैं, परन्तु कौन सी क्रिया? सुन तो सही।

मुमुक्षु : एक क्रिया बाहर की और एक शुभ की क्रिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुभ की क्रिया। समझ में आया ? शरीर, वाणी की क्रिया पर्याय-वह तो जड़ में रही और राग की क्रिया / पर्याय तो विभाविक क्रिया वह तो बन्ध के कारण में रही। समझ में आया ? व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह तो बन्ध के कारण में गयी, उदयभाव में गयी। समझ में आया ? बन्ध का कारणरूप जो रागादि, वह दया, दान, व्रत, आदि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, वह मिथ्यात्व नहीं, वह तो राग है। वह राग की परिणति, बन्ध के कारण में गयी; वह मोक्ष के कारण में नहीं, वह क्रिया मोक्ष के कारण की नहीं। आहाहा! कहो, **मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया,..** वह क्रिया है या नहीं अन्दर ? मोक्ष के कारण की क्रिया आत्मा में है परन्तु कौन सी क्रिया **शुद्धभावनापरिणति,..** आहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण ध्रुव सच्चिदानन्द नित्यानन्द में दृष्टि लगाने से, उसे ध्येय बनाने से एक समय का निमित्त, राग और पर्याय का ध्येय छोड़ करके... इस ग्रहणपूर्वक वह त्याग होता है। आहा..हा..! क्या कहा ? भगवान ध्रुवस्वरूप को ध्येय बनाकर जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्रिया, वीतरागी पर्याय उत्पन्न हुई तो मिथ्यात्व और राग का त्याग हो गया, वह त्याग हो गया। आहाहा! समझ में आया ?

मोक्ष के कारणभूत... मोक्ष जो पूर्ण सिद्धपद—ऐसी निर्मल अवस्था सिद्ध की, वह भी पर्याय है, वह पर्याय भी ध्रुव में तो नहीं परन्तु उस पर्याय का कारण, शुद्धभावनापरिणति (अर्थात्) वीतराग निर्दोष श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति - ऐसी जो सक्रिय अर्थात् पर्याय की परिणति, ध्रुव में नहीं, वह पारिणामिकभाव में है नहीं। अरे, गजब बात भाई! कितनों ने ही तो ऐसा सुना नहीं होगा। मूलचन्दभाई को ठीक, कितनों ने ही तो सुना भी नहीं होगा। हिन्दुस्तान में ऐसे से ऐसे शिखर जाये-सम्मेदशिखर जाये और ऐसे जाये, पालीताना जाये..

मुमुक्षु : दृष्टि में अकर्ता, व्यवहार से कर्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार से कर्ता धूल में भी नहीं है। सुन तो सही। पर के कर्ता की तो बात भी नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : सुना भी नहीं होगा - इसका क्या मतलब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना ही नहीं क्या चीज़ है। यों सुना ही नहीं; कान में बात नहीं पड़ी। समझ में आया ? ऐ... अमुलखचन्दजी! देखो, बात अलौकिक बात है। आहाहा!

भगवान! तेरी चीज़ तो देखा, पहले श्रद्धा-ज्ञान में तो ले। आहाहा! समझ में आया? अद्‌भुत गाथा, अलौकिक बात है, हों! यह तो इस बार शिविर में अच्छी बात यह निकल गयी है, हों! लो, यह तो दसवाँ व्याख्यान है न, यह दसवाँ व्याख्यान है, इस पन्ने में से दसवाँ व्याख्यान है। ऐ..ई..!

मुमुक्षु : भाविभागन वश बात आ गयी!

पूज्य गुरुदेवश्री : सत्य बात है, हों! भाई! बात तो ऐसी है।

मुमुक्षु : अनुभव की तैयारी, ऐसी वाणी निकलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर के मुख से जो दिव्यध्वनि आयी, यह आयी है।

कहते हैं भगवान आत्मा दो अंश—एक त्रिकाली ध्रुव अंश और एक समय की पर्याय, अवस्था का अंश, तो पर्याय का जो अंश है, उसमें ये दो प्रकार हैं। एक विकार की पर्याय का अंश, बन्ध का कारणरूप, वह भी ध्रुव में नहीं और एक मोक्ष का कारणरूप शुद्ध निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष का मार्ग जो निर्मल वीतरागी पर्याय है, वह भी ध्रुव में नहीं है। क्योंकि वह क्रिया है और वस्तु अक्रिय है। आहाहा! कभी सुना भी नहीं होगा। ऐ... हिम्मतभाई! सब समय ऐसा का ऐसा बिताया। वाँचन करना और यह करना और हो हा... यहाँ बना दिया कॉलेज, क्या कहा? बोटाद में कोई जयन्तीभाई, क्या कहा? बोटाद में कहीं था या नहीं?

मुमुक्षु : स्मारक बनाया, कॉलेज।

पूज्य गुरुदेवश्री : कॉलेज बनाया, क्या कहें भाषा नहीं आती। बैठे रहे ऐसे जरा हाथ रखकर, धूल भी नहीं किया कुछ अब सुन न? कौन करे? क्या किया यह? कॉलेज-फॉलेज कौन करे? कॉलेज तो जड़ की अवस्था, उस काल में पर्याय के परिणमन का काल हो तो स्वकाल हो तो होता है, वहाँ दूसरा कोई कॉलेज तो कर सकता है?

मुमुक्षु : कोई करता तो होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, करता है न? ये परमाणु, परमाणु पलटते.. पलटते.. पलटते..

जैसे नदी का प्रवाह चलता है और प्रवाह जैसे नदी में आता है, वैसे पलटते-पलटते पर्याय होती है, उसमें दूसरा कौन करे ? यह तत्त्व है या नहीं, यह जड़ ? समझ में आया ?

यहाँ तो राग करते हैं, वह भी मिथ्यात्वभाव में है, राग मेरा और राग का कर्तव्य मेरा, चला जा संसार में भटकने को, क्योंकि कर्ता हो, वह भोक्ता होता ही है। आहाहा! यहाँ तो मात्र इतना बतलाना है कि भगवान त्रिकाली प्रभु अविनाशी शक्ति का सत्व / भाव, वह निष्क्रिय है। उसमें हालत / पर्याय / दशा ऊपर होती है। समझ में आया ? उस दशा में दो प्रकार अथवा चार भाव हैं - एक उदयभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव, क्षायिकभाव है तो उसमें बन्ध की कारणभूत जो क्रिया उदयभाव.. देखो, उदय को तत्त्व कहा न ? मोक्षशास्त्र में दूसरे अध्याय में पहला बोल (में कहा है) मिश्र, उदय आदि स्वतत्त्व-जीव का स्वतत्त्व-पाँचों को स्वतत्त्व कहते हैं। जीव का स्वतत्त्व, वह उसका सत्व है। पर्याय का अंश तत्त्व उसका है। समझ में आया ?

यह तो यहाँ बताया कि चार भाव पर्यायरूप है। आहाहा! कहते हैं, मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया, पलटना-पलटना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्विकल्प शान्ति और आनन्दरूप दशा, वह शुद्धभावनापरिणति, वह वीतरागी अवस्था, निर्दोष दशा, जो ध्रुव को ध्येय करके बनी, परन्तु उस ध्रुव का ध्येय करके जो शान्ति बनी, वह शान्ति की क्रिया निष्क्रिय ध्रुव में नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?

एक ऐसी चीज़ है। वीतरागमार्ग में ऐसा ख्याल तो आयेगा या नहीं इसको ? समझ में आया ? आहाहा! **शुद्धभावनापरिणति**-परिणति। परिणति समझे पर्याय ? शुद्धभावना अर्थात् देखो! ये भावना वे कहते हैं न-भावना अर्थात चिन्तवना, विकल्प, वह नहीं। यहाँ तो शुद्ध ध्रुव में एकाग्र होकर वीतरागी निर्दोष आनन्द की पर्याय प्रगट हुई, उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को शुद्ध भावना कहते हैं। संकल्प-विकल्प चिन्तवन करना, वह भावना नहीं, वह उदयभाव में गये। वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया ?

शुद्धभावनापरिणति, उसरूप भी नहीं है;... उसरूप भी निष्क्रिय जो ध्रुवचीज़ अविनाशी है.. है.. है.. है.. अनादि है भगवान। समझ में आया ? क्योंकि यह तो है। अनादि का है। समझ में आया ? यह वस्तु तो अनादि की है। जो अनादि की है, वह दृष्टि में आयी

तो कहते हैं कि उस दृष्टि की क्रिया ध्रुव में नहीं। समझ में आया? दृष्टि / धर्म तो नयी पर्याय उत्पन्न हुई; धर्म कोई गुण नहीं; धर्म कोई द्रव्य नहीं; धर्म तो पर्याय है, अवस्था है। समझ में आया? वह अवस्था, त्रिकाल रहनेवाली चीज़ को ध्येय बनाकर जो पर्याय उत्पन्न हुई, वह मोक्ष के कारणरूप पर्याय निष्क्रिय ध्रुव में नहीं है। जिसके ध्येय बनाया, उसमें वह क्रिया नहीं है। आहाहा! ऐ... भीखाभाई! गजब बात, भाई! आहाहा! हैं?

मुमुक्षु : आप जो कहो वह बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, कौन कहे?

इसलिए ऐसा जाना जाता है कि.. इस कारण ऐसा जानने में आता है कि **शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है,..** देखो! निष्क्रिय है, इसलिये ध्येयरूप है। निष्क्रिय है, इस कारण ध्येयरूप है। सक्रिय परिणाम, ध्येयरूप नहीं। सक्रिय परिणाम, द्रव्य को ध्येय बनाते हैं। आहाहा! शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है। अन्तर ज्ञायक त्रिकाली भगवान सत् अविनाशी, वह दृष्टि में ध्येयरूप है। **ध्यानरूप नहीं है।** यह ध्यान किसे कहा? शुद्धभावनापरिणति, शुद्धभावनापरिणति, वह ध्यान है। वह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव से तीन गिनने में आया, वह। समझ में आया? यह पन्ना तो जरा पढ़े और विचारे तो कुछ ख्याल आवे, पन्ना घर ले जाना, इसमें कोई दिक्कत है नहीं। समझ में आया? पढ़े तो सही कि ऐसा अर्थ किया उसमें से, छोड़कर जाये तो पता नहीं पड़े कुछ। ऐसा पन्ना तो रक्षा करना, हों! पन्ने की बराबर।

मुमुक्षु : पन्ने के अलावा कुछ तो दो महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देते हैं न? क्या कहते हैं? कौन दे और कौन ले? आहाहा! यह पर्याय कहीं बाहर से आती है? यह पर्याय, पर्याय में से, द्रव्य में से आती है। परन्तु द्रव्य ध्रुव है, वह तो त्रिकाली में ध्रुव सदृश है, भेदरूप कहने से वह पर्याय ध्रुव में से-द्रव्य में से आती है। आहाहा!

सामान्यरूप जो ध्रुव है, वह तो पर्यायरहित अभेद चीज़ है। समझ में आया? इसलिए ध्यानरूप नहीं। मोक्षमार्ग ध्यान है, मोक्षमार्ग ध्यान है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय ध्यानरूप है। शुद्धभावनापरिणति / पर्याय, ध्यानरूप है; ध्रुव, ध्यानरूप नहीं है।

समझ में आया ? **ध्यानरूप नहीं है। किसलिए ? क्योंकि ध्यान विनश्वर है...** आहाहा ! लो ! क्षायिकसमकित भी एक समय की पर्याय है। गजब बात ! समझ में आया ?

(और शुद्धपारिणामिकभाव तो अविनाशी है)। भगवान त्रिकाली अखण्डानन्द प्रभु है.. है.. है.. है.. अनादि-अनन्त है, वह तो अविनाशी चीज़ है। परिणति / अवस्था है, वह तो बदलती-नाशवान है; इसलिए नाशवान चीज़, ध्रुव में है नहीं। ध्रुव का ध्येय हो, परन्तु उसमें ध्यान की पर्याय क्यों नहीं है, इसका कारण विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो सुगम है

जिस प्रकार किसी जीवित राजकुमार को — जिसका शरीर अति कोमल हो- जमेशदपुर-टाटानगर को अग्नि की भट्टी में झौंक दिया जाये तो उसे जो दुःख होगा, उससे अनन्तगुना दुःख पहले नरक में है और पहले की अपेक्षा दूसरे, तीसरे आदि सात नरकों में एक-एक से अनन्तगुना दुःख है —ऐसे अनन्त दुःखों की प्रतिकूलता की वेदना में पड़े हुए, घोर पाप करके वहाँ गए हुए, तीव्र वेदना के गंज में पड़े होने पर भी किसी समय कोई जीव ऐसा विचार कर सकते हैं कि अरे रे ! ऐसी वेदना ! ऐसी पीड़ा ! ऐसे विचार को बदलकर स्वसन्मुख वेग होने पर सम्यग्दर्शन हो जाता है। वहाँ सत्समागम नहीं है, परन्तु पूर्व में एक बार सत्समागम किया था, सत् का श्रवण किया था और वर्तमान सम्यक् विचार के बल से, सातवें नरक की महा तीव्र पीड़ा में पड़ा होने पर भी, पीड़ा का लक्ष्य चूककर सम्यग्दर्शन होता है, आत्मा का सच्चा वेदन होता है। सातवें नरक में पड़े हुए सम्यग्दर्शन प्राप्त जीव को वह नरक की पीड़ा असर नहीं कर सकती, क्योंकि उसे भान है कि मेरे ज्ञानस्वरूप चैतन्य को कोई परपदार्थ असर नहीं कर सकता। ऐसी अनन्ती वेदना में पड़े हुए भी आत्मानुभव को प्राप्त हुए हैं, तब फिर सातवें नरक जितना कष्ट तो यहाँ नहीं है न ? मनुष्यपना पाकर रोना क्या रोता रहता है ? अब सत्समागम से आत्मा की पहिचान करके आत्मानुभव कर ! आत्मानुभव का ऐसा माहात्म्य है कि परीषह आने पर भी न डिगे और दो घड़ी स्वरूप में लीन हो तो पूर्ण केवलज्ञान प्रगट करे ! जीवन्मुक्तदशा हो - मोक्षदशा हो। तब फिर मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्रगट करना तो सुगम है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

यह समयसार, ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका। क्या चलता है, देखो! कि यह आत्मा वस्तु है जो त्रिकाल ध्रुव है, उसे तो शास्त्र में निष्क्रिय कहा है। निष्क्रिय अर्थात् धर्म की जो पर्याय, बन्ध-मोक्ष की पर्याय जो है, उससे रहित कहने में आया है। समझ में आया?

तो कहते हैं कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव जो सम्यग्दर्शन का ध्येय.. समझ में आया? वह तो निष्क्रिय है। उसमें मोक्षमार्ग की पर्याय और बन्धमार्ग की अवस्था-जो पर्याय, वह सक्रियपना है-निर्मल अवस्था जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह भी सक्रिय परिणाम है। उस त्रिकाली वस्तु में वह है नहीं; इस कारण ध्यान जो है-उसका जो ध्यान करना है, वह ध्यान है, वह तो पर्याय है। समझ में आया?

इसलिए ऐसा जाना जाता है कि शुद्धपारिणामिकभाव ध्येयरूप है,.. त्रिकाल ध्रुव.. बहुत समेट करके संक्षेप में लाये। जिसको धर्म करना है तो धर्म की पर्याय में ध्येय / लक्ष्य करने योग्य तो त्रिकाली चीज़ है। क्योंकि ध्यानरूप, वह ध्येय नहीं है। त्रिकाली वस्तु है, वह मोक्षमार्गरूप नहीं है। समझ में आया? **ध्यानरूप नहीं है।** कौन ध्यानरूप नहीं? त्रिकाल वस्तु अविनाशी ध्रुव। ध्रुव पर से तो रहित राग से तो रहित परन्तु अपनी निर्मल पर्याय से भी रहित.. समझ में आया? वह ध्येय है; ध्यानरूप नहीं। वह पारिणामिकभाव ध्यानरूप नहीं। **किसलिए? क्योंकि ध्यान विनश्वर है...** ध्यान जो आत्मा का शुद्धस्वरूप के प्रति एकाग्रता, वह तो नाशवान है। आहाहा! समझ में आया? **(और शुद्धपारिणामिकभाव तो अविनाशी है)।** त्रिकाल वस्तु ध्रुवस्वरूप सत्-उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् में उत्पाद-व्यय परिणाम है, वह तो नाशवान है - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? वह तो पर्याय / वर्तमान अवस्था का लक्ष्य करनेवाला नय, पर्यायार्थिकनय का विषय है और पारिणामिक त्रिकाल जो भाव है, वह द्रव्यार्थिकनय-द्रव्य त्रिकाली, उसका वह विषय है। समझ में आया?

तो कहते हैं **श्री योगीन्द्रदेव ने भी कहा है..** जयसेनाचार्य टीका करते हुए आधार देते हैं कि मैं कहता हूँ इतना ही नहीं, परन्तु योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश के रचनेवाले महामुनि सन्त थे.. समझ में आया ? उन्होंने भी कहा है। क्या कहा है ? देखो ! परमात्मप्रकाश गाथा ६८। ६ और ८।

'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ बन्धु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमथे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥'

भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जिनवरदेव ने ऐसा कहा है कि **हे योगी!..** अर्थात् आत्मा के आनन्दस्वरूप में जुड़ान करनेवाले, एकाग्रता करनेवाले हे धर्मात्मा ! ऐसा सम्बोधन करके कहा है। हे धर्मी ! **परमार्थ से जीव, उपजता भी नहीं है,...** आहाहा ! सिद्धपर्यायरूप से उपजना, वह भी नहीं। इस जन्म में-गति में उपजना, वह भी जीव में नहीं है। समझ में आया ? **मरता भी नहीं है..** ध्रुव चीज़ उत्पन्न भी नहीं होती और विनाश भी नहीं होता। बराबर है ? **और बन्ध-मोक्ष नहीं करता..** भगवान आत्मा जो ध्रुव चैतन्यवस्तु, जो द्रव्यार्थिक-शुद्धद्रव्यार्थिक, द्रव्य जिसका प्रयोजन है—ऐसे नय की विषय जो वस्तु है, वह बन्ध-मोक्ष नहीं करती। बन्ध के परिणाम को भी नहीं करती और मोक्ष के परिणाम को-मोक्ष को ही नहीं करती। गजब ! समझ में आया ? **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** अब ६८वीं गाथा लेते हैं। देखो, उसमें है न, परमात्मप्रकाश।

उसमें कहा है, तब कोई बन्ध-मोक्ष न करे तो मोक्ष करने का पुरुषार्थ नहीं है न आत्मा में ? यह तो यहाँ इनकार किया है। ध्रुव में तो है नहीं। समझ में आया ?

भावार्थ — परमात्मप्रकाश में है। ***यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति का अभाव होने पर..*** देखो, रतनचन्दजी आदि कहते हैं, देखो ! शास्त्र में तो पंगु कहा है - कर्म से सब होता है, आत्मा से कुछ होता नहीं - ऐसा कहते हैं उसमें। परन्तु वह तो कर्म से होता है, यह कैसी दृष्टि से ? जिसका स्वभाव शुद्ध आनन्द है - ऐसी दृष्टि हो गयी, आनन्द का अनुभव हुआ, अब थोड़ा रागादि बाकी है, वह कर्म से उत्पन्न होता है और कर्म से नाश होता है - ऐसी बात कही है। समझ में आया ? फिर से-जो शुद्ध आत्मा है, परिपूर्ण ध्रुव है, उसका अनुभव हुआ है कि मैं तो आनन्द और शुद्ध ध्रुव चैतन्य हूँ - ऐसे अनुभव की

पर्याय में.. अब बाकी जो कुछ जन्म-मरण रहा, वह आत्मा का नहीं, वह कर्म के कारण से है, अपने स्वभाव से नहीं - ऐसा कहने में आता है। तो वे लगाते हैं कि देखो! कर्म से होता है, तब कहते हैं कि ***यद्यपि यह आत्मा शुद्धात्मानुभूति का अभाव होने पर..*** भगवान आत्मा आनन्द है - ऐसा अनुभव न होने पर ***शुभ-अशुभ उपयोग में परिणमन करके..*** शुभ और अशुभ परिणमन अज्ञानी करता है। समझ में आया? भान हुआ चैतन्यमूर्ति आत्मा का तो ऐसे भान में धर्मी को शुभाशुभ परिणमन अपनी पर्याय में है ही नहीं। वह है, वह सब कर्म का कार्य है और छूटे तो कर्म से छूटे-ऐसा न्याय / दलील ले लिया है। समझ में आया?।

तो कहते हैं ***शुभ-अशुभ उपयोग से परिणमन करके..*** देखो! करता है जीव, पर्याय में। शुद्धात्मानुभूति के अभाव से, भगवान पवित्र आनन्द का नाथ शुद्ध आनन्द का सागर है - ऐसा जिसको आनन्द का-अनुभव का स्वाद आया नहीं। समझ में आया? वह आनन्द के स्वाद के अभाव में ***जीवन-मरण शुभ-अशुभ कर्म बन्ध को करता है..*** पर्याय में-अवस्था में उस शुभ-अशुभ परिणाम से परिणमन करते हुए शुभ करे। यदि शुभ हो तो स्वर्गादि में जाये, अशुभ हो तो नरकादि में जाये। यह पर्याय में सब होता है, परन्तु किसको? शुद्धात्मा की अनुभूति नहीं है इस कारण (अज्ञानी जीव को)।

यह शुद्ध भगवान आत्मा परमानन्दस्वरूप के अनुभव के अभाव में। यदि अनुभव हो, तब तो शुभाशुभ परिणमन उसको होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! तो कहते हैं कि ***शुभअशुभ उपयोग से परिणमन करके जीवन-मरण, शुभ-अशुभ कर्मबन्ध को करता है और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...*** यह सब पर्याय की बात ली है। जब शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा का अनुभव/शुद्धात्मानुभूति / निर्मल वीतरागी पर्याय / धार्मिक अवस्था प्रगट हुई। ***शुद्धोपयोग से परिणत होकर...*** पहले शुभ-अशुभ में परिणत कहा था - मिथ्यात्व में। समझ में आया? और सम्यग्दर्शन के भान में ***शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है।***

मुमुक्षु : चौथे गुणस्थान की बात है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ से शुरुआत होती है। चौथे से सिद्ध तक। चौदहवें तक। समझ में आया? सिद्ध तो मोक्ष है। समझ में आया? तो शुद्ध उपयोग से परिणत होकर...

टीका है। जैसे अज्ञानी अपने आनन्दस्वभाव का अनुभव न होने पर, जो उसमें नहीं है - ऐसे शुभाशुभ विकल्प को करता है, उसे कर्मबन्धन होता है। उससे उसको जन्म-मरण होता है, उपजना-मरना होता है। समझ में आया? अध्यात्म की बात सूक्ष्म है।

जब आत्मा अपने निजघर में आता है, शुद्ध चैतन्यस्वरूप मैं हूँ, आनन्द हूँ-ऐसी आत्मा की अनुभूति-सम्यग्दर्शन हुआ... समझ में आया? ***शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर, शुद्धोपयोग से परिणत होकर...*** शुद्धोपयोगरूपी दशा पर्याय में प्रगट करके अवस्था में मोक्ष का करता है। ***तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिकनय कर न बन्ध का कर्ता है, न मोक्ष का कर्ता है।*** अब गाथा का अर्थ लेते हैं। समझ में आया?

शुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहक दृष्टिकर.. -उसका अर्थ : यह शुद्धपारिणामिकभाव दृष्टि में आया, उसको उपादेय जाना। समझ में आया? वह जीव न बन्ध का करता है, न मोक्ष का करता है। द्रव्यदृष्टि में जब दृष्टि हुई... समझ में आया? आगे कहेंगे अन्त में कि भाई! आत्मा ऐसा उपादेय है। परन्तु उपादेय का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : उपादेय का अर्थ तो बराबर बताओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कि अन्तर निर्विकल्प अनुभव में आत्मा का आदर उपयोग हो, तब उपादेय कहने में आता है।

मुमुक्षु : ठीक से समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से लेते हैं। अन्त में है देखो, ***अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है।*** वैसे उपादेय-उपादेय माने - ऐसा नहीं, वह तो विकल्प और धारणा हुई। उसको उपादेय का भान है नहीं। समझ में आया?

इसी प्रकार समयसार छठवीं गाथा में कहा है कि आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। शिष्य ने प्रश्न किया- भगवान! आप शुद्धात्मा किसे कहते हो कि जिसे हमें जानना चाहिए? तो भगवान-कुन्दकुन्दाचार्य उत्तर देते हैं कि भैया! परलक्ष्य को छोड़कर भगवान शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर पर्याय में उसका सेवन करते हैं, वे शुद्धता प्रगट करते हैं और शुद्धता द्वारा यह द्रव्य शुद्ध है - ऐसा उसकी प्रतीति में आता है।

फिर, ऐसे शुद्ध है... शुद्ध है... ऐसा नहीं। यह तो अभी तो निकल गयी न बात

बाहर। जरा, सोगानी का पुस्तक बाहर निकल गयी है तो अब बहुत से बातें करने लगे हैं। समझ में आया ? परन्तु उसका अर्थ ऐसा है। सूक्ष्म बात है, भगवान।

मुमुक्षु : अर्थ में कुछ अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, क्या अन्तर ? किसमें ? अर्थ में अन्तर है। अर्थ करने में अन्तर है। आत्मा... सुनो ! छठवीं गाथा में ऐसा कहा, जो मूल गाथा है। समझ में आया ? छठी का लेख, छठी का लेख कहते हैं न यह ! ऐसी गाथा भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि प्रभु आत्मा में प्रमत्तपना भी नहीं और अप्रमत्त पर्याय भी नहीं, वह तो ज्ञायक शुद्ध है। किसको ?

मुमुक्षु : सबको।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : त्रिकाल तो सबको है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं.. नहीं.. नहीं; वह शुद्ध है, इसका अनुभव हुआ, उसको शुद्ध है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ख्याल में आ गया पश्चात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : ख्याल में आया ही नहीं है। ख्याल में आया क्या ? वेदन बिना ख्याल में कहाँ से आया ? समझो जरा न्याय ! परमात्मप्रकाश में गाथा-गाथा में ऐसा लिया है।

मुमुक्षु : त्रिकाल कहते हैं फिर कहाँ फ्रिक है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं... नहीं... नहीं; त्रिकाल दृष्टि में-स्वीकार में आये बिना त्रिकाल है - ऐसा निर्णय कहाँ से किया उसने ?

मुमुक्षु : सुन करके।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुन करके क्या हो गया ? दृष्टि में तो आया नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : आपने कहा हमने मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री: ऐसे कहा, वह माना ही नहीं उसने। माना तो उसे तब कहते हैं, (जब अनुभव हो)। समझ में आया ?

मुमुक्षु : इसमें नया तो कुछ आया नहीं - ऐसा का ऐसा कि इसमें नया बहुत होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : नया तो अन्दर अनुभव करके शुद्ध है - ऐसा आया है। समझ में आया? ऐसे बातें करे, उसको नहीं। सुनो, बराबर! ऐ.. स्वरूपचन्दजी!

जिसको अन्तर में शुद्धचैतन्यध्रुव की अन्तर में पवित्रता प्रगट हुई है, शुद्धता प्रगट हुई है, उसके द्वारा यह द्रव्य शुद्ध है - ऐसा मानने में आता है। दृष्टि में आया नहीं, लक्ष्य में आया नहीं, फिर यह शुद्ध है-कहाँ से माना तूने-ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : आपने कहा शुद्ध है, और हमने मान लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! भगवान कहे तो भी क्या हुआ? इसका भगवान जगे बिना माना कहाँ से? ऐ... धन्नालालजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान कहते हैं न? तत्त्वार्थश्रद्धान। पण्डितजी! यह तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है या नहीं मोक्षमार्ग में? वह व्यवहार है या निश्चय है?

मुमुक्षु : निश्चय।

पूज्य गुरुदेवश्री : निश्चय है? तो यहाँ तो यह कहते हैं, तत्त्वार्थश्रद्धान को बहुत जगह तो व्यवहार कहते हैं। नहीं, तत्त्वार्थश्रद्धान ज्ञानप्रधान से कथन है, वस्तु-ध्रुव में जहाँ दृष्टि पड़ी और शुद्धता का अनुभव हुआ तो उसके ज्ञान में पर्याय संवर-निर्जरा, अशुद्धता आदि पर्याय उसमें नहीं है—ऐसा ज्ञान साथ में आ गया, उसका नाम तत्त्वार्थश्रद्धान जीवरूप कहने में आता है, भाई! उसे जीवरूप कहा है न? मोक्षमार्ग में गाथा रखी है। मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में, पुरुषार्थसिद्धियुपाय की २२ वीं गाथा। 'आत्मरूपं' (सम्यग्दर्शन) आत्मरूपम् है। समझ में आया? है न, मोक्षमार्गप्रकाशक, कहाँ है? उन्होंने आधार तो इसका दिया है न? मूल में से निकालते हैं न? २२ गाथा है, २२।

देखो! (पुरुषार्थसिद्धियुपाय, २२ गाथा!) देखो, उसमें उद्धरण दिया है टोडरमलजी ने।

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थानां सदैव कर्त्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताभिनिवेश विविक्तमात्मरूपं तत्॥२२॥

आत्मरूपं है, देखो, आहाहा!

मुमुक्षु : द्रव्य तो कुछ करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से कहा न ? पर्याय से द्रव्य पर दृष्टि करने से पर्याय में आयी न, आत्मदशा ?

मुमुक्षु : वह है, हमें क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री : है, ऐसा नहीं। ऐ... सेठ ! इसके लिये तो यह लिया है 'आत्मरूपं तत्' तीनों में लिया है, हों ! सम्यग्दर्शन आत्मरूप, सम्यग्ज्ञान आत्मरूप, सम्यक्चारित्र आत्मरूप, तीनों आत्मरूप हैं। २२, ३५ और ३९ तीन गाथायें हैं। पुरुषार्थसिद्धियुपाय (में) अमृतचन्द्राचार्य (कृत गाथायें हैं)। तत्त्वार्थश्रद्धान, वह आत्मरूप है। यहाँ कहते हैं ध्रुव का अनुभव होना, वह आत्मरूप दशा है। यह तत्त्वार्थश्रद्धान, आत्मरूप दशा है – दोनों में अन्तर नहीं है। जहाँ दृष्टि प्रधान कथन में ध्रुव, वह ध्येय है। सम्यग्दर्शन कहाँ से लिया है ! और ज्ञानप्रधान कथन में ध्रुव का जहाँ ज्ञान और जहाँ श्रद्धा हुई तो वहाँ पर्याय भी उसमें नहीं है ऐसा ज्ञान भी साथ में आया है। तो उसमें सात तत्त्व की श्रद्धा हुई – ऐसा कहते हैं। विकल्पवाली नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

अन्वयार्थ – जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित अर्थात् अन्य को अन्यरूप समझनेरूप जो मिथ्याज्ञान है, उससे रहित श्रद्धान् अर्थात् दृढ़ विश्वास निरन्तर ही करना चाहिए। कारण कि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है। पर्यायरूप की अपेक्षा से, हों ! इस ध्रुवरूप की अपेक्षा से नहीं।

मुमुक्षु : अभी तक तो न कर्ता, न कर्ता आया था और यह तो निरन्तर प्रत्येक समय कर्ता..

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; पर्याय कर्ता। पर्याय, ध्येय के लक्ष्य से कर्ता – ऐसा कहते हैं। ध्येय में कर्तव्य नहीं, परन्तु पर्याय में कर्तव्य, ध्येय का लक्ष्य करना, यह पर्याय में कर्तव्य आता है। आहाहा ! शोभालालजी ! थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु अब समझना पड़ेगा। उल्टा देते हैं न ? उल्टा पड़ेगा। उस पैसा-वैसा में कुछ धूल भी नहीं है। धूल भी नहीं अच्छा। नहीं.. नहीं.. नहीं, यह लोकोत्तर पुण्य सम्यग्दर्शन की भूमिका में जो शुभभाव हो, उससे पुण्य बँधता है, वह तीर्थंकर होता है, बलदेव होता है। समझ में आया ? इन्द्र होता है, वह

पुण्य, पुण्य को व्यवहार से कहने में आता है, यह तो सब पुण्य भी ठिकाने बिना के हैं तुम्हारे। समझ में आया?

यहाँ तो इतना कहना है आत्मरूपं तत् - यहाँ कहते हैं आत्मा में वह सम्यग्दर्शन और मोक्षमार्ग का आत्मा कर्ता नहीं है। यहाँ कहते हैं उसका सदैव कर्तव्य है, यह अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। उसका अर्थ कि भगवान आत्मा ध्रुव तो ध्रुव ही है, उसमें एकाग्रता करना, वह कर्तव्य है, जीव की पर्याय में कर्तव्य है, ध्रुव में नहीं। समझ में आया? ये तीनों बोल हैं, हों! वहाँ २२ में आया और ३५ में, तथा ३९। ३५ में ज्ञान की बात है। आत्मरूपं लिया है, ३५ देखो, ३५ वहाँ यह शब्द है।

कर्त्तव्योऽध्यवसाय: सदनेकान्तात्मकेषु तत्त्वेषु।
संशयविपर्य्ययानध्यवसायविविक्तमात्मरूपं तत्॥३५॥

अनेकान्त हुआ। द्रव्य में कर्तव्य नहीं, पर्याय में कर्तव्य है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ कहेंगे, देखो! फिर ज्ञान का लिया। ३९ में चारित्र की व्याख्या है, देखो!

चारित्रं भवति यत: समस्तसावद्ययोगपरिहरणात्।
सकलकषायविमुक्तं विशदमुदासीनमात्मरूपं तत्॥३९॥

कषाय का अंश भी छूट गया। निर्मल, विशद अर्थात् निर्मल सम्पूर्ण कषायरहित, सम्पूर्ण कषायरहित कहो या चारित्र कहो। यहाँ बारहवें (गुणस्थान की) बात नहीं है। यहाँ सम्पूर्ण कषायरहित का अर्थ चारित्र में कषायरहित, ऐसा। कषाय का अंश दूर रह गया। समझ में आया? शास्त्र के अर्थ को भी सही समझने की ताकत नहीं, वह आत्मा को सुलटा क्या कर सकेगा? समझ में आया?

देखो! निर्मल, परपदार्थों से विरक्ततारूप आत्मरूपम् होता है, देखो! यहाँ इन्कार करते हैं।

मुमुक्षु : परन्तु हमारा त्रिकाल आत्मा आपने कहा वैसा हो, फिर हमें फिक्र किसकी?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु त्रिकाल दृष्टि में आवे तो त्रिकाल है - ऐसा यहाँ कहते हैं। यह यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? क्या कहा देखो? तो भी शुद्ध का ग्राहक न मोक्ष का करता है, देखो! ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया—महाराज! आपने तो बन्ध

और मोक्ष, आत्मा करता ही नहीं है, बहुत गजब बात की है। शिष्य प्रश्न करता है, प्रभु! शुद्ध द्रव्यार्थिकनयरूप स्वरूप शुद्ध निश्चयनयकर मोक्ष का भी करता नहीं है तो ऐसा समझना चाहिए कि शुद्धनयकर मोक्ष भी नहीं है? मोक्ष भी नहीं है – ऐसा समझना चाहिए, मुझे ऐसा समझना न?

मुमुक्षु : ऐसे ही व्यवहार से मोक्ष है न...

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मोक्षपर्याय व्यवहार है। पर्याय व्यवहार है, मोक्ष, मोक्ष का मार्ग वह भी व्यवहार है और बन्ध का मार्ग भी व्यवहार है, वह तो पर्याय है, वह तो व्यवहार है। पर्याय व्यवहार है, त्रिकाली द्रव्य वह निश्चय है। भलीभाँति मोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है। चिट्ठी में आता है–मोक्षमार्ग साधना वही व्यवहार है, निश्चयमोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है, क्योंकि वह पर्याय है। आहा! समझ में आया?

त्रिकाली भगवान आत्मा में तो आप कहते हो (वह) बन्ध और मोक्षरहित है तो हमें तो ऐसा समझना न कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है? और यदि मोक्ष नहीं है तो मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है। शिष्य का प्रश्न है। शुद्धनयकर तो मोक्ष ही नहीं? तो मोक्ष का प्रयत्न करना वह वृथा आ गया।

उसका उत्तर कहते हैं—मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है। सुनो! भगवान आत्मा में मुक्ति की जो पर्याय होती है, पहले राग की पर्याय थी बन्धपूर्वक; बन्ध का व्यय होकर मुक्त होता है। जिसको बन्ध हो, उसकी मुक्ति पर्याय में होती है; द्रव्य में तो बन्ध भी नहीं और द्रव्य में तो मुक्ति भी नहीं। बात पर्याय की है, हों! मुक्ति–शक्तिरूप मुक्ति तो त्रिकाल है। मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है; बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं। राग, शुद्धनिश्चयनयकर यदि बन्ध हो तो कभी छूटे नहीं। आहाहा!

त्रिकाल कहो, शुद्ध कहो परन्तु ऐसी दृष्टि में आया, तब उसको बन्ध नहीं होता – ऐसा कहने में आता है। बापू! कठिन बात है। ए..ई.. पदमचन्दजी!

मुमुक्षु : आपका प्रवचन सुनने से हमको तो ध्रुव का–स्वभाव का आनन्द आ जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आया, परन्तु कहाँ से आया? सुनने से? आहाहा! भाई! यहाँ कहेंगे देखो!

इस कारण बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है, यह तो हम भी कहते हैं कि बन्ध है, मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक होता है तो पर्याय में बन्ध हो उसका अभाव होकर मोक्ष होता है परन्तु द्रव्य में तो बन्ध मोक्ष है ही नहीं। पर्याय में बन्ध है तो अभाव होकर मोक्ष होता है। यदि निश्चयनय से बन्ध होता हो तो हमेशा बन्ध ही रहता; कभी बन्ध का अभाव नहीं होता। यह योगीन्द्रदेव की टीका है।

इसके बारे में दृष्टान्त कहते हैं। कोई एक पुरुष साँकल से बँध रहा है, कोई एक पुरुष साँकल, साँकल.. साँकल कहते हैं न? लोहे की। और कोई एक पुरुष बंधरहित है। उसमें से जो पहिले बँधा था, उसको तो मुक्त हुआ, छूटा - ऐसा कहना तो ठीक मालूम पड़ता है। दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको 'आप छूट गये' ऐसा कहा गया तो क्रोध करता है। आप जेल में से कल छूट गये न? परन्तु जेल में था कब कि छूटा? हमको जेल में डाला है - ऐसा तुम्हें पहले कहना है। समझ में आया? दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको 'आप छूट गये' - ऐसा कहा जाये तो क्रोध करता है। मैं कब बँधा था तो मुझे छूटा कहते हो? बँधा हो, वह छूटे; इसलिए बँधे को तो मोक्ष कहना ठीक है परन्तु बँधा ही नहीं, उसे छूटा कैसे कहना? इसी प्रकार शुद्धनिश्चयनयकर जीव बँधा हुआ नहीं। भगवान ध्रुवस्वरूप, वह पर्याय में बँधा है नहीं; ध्रुव त्रिकाल भगवान पड़ा है, वह निश्चय से बँधा नहीं है। (इस कारण मुक्त कहना ठीक नहीं।)

भगवान सिद्ध समान ध्रुव जो आत्मा वह वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है। क्या कहते हैं? मूलचन्दभाई! यह ध्रुव उपादेय है, यह ध्रुव उपादेय - ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : आप रोज कहते हो ध्रुव उपादेय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु ध्रुव उपादेय कहते हैं किस अपेक्षा से? समझ में आया? ए.. भगवानजीभाई! गजब बात भाई!

इसके ज्ञान में ध्रुवस्वरूप का अनुभव हो, शुद्धता का भाव वेदन में आवे, उसको ध्रुव उपादेय है। लालचन्दजी! उपादेय क्या सबको लेना?

मुमुक्षु : अनुभव करना, परिणमन करना...

पूज्य गुरुदेवश्री : परिणमन करना।

मुमुक्षु : परिणमन करने पर उपादेय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तब उपादेय है। पहले छठवीं गाथा में कहा, उसी बात का स्पष्टीकरण लिया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने छठी गाथा में लिया है कि शुद्ध किसे कहें? द्रव्य तो शुद्ध है, परन्तु किसे शुद्ध है? कि जो द्रव्य-सन्मुख होकर, परसन्मुखता से लक्ष्य हटाकर ध्रुव का सेवन करते हैं, एकाग्रता से (सेवन करते हैं) उसको वह शुद्ध कहने में आता है।

मुमुक्षु : परसन्मुख से विमुख होकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : होकर, लक्ष्य छोड़कर है न पाठ में? छठी गाथा में? समझ में आया? छठवीं गाथा में है या नहीं? समयसार है? यह तो गुजराती है, देखो! छठी गाथा है न? हिन्दी है, हिन्दी लाओ, देखो हिन्दी, छठी (गाथा की टीका) देखो! ***वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ..*** वही आत्मा समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से **भिन्नरूप से उपासित किया हुआ वह शुद्ध कहलाता है।** समझ में आया? क्या कहा? भगवान चिदानन्द प्रमत्त-अप्रमत्त की पर्यायरहित चीज़, प्रमत्त अर्थात् दोष और अप्रमत्त अर्थात् निर्दोष पर्याय, दोनों पर्यायों से रहित भगवान आत्मा है। समझ में आया? कोई पर्याय उसमें है नहीं। ऐसे ज्ञायकभाव को शुद्ध कहने में आता है। किसको? बोलता हो जाये ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐ... चिमनभाई! तुम्हारे मुम्बई में बहुत चलता है। इतने हों और इतने न हों। भाई! विवाद नहीं होता। पहले सुन तो सही। समझ में आया? कहते हैं कि शुद्ध किसे कहते हैं? प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, वही आत्मा समस्त अन्य द्रव्य के भावों से.. अन्य द्रव्य के भाव, हों! अन्य द्रव्य का लक्ष्य छूटा, उसका-विकार का-विकल्प का भी लक्ष्य छूट गया। ऐसी जहाँ अन्दर में दृष्टि पड़ती है तो पर का लक्ष्य छूटा तो ऐसा विकल्प का लक्ष्य छूटा, त्रिकाली जो शुद्ध भगवान आत्मा है, उसकी एकाग्रता हुई, सेवन किया, तब सेवन किया, उसको द्रव्य शुद्ध है - ऐसा कहने में आता है। उसको योग्यता है। दूसरा शुद्ध कहे ऐसे नहीं, यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : बराबर, उपासित करते हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उपासित, ए... भीखाभाई ! क्या कहते हैं ? कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं, यहाँ योगीन्द्रदेव स्वयं कहते हैं।

इसकी टीका–सिद्धसमान यह अपना शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषों को उपादेय है। तब उपादेय कहने में आता है। आहाहा ! गजब बात भगवान !

मुमुक्षु : इसके अतिरिक्त उपादेय कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादेय, उपादेय परन्तु यह उपादेय जाना अर्थात् क्या ? परन्तु इसका अर्थ क्या ? (स्वभाव उपादेय) समझ में आया ? द्रव्यस्वभाव पर एकाग्र हुआ, तब उपादेय कहने में आता है, तब राग हेय है – ऐसा ज्ञान करने में आता है। आहाहा !

परमात्मप्रकाश में प्रत्येक गाथा में ऐसा लेते हैं। ऐसे धारणा कर ले और बात करे – ऐसा नहीं, भाई ! बात ऐसी है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अन्त:लीन....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, देखो, संस्कृत है, हों ! **अत्र वीतराग निर्विकल्प समाधिरतो मुक्त जीवः सदृशः स्वशुद्धात्मा उपादेय इति भावार्थ।** उसको शुद्ध कहने में आता है, उसको उपादेय कहने में आता है। आदरणीय हुआ–उपादेय हुआ तो पर्याय द्रव्य में (घूमकर) निर्मल हुई, यह उसको उपादेय कहने में आता है। ऐ..ई.. पण्डितजी ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : पहले वहाँ कहते थे और अभी तो अलग कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें यही कहना था, परन्तु यह स्पष्ट कर दिया।

शुद्धनिश्चयनय से बन्ध–मोक्षरहित है उसका अर्थ क्या ?

मुमुक्षु : अशुद्धनिश्चयनय से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्धनिश्चयनय है पर्याय में परन्तु शुद्धस्वभाव का प्रयत्न करके निर्मल पर्याय प्रगट की, उसे शुद्धनिश्चयनय से द्रव्य में बन्ध–मोक्ष नहीं, इसको ऐसा निर्णय सच्चा होता है। समझ में आया ? वीतरागमार्ग ऐसा है। क्या कहा, देखो ! योगीन्द्रदेव ने भी कहा है कि **हे योगी ! परमार्थ से जीव, उपजता भी नहीं है,..** इस उत्पाद से पर्याय में जीव आता ही नहीं – ऐसा कहते हैं। शब्द पड़ा है न ? **जीवो,** है, शब्द है या नहीं ? ऐ.. सेठ ? क्या है पढ़ो ?

मुमुक्षु : परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं है, मरता भी नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा शब्द पढ़ते होंगे तुम्हारी बहियाँ पढ़े तब – दिल्ली में बहियाँ पढ़े तो ऐसा पढ़ते होंगे ?

मुमुक्षु : परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ से जीव, जीव, जीव बस इतना ! परमार्थ से जीव उत्पन्न नहीं होता (अर्थात्) पर्याय में नहीं आता। आहाहा ! सेठ ! बहुत घोंटन किया है और बहियाँ पढ़े तब शीघ्रता लेता है इतना लेना है और इतना लेना। वह कहीं ऐसे पढ़ने से परमार्थ, पहले परमार्थ में शब्द ठीक नहीं आया था।

परमार्थ से.. अर्थात् वास्तव में **जीव,..** भगवान जीव का शुद्धस्वरूप जो ध्रुव है **वह उपजता भी नहीं...** पर्याय में आता भी नहीं। आहाहा ! परन्तु किसको ? भाई ! दृष्टि गयी और द्रव्य का भान हुआ, वह द्रव्य उपजता नहीं, पर्याय में आता नहीं, उसको कहने का अधिकार है। आहाहा ! बात ऐसी है भगवान ! है ?

मुमुक्षु : पर्याय की बात – द्रव्य का तो भान हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं, यहाँ तो इस भान से इन्कार करते हैं। ऐ..ई.. अमुलखचन्दजी ! ख्याल में शास्त्र से सुना और ख्याल में आया वह ख्याल ही सच्चा नहीं, आहाहा ! वह तो रागवाला ज्ञान है, परावलम्बी–परसत्तावलम्बी ज्ञान है। आहाहा ! गजब बात है ! दिगम्बर सन्त, नग्न, वे तो नागा बादशाह से आगा ये वस्तु है। समझ में आया ?

कहते हैं परमार्थ से जीव, जीव पर्याय में उपजता नहीं, उत्पाद में आता नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा ! ध्रुव, उत्पाद में आवे तो एक समय की पर्याय तो नाश होती है तो ध्रुव भी नाश हो जायेगा। पहले इसमें आ गया है। समझ में आया ? सामने पन्ना है, ख्याल तो आयेगा कि यह कहने में आता है। कहते हैं कि **उपजता भी नहीं...** 'भी' क्यों कहा कि मरता भी नहीं इसलिए। अकेला उपजता भी नहीं और व्यय भी नहीं होता। समझ में आया ? ध्रुव चीज़ भगवान आत्मा वह जीव, निश्चयनय का वह जीव, द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य, वह (निश्चय) जीव; पर्याय का विषय, वह व्यवहार जीव। आहाहा !

मुमुक्षु : व्यवहार जीव तो हेय है, उसका क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यही तो कहते परन्तु ध्रुव पर दृष्टि पड़े तो हेय हुआ।

मुमुक्षु : परन्तु हमारे हेय का काम क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन कहते हैं हेय का ? अन्दर उपादेय हुआ तो हेय हो गया (अर्थात्) ध्रुव उपादेय हुआ तो यह राग उसमें नहीं आया तो हेय हो गया, उसमें हेय करना-फरना कहाँ है ?

मुमुक्षु : परन्तु हेय किये बिना उपादेय कैसे होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन हेय करे ? ग्रहण किये बिना हेय होता ही नहीं।

मुमुक्षु : ग्रहणपूर्वक का त्याग।

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रहणपूर्वक का त्याग, वह सबेरे आया था। समझ में आया ? वाह भगवान ! वस्तुस्वरूप ऐसा है। पर्याय और द्रव्य दोनों की बात है भाई ! पर्याय भी है, परन्तु पर्याय है, उसमें द्रव्य आता नहीं। किसको ऐसी प्रतीति हुई ? कि जिसे द्रव्य पर दृष्टि-शुद्धनय की दृष्टि हुई, वह कहता है कि मेरा द्रव्य, वह पर्याय में तो आता नहीं; मैं पर्याय में आता नहीं और मैं पर्याय में विनशता ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! ऐ.. राजकुमारजी ! कभी सुना ही नहीं होगा वहाँ इतने वर्ष में। (रुपये) पैदा करने में से निवृत्त हो, तब पूजा-भक्ति करना, हो गया जाओ ! आता है न ? आये है न ? कहते थे, फिर से आना पड़ेगा। फिर से क्लास में आऊँगा। एक बार सुने, सुने तो कुछ रस लगे (कि) कुछ है तो सही कुछ चीज़। समझ में आया ? हमारा मनसुख इसे बहुत कहा करता है परन्तु ऐसे यह एकदम माने ! आया तो और आया तो है।

यह बात ही दूसरी है। भगवान आत्मा.. कहते हैं हे योगी ! योगी कहा न, उसको कहा। आहाहा !

मुमुक्षु : जो देख आया उसे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जिसकी दृष्टि और ज्ञान की पर्याय द्रव्य में पड़ी है, पसर गयी है। समझ में आया ? उसको कहते हैं, हे योगी ! यह तेरा जीव-ध्रुवपना, वह तो पर्याय में आता नहीं। आहाहा ! जो तेरी पर्याय द्रव्य में पसर गयी है, परन्तु उस पर्याय में द्रव्य आता

नहीं, भगवान तो वहीं का वहीं रहता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निहालभाई कहते थे एक बात 'पर्याय मेरा ध्यान करे तो करे, हम किसका ध्यान करें' अरे! करने का रहा, अभी किये बिना?

मुमुक्षु : ऐसा ही लोग कहते हैं, अब हमारे कुछ करना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाषा करे, उसमें क्या काम आवे?

मुमुक्षु : हमें क्या करना है, जिसे काम करना हो वह करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अज्ञान करे वह। अज्ञान करता है। यह तो अन्तर वस्तु की दृष्टि करने के पश्चात् दृष्टि में ऐसा (कि) पर्याय मेरा ध्यान करे तो करो, हम तो द्रव्य में बैठ गये हैं।

मुमुक्षु : ध्यान हो गया – द्रव्य में बैठ गये तो ध्यान हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर से सब लोग आये हैं न, इसलिए जरा स्पष्टीकरण करना चाहिए।

मुमुक्षु : परन्तु बहुत गड़बड़ होने के पश्चात् स्पष्टीकरण हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब यह गड़बड़ कुछ है नहीं, ऐसा थोड़ा चला करे। समाधान के लिये है न यह सब।

कहते हैं शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है, उसका अर्थ क्या? कि शुद्धनिश्चयनय का विषय जो है, ऐसा विषय दृष्टि में लिया है, उसको बन्ध और मोक्ष, द्रव्य में नहीं है – ऐसा कहते हैं। ऐसा–शुद्धनिश्चयनय से ऐसा और व्यवहारनय से ऐसा, उसका अर्थ क्या? शुद्धनिश्चय ज्ञान की पर्याय ने त्रिकाली ध्रुव को लक्ष्य करके शुद्धनिश्चय का भान किया है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है। शोभालालजी!

यह कहते हैं कि हमारा द्रव्य तो पर्याय में आता नहीं।

पर्याय हमारा ध्यान करे, आओ तो आओ। आहाहा! जाने पर्याय किसकी है! पर्याय व्यवहार की।

मुमुक्षु : पर्याय तो पर्याय की।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! क्या शब्द लिया है? परमार्थ से जीव–परमार्थ से जीव, जीव, पर्याय में आता नहीं – ऐसा कहते हैं, तो ऐसा कहते हैं देखो! शब्द क्या है? परमार्थ से–वास्तव में जो जीव है, वह जीव पर्याय में आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह जीव, पर्याय में व्यय होता नहीं। उसको बन्ध की पर्याय व्यय हो, वह ध्रुव में नहीं। आहाहा! देखो न, सवेरे आया था–आत्मा, राग के नाश का कर्ता नहीं। कर्ता कहाँ है? द्रव्य में कहाँ है? आहाहा! राग के नाश का करनेवाला जीव नहीं। कौन करे नाश? समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु जो है, वह तो राग के नाश का करना उसमें है ही नहीं। राग की उत्पत्ति करना नहीं और मोक्ष की उत्पत्ति करना, वह द्रव्य में नहीं – ऐसे द्रव्य की जब दृष्टि हुई, तब वह मेरा द्रव्य, पर्याय में आता नहीं; मैं पर्याय को जाननेवाला हूँ। पर्याय में आता नहीं हूँ, यह निर्णय तो पर्याय ने किया है। ऐ...ई! समझ में आया? मैं पर्याय में आता नहीं परन्तु यह निर्णय किसमें हुआ? पर्याय में हुआ या ध्रुव में हुआ।

मुमुक्षु : पर्याय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में निर्णय हुआ। ध्रुव तो ध्रुव है। पर्याय, ध्रुव में एकाकार हुई, मैं ध्रुव हूँ। वह पर्याय में आता नहीं, पर्याय में उपजता नहीं। निश्चय, वह व्यवहार में आता ही नहीं। आहाहा! अभी तो लोग कहते हैं व्यवहार से निश्चय होता है। यह बात तो कहीं रह गयी।

व्यवहार से निश्चय होता है (–ऐसा अज्ञानी कहते हैं) अरे भगवान! यह तो कथन की शैली ऐसी है। व्यवहार कारण है न, हेतु है न, साधन है न! सब है...

मुमुक्षु : वह तो आपने उड़ाया व्यवहार।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ाया नहीं, उसमें है नहीं, वह उड़ गया। इसलिये उड़ गया – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! जरा बात ठीक निकल गयी है।

मुमुक्षु : बहुत स्पष्ट, अच्छा स्पष्टीकरण।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, हमारे आत्माराम...

मुमुक्षु : किसको कहना ध्रुवस्वभाव का उपादेय, यह स्पष्टीकरण बहुत सुन्दर।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तेरा द्रव्य है.. है.. है.. ऐसी प्रतीति आयी है या नहीं? सम्यक् हुआ है या नहीं?

मुमुक्षु : आपने कहा फिर प्रतीति आवे ही न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐ, ठीक वकालात...

मुमुक्षु : नहीं तो पर्यायबुद्धि हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बुद्धि भी किसको?

मुमुक्षु : अज्ञानी को।

पूज्य गुरुदेवश्री : अज्ञानी तो पर्यायबुद्धि में है ही। जब ज्ञानी हुआ तो द्रव्यबुद्धि हुई है, यह भान हुआ है, वह पर्यायबुद्धि छूट गयी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : आज का व्याख्यान तो जल्दी छपाना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, भाई कहते हैं। यह ठीक कहते हैं। ए..ई! हरिभाई लिखते नहीं होंगे न, हरिभाई! वापस ऐसा हो तो लिखना चाहिए। इसमें घर का शब्द नहीं आना चाहिए, हों! यहाँ आवे इतना आवे तो बराबर ठीक पड़े। समझ में आया?

परमार्थ से जीव 'जीवों' शब्द पड़ा है न। देखो! जीवो ***'ण वि उपज्जइ ण वि मरइ'*** जीव न मरता है और उपजता भी कहाँ है जीव? वह तो ध्रुव जीव त्रिकाल नित्यानन्द भगवान, वह पर्याय में आता नहीं और पर्याय का व्यय होता है उसमें नहीं—मरता भी नहीं। **बन्ध-मोक्ष नहीं करता...** भगवान ध्रुवस्वरूप। आहाहा! दिगम्बर सन्तों की शैली सनातन धारा है। आहाहा! ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। समझ में आया?

कहते हैं कि भाई! तेरा काम तूने किया? काम किया तो तेरा द्रव्य, पर्याय में उपजता नहीं – ऐसा तुझे निर्णय हो गया। आहाहा! और मेरा द्रव्य, पर्याय में भान हुआ, पर्याय में निर्णय हो गया, यह द्रव्य है, तो ऐसा द्रव्य पर्याय में आकर बन्ध को ही करता नहीं और मोक्ष को ही करता नहीं। **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** पाठ में है या नहीं? **जिणवर एउ भणेइ** परमात्मा की वाणी में ऐसा आया है। आहाहा!

मुमुक्षु : परमात्मा की वाणी में ऐसा आया, अनुभवियों के अनुभव में भी ऐसा आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परमार्थ से जीव... परमार्थ से जीव। और नहीं तो व्यवहार से जीव होता है ? परन्तु पर्याय, वह व्यवहार है। पर्याय, वह व्यवहार है। सिद्धपर्याय, वह व्यवहार; केवलज्ञान, व्यवहार; क्षायिकसमकित, व्यवहार; क्षायिकचारित्र, व्यवहार; यथाख्यातचारित्र पर्याय, व्यवहार। पर्याय, व्यवहार और द्रव्य, निश्चय, क्योंकि निश्चय का निर्णय हुआ तो पर्याय बाहर रह गयी। आहाहा! निर्णय पर्याय ने किया परन्तु वह पर्याय बाहर रह गयी। द्रव्य में प्रविष्ट नहीं हुई। लक्ष्य बदला, इसलिए द्रव्य में प्रविष्ट, ऐसा-अभेद हुई - ऐसा कहने में आता है। जो लक्ष्य पर के ऊपर था - राग के ऊपर, पर्याय के ऊपर— वह लक्ष्य द्रव्य पर हुआ तो वह पर्याय छूट गयी अथवा उस पर्याय में निर्णय हुआ कि इस पर्याय में आत्मा आता नहीं। ध्रुव कैसे आवे ? समझ में आया ? महासागर साहेब चैतन्यप्रभु, उसके साहेब का साहेब दुनिया में कोई है नहीं अब। आहाहा! समझ में आया ? उसकी पर्याय भी साहेब नहीं। आहाहा! निर्मल, निर्विकारी पर्याय या निर्विकारी दशा में जो आत्मद्रव्य का निर्णय हुआ तो कहते हैं कि निर्णय पर्याय ने किया परन्तु पर्याय ऐसा मानती है कि द्रव्य मेरे अंश में नहीं आता। और वह द्रव्य बन्ध-मोक्ष को नहीं करता। समझ में आया ? **ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।** परमात्मा त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं।

फिर वह स्पष्ट किया जाता है..

मुमुक्षु : अब पर्याय आयी।

अब पर्याय। आहाहा! **विवक्षित-एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना..** भावना कहा था न, वह ध्यान कहो, भावना कहो, मोक्षमार्ग कहो, जो कहने में आता है वह, **विवक्षित** अर्थात् कहने में आता है वह। एकदेशशुद्धनय भावना एकदेशशुद्धनय है, एक अंशरूप शुद्धनय है; त्रिकाली शुद्धनय तो ध्रुव है। यह नय कहो या नय का विषय कहो, दोनों यहाँ तो एक ही है। देखो! एकदेशशुद्धनयाश्रित क्या कहते हैं ? भाव। जो निर्मल भाव है, वस्तु का जो अनुभव होकर निर्मल वीतरागी पर्याय प्रगट हुई, वह एक भाग शुद्धनय के आश्रय से, वह भावना। **(जिसे कहना चाहते हैं, ऐसी आंशिक शुद्धिरूप यह परिणति)...** आंशिक शुद्धरूपी परिणति। आंशिक शुद्धरूपी दशा जो मोक्ष का मार्ग है, जो ध्यानरूप दशा, भावनारूप पर्याय, सब एक ही नाम है, वह अपने पैंसठ बोल पहले आ गये हैं,

द्रव्यसंग्रह में (आ गये हैं)। कहने में आता है ऐसा एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना, जिसे कहना चाहते हैं - ऐसी आंशिक परिणति **निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण..** जो पहले यह शुद्धपरिणति धर्म की उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक में गिनने में आती थी, वह सामान्य था। अब इन तीनों में ज्ञानपर्याय का परिणमन है, ज्ञान की प्रधानता से कथन है। समझ में आया? इसमें उपशम और क्षायिक नहीं लिया। ज्ञान में उपशम नहीं होता, ज्ञान में क्षायिक नीचे नहीं होता। क्या कहते हैं? कि निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय में ज्ञान है... समझ में आया? ज्ञान है, वह ज्ञान एकदेश शुद्ध है, वह क्षयोपशमज्ञान है। समझ में आया? ज्ञान में उपशम नहीं आता, ज्ञान में नीचे क्षायिक नहीं। साधारण बात। तीनों मोक्षमार्ग कहा, तब तो उपशम, क्षयोपशम क्षायिक करके तीनों भाव मोक्ष का कारण है - ऐसा कह दिया। परन्तु अब ज्ञान की बात करके उसको (ध्रुव को) ज्ञेय बनाया, ऐसा जो ज्ञान, निर्विकार स्वसंवेदनलक्षण-विकाररहित अपना 'स्व' अर्थात् अपने से 'सम्' अर्थात् प्रत्यक्ष वेदन अर्थात् अनुभव लक्षण। ऐसा **क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से,..** वह शुद्धपरिणति क्षयोपशम -ज्ञानरूप है। जिसको उपशम-क्षयोपशम और क्षायिक ऐसा भाव था, वह तो दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों बोल लेकर कहा था। अब तीनों में श्रुतज्ञान की वेदनदशा हुई, वह शुद्धज्ञान की परिणति है, वह क्षयोपशमज्ञान है, ज्ञान में उपशम नहीं होता, साधक को ज्ञान में क्षायिक नहीं होता। आहाहा! उपशम है नहीं। वहाँ कहाँ उपशम होता? ज्ञान का उपशम हो तो केवलज्ञान हो जाये - ऐसा अर्थ कहा। ज्ञान में उपशम होता नहीं, ज्ञान में क्षायिक यहाँ -नीचे (निचली दशा में) है नहीं। यहाँ तो साधक की बात है, देखो! क्या? आंशिक शुद्धिरूपी परिणति... पूर्ण शुद्धरूप परिणति केवलज्ञान की यहाँ बात नहीं है, मोक्षमार्ग की आंशिक शुद्धिरूपी परिणति। **निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से, यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है..** एक अंश प्रगटरूप है। स्वसंवेदनज्ञान, द्रव्य को लक्ष्य करके जो वेदन हुआ, वह ज्ञान एकदेश / आंशिक शुद्ध है।

तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है.. आहाहा! यह बात विस्तार से आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(समयसार) गाथा ३२० जयसेनाचार्य की टीका। अधिकार जरा सूक्ष्म परम रहस्यमय था। रहस्यमय था। तुम्हारे में क्या कहते हैं? थोड़ा सूक्ष्म है परन्तु सुने तो सही, क्या चीज़ है? वास्तविक बारह अंग और सिद्धान्त का सार यह है कि ज्ञायक चिदानन्द अपना आत्मा ध्रुव परमपारिणामिकभाव तत्त्व लक्षण के सन्मुख होकर श्रद्धा-ज्ञान करना, वह सम्पूर्ण बारह अंग का सार है। इसकी सब फिर टीकायें और विस्तार है। समझ में आया?

देखो! अपने यहाँ आये, **विवक्षित-एकदेशशुद्धनयाश्रित यह भावना...** कौन सी भावना? जो चैतन्यस्वरूप ज्ञायकभाव, उस ओर की एकाग्रता, ऐसी जो भावना अर्थात् निर्मल दशा, वह एकदेश शुद्धनयाश्रित है, क्योंकि व्यक्तरूप पर्याय है न? व्यक्त / प्रगटरूप मोक्ष का मार्ग-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से अनुभव में आया; अत: वह एकदेश शुद्ध है। वह **निर्विकार-स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से,...** ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है। ऐसे तीन भाव लिये थे। यहाँ तो अकेला क्षयोपशमज्ञान लिया।

त्रिकाल जो भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप, उस ओर की एकाग्रता से पर्याय में ज्ञान का जो विकास हुआ, वह क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से एकदेश व्यक्तिरूप है। एक अंश प्रगटरूप है, एक अंश प्रगटरूप है। चाहे तो मोक्ष प्रगट हो तो भी एक अंश प्रगटरूप है। पर्याय अंश है, खण्ड है, अंश है, भेद है। एक समय की दशा, वह क्या चीज़ है। ऐसा होने से... तो भी ध्रुव के स्वभाव के आश्रय से ऐसी निर्मल पर्याय प्रगट हुई, ध्रुव चैतन्य भगवान की अन्तर्दृष्टि, ध्येय करके... दूसरी ओर से दृष्टि को समेटकर... समझ में आया? यह भी नास्ति से कथन है। अपने चैतन्य ध्रुवज्ञायक में दृष्टि लगाना और उस ओर का ज्ञान करना और उसमें लीन होना, वह मोक्ष का मार्ग है। शुभ-अशुभभाव कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। समझ में आया?

ऐसी प्रगटदशा शक्ति में से निर्मल व्यक्तता प्रगट हुई तो भी, तो पण, तथापि – तो भी कहते हैं न तुम्हारे ? यहाँ हिन्दी में तथापि है। **तथापि ध्याता पुरुष ऐसा भाता है..** परन्तु सम्यग्दृष्टि आत्मा का ध्यान करनेवाला आत्मा किसे भाता है ? त्रिकाल चीज़ को भाता है। समझ में आया ? भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त सुख सागर का सरोवर, सुख सागर का उछलता समुद्र। सुख सागर ऐसी चीज़ जो त्रिकाली है, उसमें अन्तर में एकाग्र होकर स्वभाव को ध्येय बनाकर जो पर्याय निर्मलदशा एक अंश प्रगट हुई, परन्तु वह ध्यान करनेयोग्य नहीं। ध्यान में उसे ध्येय बनाने योग्य नहीं। नन्दकिशोरजी ! आहा ! ध्याता पुरुष-अपने शुद्धस्वरूप का ध्यान करनेवाला आत्मा। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र, ये तीनों ध्यान हैं। क्या कहा ?

श्रोता : सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ध्यान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान है। वह ध्यान जिसे प्रगट हुआ, वह ध्यानी किसे ध्याता है। समझ में आया ? आहाहा ! अनन्त सुखसागर का नीर प्रभु ! सागर का नीर होता है न, सागर का पानी होता है न !

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह नहीं, नहीं। तुम्हारे सागर की बात नहीं। यह निज सागर, अनन्त सागर नीर। समझ में आया ? ऐसा प्रभु, ध्यान करनेवाला धर्मी किसे ध्याता है ? किसे ध्येय बनाता है ? वह निमित्त को-भगवान को ध्येय नहीं बनाता – ऐसा कहते हैं। आहाहा ! दया, दान का विकल्प बीच में आवे, उसे ध्याता ध्येय नहीं बनाता। सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव, एक समय की निर्मल मोक्षमार्ग की पर्याय जो प्रगट हुई, उसे भी ध्येय नहीं बनाता। आहाहा ! समझ में आया ? बारह अंग का निचोड़-सार यह है।

ध्याता पुरुष ऐसा भाता है – ऐसे ध्येय की भावना करता है। कैसा ध्येय ? जो आत्मा **सकलनिरावरण...** है। आहाहा ! रागादि तो उदयभाव है परन्तु शास्त्र में क्षयोपशम, क्षायिकभाव तो सावरण कहने में आया है। पण्डितजी ! क्या कहते हैं ? नियमसार में है और सावरण है, वह आवरण की अपेक्षा का अभाव हुआ न ? कितनी अपेक्षा है न ? पंचास्तिकाय में लिया है न ? चार भाव कर्मकृत। पंचास्तिकाय में लिया है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने मूल पाठ में लिया है कि केवलज्ञान खण्डरूप एक समय की पर्याय है, उसमें आवरण के अभाव की

अपेक्षा रह गयी तो उस केवलज्ञान को विभावज्ञान, विभावभाव कहने में आता है। आहाहा! विभाव अर्थात् विशेषभाव, भाई! विभाव अर्थात् विशेष भाव। वह सामान्य भाव नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **सकलनिरावरण...** चार भाव को भी चार आवरणवाले कहे हैं। नियमसार में चार भाव को (आवरणवाले कहा है)। उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक चार आवरणवाले क्योंकि एक में आवरण का निमित्त है और तीन में आवरण के आंशिक अभाव का कारण है तो वह अपेक्षित भाव हो गया। इसलिए उन्हें आवरणवाला कह दिया है। भगवान आत्मा सकलनिरावरण, त्रिकाल निरावरण, जिसे आवरण है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ निश्चय से आत्मतत्त्व किसे कहते हैं - यह बात चलती है। निश्चय से, सत्य से, यथार्थ से, वास्तविक रीति से ध्यान करनेवाला धर्मी जीव किसे आत्मा मानता है और किसे ध्येय बनाता है, उसकी बात चलती है। आहाहा!

सकलनिरावरण... दूसरे आवरणवाले हैं, उसमें आया, भाई! चार भाव आवरणवाले हैं - ऐसा उसमें आया न? यहाँ नहीं, उसमें (नियमसार, गाथा ४१) आया। त्रिकाल भगवान सत्व जो ज्ञानस्वभावभाव, ध्रुवभाव, अनादि-अनन्त एकरूप भाव, त्रिकाल भाव सकल निरावरण (भाव है)। चार भाव आवरणवाले हैं, वे ध्येय में लेने योग्य नहीं हैं। ओहोहो! समझ में आया?

ऊपर कहा न? एकदेश निर्मल आनन्द प्रगट हुआ। सुखानन्द, लो! तुम्हारे यहाँ सुखानन्द धर्मशाला है न? मुम्बई में नहीं? ऐई! चन्द्रकान्तभाई! जाते हो या नहीं? वहाँ सुखानन्द धर्मशाला है या नहीं? है। सुखानन्द धर्मशाला भगवान आत्मा है। सुख और आनन्द के स्वभाववाली धर्मशाला आत्मा है। ऐसा ध्रुव आत्मा का आश्रय करके, ध्येय बनाकर जो वीतरागी निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि जो प्रगट हुए, वे धर्मी का ध्येय नहीं तथा केवलज्ञान धर्मी का ध्येय नहीं-ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

समयसार में आता है। उपाय-उपेय का कहा था, पीछे-अन्त में उपाय-उपेय का (अधिकार आता है न?) लो, वह याद आ गया। वहाँ उपाय तो मोक्ष का मार्ग है, उपेय तो मोक्षमार्ग का फल, ऐसा सिद्धपद है। वहाँ ऐसा लिया है। समयसार, उपाय-उपेय। उपाय, मोक्ष का कारण और उपेय, मोक्षरूप दशा। उसे वहाँ ध्येय और साधन कहने में

आया है। पंचास्तिकाय में आ गया - व्यवहारसाधन-साध्य, भिन्न साध्य-साधन। भिन्न साध्य-साधन कहो तो भी निर्मल वीतरागी पर्याय साधन और पूर्ण वीतरागी दशा पूर्ण मोक्ष, वह साध्य। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि साध्य वह नहीं। दूसरे अर्थ में है। वह तो प्रगट करने की अपेक्षा से वहाँ साध्य कहा गया है परन्तु प्रगट किसके आश्रय से होता है? आहाहा! ध्याता पुरुष सकल निरावरण भगवान आत्मा। ध्रुव निरावरण पिण्ड चैतन्यबिम्ब, परमसुख सागर का समुद्र है, उसमें बिलकुल आवरण और आवरण के अभाव की अपेक्षा ध्रुव में नहीं है। **अखण्ड...** देखो! केवलज्ञानादि पर्याय भी खण्ड है-अंश है। प्रवचनसार में पर्याय अंश है - ऐसा आता है न? पर्याय अंश है.. पर्याय अंश है, अंशी नहीं। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो अभी.. समकित.. भगवान की प्रतिमा से, सम्मेदशिखर की यात्रा करने से समकित होगा (- ऐसा मानते हैं)। कहते हैं कि समकित का ध्येय तो धर्मी को पूर्णानन्द प्रभु वह ध्येय है। वहाँ से समकित प्राप्त होता है। सेठ!

कहते हैं कि अखण्ड है। भगवान आत्मा नित्यानन्द प्रभु, महा अस्तिरूप स्वभाव, निश्चय-वास्तविक यथार्थ आत्मा जो ध्रुव है, वह अखण्ड है, उसमें खण्ड है नहीं। आहाहा! वह धर्मी का ध्येय है, समकिती ज्ञानी का वह ध्येय है। आहाहा! अखण्ड के सामने खण्ड का निषेध (किया है)। यह आगे कहेंगे। **एक..** अखण्ड में अभेद आ गया। समझ में आया? **एक..** पर्याय तो अनेक है। वस्तुरूप से भगवान ध्रुव एक है। समझ में आया? तुम्हारे में क्या कहते हैं? खेलने का आता है न? ताश का इक्का, हुकम का इक्का, हुकम का इक्का हो, वह जीत जाता है - ऐसा आता है न? हम तो.. गल्ला, रानी, बादशाह, इक्का, उसमें आता है न?

मुमुक्षु : यह तो हुकम का इक्का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह इक्का भी चढ़ जाये ऐसा है परन्तु हुकम का इक्का तो पूरा। बादशाह से भी इक्का ऊँचा होता है, उसमें आता है न? हम मामा के घर में छोटी उम्र में सब खेलते थे। सब थोड़ा-थोड़ा किया है। मामा थे न, वहाँ यह रखते। गृहस्थ थे, सब रखते और खेलते, इक्का, दुक्की, छोटी उम्र की बात है, हों! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं,

गुलाम, वह पर्याय गुलाम है। आहाहा! यह भगवान आत्मा बादशाह और इक्का है। एक भगवान पूर्ण स्वरूप एक जिसे दृष्टि में आया है, वह उसका ध्यान करता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सकल निरावरण कहकर आवरणवाले चार पर्याय का निषेध किया। अखण्ड कहकर एक अंश पर्याय का निषेध किया। एक कहकर अनेक पर्याय का निषेध किया। निषेध किया नहीं परन्तु उसमें आ गया।

प्रत्यक्षप्रतिभासमय... आहाहा! भगवान आत्मा कैसा है? एक समय की पर्याय-अवस्थारहित चीज़ प्रत्यक्ष प्रतिभास है, वह स्वरूपप्रत्यक्ष ही वस्तु है। नियमसार में, स्वरूपप्रत्यक्ष - ऐसा शब्द लिया है। ध्रुव, वह स्वरूप प्रत्यक्ष है। समझ में आया? परन्तु किसे? जिसने मति और श्रुतज्ञान की पर्याय से अपने द्रव्य को प्रत्यक्ष कर लिया है - ऐसे समकिती को ध्येयरूप से प्रत्यक्ष प्रतिभासमय द्रव्य है। गजब बात यह!

मुमुक्षु : सबके लिये नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबके लिये नहीं। सबके लिये कहाँ? इसलिए तो यह बात चलती है उसकी कहाँ बात है? जिसे सम्यक् ख्याल में ही यह चीज़ आयी नहीं कि प्रत्यक्षप्रतिभास यह चीज़ है - ऐसा दृष्टि में आये बिना (ध्यान किसका करे?) समझ में आया? ध्याता, ध्यान करता है तो ध्याता को उस चीज़ का ख्याल है कि यह चीज़ प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है शोभालालजी! थोड़ा सूक्ष्म है, हों! परन्तु सुने तो सही..!

मुमुक्षु : सुनना तो पड़ेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुनना पड़ेगा। इतनी थोड़ी दरकार कम है उसको (सेठ को)। यह समझे बिना तीन काल में कहीं उद्धार नहीं है। लाख यात्रा करे, भक्ति करे, पूजा करे, दया करे, दान करे, ये सब शुभभाव हैं और वहाँ दृष्टि है तो मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** इसका अर्थ यह हुआ कि पर्याय में, वर्तमान दशा में समकिती को मति-श्रुतज्ञान के द्वारा आत्मा प्रत्यक्ष हुआ है, उसे यह प्रत्यक्षप्रतिभा-समय है - ऐसा ध्येय करता है। आहाहा! गजब बात भाई! समझ में आया? यह बारहवें दिन भागवत कथा पूरी होती है।

मुमुक्षु : भागवत् कथा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्म भागवत् नियमसार में आता है न! भागवत् शास्त्र! नियमसार की टीका में है। पद्मप्रभमलधारिदेव ने (कहा है)। यह भागवत शास्त्र है। भगवान का कहा हुआ भागवत। समझ में आया ?

कहते हैं कि भगवान आत्मा.. आहाहा! **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** भाषा तो ऐसी है कि जानी हुई चीज़ त्रिकाली दृष्टि में आ गयी है। प्रत्यक्षप्रतिभासमय है न ? क्या कहते हैं ? अन्तर जो ध्रुवचीज़ है, उसकी निर्मल पर्याय वह ध्रुव.. ध्रुव.. ध्रुव.. वह ध्रुव, ध्रुव में लक्ष्य में गया है। ऐसा कहते हैं। **प्रत्यक्षप्रतिभासमय..** प्रत्यक्ष का भास ध्रुव में होता है, भाई! आहाहा! वस्तु जो प्रत्यक्षप्रतिभासमय है, प्रतिभास अर्थात जो ध्रुव है, ऐसे भाव में ध्रुवभाव में ध्रुव का प्रतिभास आ गया। ऐई! यह टीका..

प्रत्यक्षप्रतिभासमय... यह वस्तु वस्तु में प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु ध्रुव है। उसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञानी जीव, चाहे तो आठ वर्ष की बालिका हो.. समझ में आया ? परन्तु सम्यग्दृष्टि हो तो उस सम्यग्दृष्टि का ध्येय प्रत्यक्षप्रतिभासमय द्रव्य पर दृष्टि है। आहाहा! मानो कि वस्तु प्रत्यक्ष ही है - ऐसी पड़ी है। प्रत्यक्ष है - ऐसी चीज़ पड़ी है। समझ में आया ? इसी प्रकार मति-श्रुतज्ञान में यह ध्रुव वस्तु प्रत्यक्ष पड़ी है - ऐसा दृष्टि में आया, प्रत्यक्षप्रतिभास को ध्येय बनाया। परोक्षज्ञान का ध्येय नहीं, यह प्रत्यक्ष केवलज्ञान का भी ध्येय नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

मुमुक्षु : परोक्ष ज्ञान का तो ध्येय नहीं, प्रत्यक्ष केवलज्ञान का भी ध्येय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह ध्येय नहीं। ध्रुव में ध्रुव का प्रतिभास हो गया - ऐसी चीज़ है। ऐसा कहते हैं। क्योंकि ज्ञान में मति और श्रुतज्ञान में.. क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष नाम का त्रिकाल गुण है, प्रकाश नाम का। आत्मा में प्रकाश नाम का गुण त्रिकाल है, वह सैंतालीस शक्ति में आता है। बारहवीं शक्ति प्रकाशशक्ति। उस गुण का कार्य क्या ? कि गुण ही प्रत्यक्षप्रतिभासमय है।

आहाहा! ए..! भाई! सीखने योग्य तो यह है। शिविर अर्थात् क्या ? सबेरे पूछा था। फिर हिम्मतभाई ने कहा - छावणी, एकत्रित होते है वह। फिर कहा - शिविर अर्थात् क्या

कहलाता होगा, अपने को कुछ पता नहीं। ऐई! पण्डितजी! शिविर को क्या कहते हैं? शिक्षण शिविर!

मुमुक्षु : शिक्षण शिविर में दिया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु शिविर का अर्थ क्या?

मुमुक्षु : आप कहो महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ कहाँ इस शब्द के अर्थ की खबर है? यह तो हमारे पण्डितजी जानें।

मुमुक्षु : (पण्डितजी) - शिविर में शिक्षण का मुकाम, कैम्प

पूज्य गुरुदेवश्री : ...शिविर का कैम्प। शिविर का कैम्प यहाँ हुआ है।

मुमुक्षु : शिविर कैम्प में आत्मा की भागवत कथा चलती है..

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है। सच्ची भागवत.. आहाहा! देखो! बात ऐसी भी चली कि पर्याय है, परिणमन है परन्तु वह पर्याय ध्यान किसका करती है? ध्रुव का। ध्रुव, ध्रुव का ध्यान क्या करे? अभी तो कोई पर्याय है ऐसा माना नहीं, ध्रुव क्या है? उसका पता नहीं। उसे तो यह होता ही नहीं। पर्याय में, अवस्था में ध्रुव प्रतिभासमय प्रत्यक्ष जो चीज़ है - ऐसा ज्ञान में आया। वह चीज़ प्रत्यक्ष ही है। परन्तु इस पर्याय में प्रत्यक्ष हुई, प्रत्यक्ष वस्तु ही ऐसी है। समझ में आया? प्रकाश नाम का गुण है। स्वसंवेदन प्रकाश। आहाहा! सन्तों की कला और रीति, कथनपद्धति अलौकिक है।

मुमुक्षु : ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ। उस प्रत्यक्ष में भास हुआ तो ध्रुव में ध्रुव का भास है - ऐसा माना। आहाहा! क्या कहा? समझ में आया?

मुमुक्षु : बराबर नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं आया? थोड़ा कठिन तो है।

मुमुक्षु : पर्याय में ध्रुव का भास हुआ या ध्रुव में ध्रुव का भास हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में भास हुआ, उसकी यहाँ बात नहीं है। वस्तु प्रत्यक्ष

भासमय ध्रुव चीज़ ऐसी है। प्रत्यक्षप्रतिभासमय द्रव्य है – ऐसा लेना है न? यह द्रव्य निजात्म, निज परमात्मद्रव्य के सब विशेषण चलते हैं। आहाहा! भगवान निजपरमात्मा, देखो! परमात्मद्रव्य निज परमात्मा। त्रिकाल परमस्वरूप भगवान ध्रुव नित्यानन्दनाथ–वह कैसा है? प्रत्यक्षप्रतिभासमय है, वह वस्तु ऐसी है। आहाहा!

मुमुक्षु : प्रतिभास है, वह बाहर में आता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में.. जैसे अपनी पर्याय में एक चीज़ प्रत्यक्ष होती है न? ऐसे ध्रुव में वह चीज़ प्रत्यक्ष ही है। ज्ञान प्रतिभासमय है। ज्ञान में दूसरी चीज़ प्रतिभासित होती है। प्रति पर भासती है। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में। तो यह ध्रुव है, वह प्रतिभासमय त्रिकाल है। यह वस्तु सम्यग्दृष्टि का विषय है। समझ में आया? परमभाव में स्थित सम्यग्दृष्टि, वह परमभाव ऐसा है – ऐसा जानता है। आहाहा! नन्दकिशोरजी! वहाँ तुम्हारे गाँव में ऐसा व्याख्यान–ब्याख्यान नहीं चलता कभी। वहाँ चलता है? कहाँ गये राजनकुमारजी! वहाँ तो ऐसी बात चलती नहीं। कोई एकाध आया हो, बस! शिक्षण शिविर में चले। आहाहा!

मुमुक्षु : यह नहीं चलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : शहर में एकाध दिन जाए तो कहे यह क्या लगायी है, महाराज ने यह क्या लगायी है यह बात? कुछ अध्यास नहीं, पामर साधारण प्राणी। हमको ये कहते हैं तू पामर नहीं। तू तो भगवान का भगवान है। आहाहा! भाई! तुझे पता नहीं। समझ में आया?

अनन्त सिद्ध परमात्मा और संख्यात अरिहन्त, तीर्थंकर वे तो तेरी एक ज्ञान की पर्याय में समा जाते हैं। समझ में आया? ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ध्रुव है, वह तेरे भगवान का भगवान तू है। आहाहा! प्रकाशदासजी! यह साहेब की व्याख्या चलती है। आहाहा! क्या हो? ... आहाहा!

भाई! साहेब तो यह है। जो भगवान अन्दर प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है अर्थात् ज्ञान प्रत्यक्ष.. यह तो नियमसार में आता है न? कि कारणसमयसार को जाननेवाला ज्ञान त्रिकाल उसमें पड़ा है, यह आता है या नहीं? कारणसमयसार जो है, उसे जानने का ज्ञान भी उसमें त्रिकाल पड़ा है, वह कारणसमयसार को जानता है। ऐसे ध्रुव में दो भेद पाड़ दिये हैं। है?

कारणसमयसार.. आहाहा! भगवान कारण अर्थात् यहाँ जो परमार्थ द्रव्य कहते हैं, वह कारणसमयसार। उसे क्या कहते हैं! कारणसमयसार में एक ऐसा ज्ञान है कि जो अपने को पूर्ण जानता है। ध्रुव, हों! आहाहा! समझ में आया? ...नियमसार में भी कहाँ हो यह कुछ (याद नहीं होता)। यह तो हिन्दी है। मैंने तो गुजराती पड़ा हो। वह है।

उपयोग की बात चलती होगी। उसमें उपयोग की व्याख्या में होगा न? यहाँ है, यह रहा। यह कारणज्ञान की व्याख्या है। ११-१२ गाथा। यह तो नया है न? क्या कहते हैं? कारण ज्ञान, त्रिकाली ज्ञान, ध्रुव ज्ञान। कैसा है **कारणज्ञान भी वैसा ही है। काहे से? निजपरमात्मा में विद्यमान सहज दर्शन...** त्रिकाली दर्शन, त्रिकाली चारित्र, देखो! आत्मा में त्रिकाली चारित्र पड़ा है। समझ में आया? और **सहजसुख और सहज परमचितशक्तिरूप निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद जानने में समर्थ होने से वैसा ही है।** आहाहा! देखो! यह बात थोड़ी सूक्ष्म है। त्रिकाल जो ध्रुवज्ञान है, वह अपने ज्ञान को जानता है - ऐसा त्रिकाल पड़ा है। त्रिकाल ध्रुव को जानता है - ऐसा ज्ञान है।

मुमुक्षु : सच्ची रीति से जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्ची रीति से जानने का स्वभाव पड़ा है न? पर्यायरूप से जाना, तब स्वरूप त्रिकाल जाननेवाला है - ऐसा निर्णय हुआ। समझे न? नियमसार की १०-१२ गाथा है। सहजज्ञान... **निजकारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद जानने में समर्थ होने से...** क्या कहा?

कहते हैं कि ध्रुव-ध्रुव कारणपरमात्मा अथवा यहाँ जो निजपरमात्मा निजद्रव्य (कहा वह), उसमें ज्ञान है, दर्शन है। कैसा? कि जो ज्ञान अपने को त्रिकाल जाने, युगपत जाने - ऐसा ज्ञान अन्दर पड़ा है। ध्रुव, ध्रुव को जाने - ऐसा ज्ञान पड़ा है - ऐसा कहते हैं। गजब बात है। समझ में आया? सहजकारणज्ञान भी परमात्मा को, निजपरमात्मा को। देखो! यहाँ अपने आता है न? निज परमात्मद्रव्य, उसके ये सब लक्षण हैं। निजपरमात्मद्रव्य। उस निजपरमात्मा में विद्यमान। कौन विद्यमान? **सहजदर्शन, सहजचारित्र, सहजसुख और सहजपरमचित्शक्तिरूप निज कारणसमयसार के स्वरूपों को युगपद् जानने में समर्थ होने से...** यहाँ पर्याय की बात नहीं है। आहाहा! पर्याय की बात नहीं। यह तो ध्रुव का ऐसा लक्षण है।

मुमुक्षु : ध्रुव में ऐसी शक्ति पड़ी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं को त्रिकाल युगपद् जाने – ऐसा ही स्वभाव ही है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय प्रगट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो प्रगट पर्याय है। समझ में आया ? त्रिकाल ज्ञान ध्रुव है, वह ध्रुव को बराबर जानता है – ऐसा कहते हैं। ऐसा वह पड़ा है। आहाहा! ब्रह्म उपदेश, आता है न भाई!...उसमें ही यह है। देखो... ११-१२ पूरी होती है न? फिर तेरहवीं गाथा। बारहवीं गाथा में यह ब्रह्म उपदेश किया – ऐसा कहते हैं। **इस प्रकार संसाररूपी लता का नूर छेदने को कुठाररूप...** है। हथियार को क्या कहते हैं? कुठार।

परमपारिणामिक स्वभाव संसार को छेदने के लिये कुठार के समान है, उसका अर्थ कि छेदनेवाली पर्याय नहीं। संसार छेदनस्वरूप ही उसका है। समझ में आया? भगवान ध्रुवज्ञायकभाव, जिसे यहाँ निष्क्रिय कहा था, निष्क्रिय कहा था, जिसमें परिणमन नहीं, मोक्षमार्ग नहीं, जिसमें मोक्ष नहीं – ऐसा ध्रुवस्वरूप, कहते हैं, वह अपने में अपने को त्रिकाल जाने – ऐसा इसमें स्वभाव पड़ा ही है। अपने को-ध्रुव को ध्रुव जाने – ऐसा स्वभाव त्रिकाल पड़ा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म हल्के हों तब जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म की यहाँ बात ही नहीं। कर्म उसके घर में (रहे), वे तो परद्रव्य हैं। वे स्वद्रव्य में कहाँ आये हैं? आहाहा! पर्याय की बात नहीं, वहाँ फिर कर्म की बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! भगवान आत्मा... देखो, कहते हैं न **अनाथ मुक्तिसुन्दरी का नाथ** – उसकी भावना करनी चाहिए। वह त्रिकाल भगवान मुक्तिसुन्दरी का नाथ! आहाहा! उसका अनुभव करना चाहिए। नियमसार में बहुत सरस परमपारिणामिकभाव का बहुत वर्णन किया है, बहुत।

यहाँ कहते हैं **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** ओहो! लो, अभी तो उसी-उसी में बहुत बाकी है।

मुमुक्षु : माल निकले न!

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें है या नहीं? यहाँ कहते हैं निजपरमात्मा त्रिकाली द्रव्य।

एक समय की वर्तमान अवस्था के पीछे जो ध्रुव चीज़ पड़ी है, उसकी बात चलती है क्योंकि धर्मी का ध्येय वह है और धर्मी को सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वह द्रव्य की दृष्टि से प्रगट हुआ है। समझ में आया ? आहाहा! **प्रत्यक्षप्रतिभासमय...** किसे प्रतिभास हुआ ? यह द्रव्य प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है, स्वरूपप्रत्यक्ष ही है। वस्तु, वस्तुरूप से अन्दर स्वरूपप्रत्यक्ष है। ऐसे मति और श्रुतज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष होकर आत्मा का अनुभव हुआ तो कहते हैं कि प्रत्यक्षप्रतिभासमय ध्रुव है, वह मेरा ध्येय है। आहा! भारी कठिन काम, जगत को...। विपिनभाई! ऐसा सुनने को मिला नहीं।

अकेला भगवान, जिसके ज्ञान की पर्याय में ध्येयरूप से ध्रुव भगवान है। कहते हैं कि वह तो प्रत्यक्षप्रतिभासमय वस्तु ही है। अनादि-अनन्त प्रत्यक्ष प्रतिभास वस्तु ही ऐसी है। आहाहा!

अविनश्वर... है। ठीक! प्रत्यक्ष के अतिरिक्त का परोक्षपना, उसका निषेध किया। समझ में आया ? अथवा एक समय की पर्याय जो केवलज्ञान की प्रत्यक्ष पर्याय है, उसका भी निषेध हो गया। आहाहा! **अविनश्वर है...** भगवान ध्रुवस्वरूप त्रिकाल अविनश्वर है। पर्याय तो नाशवान है। केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है। यह बात! यहाँ तो केवलज्ञान की पर्याय, वह एक समय रहती है, दूसरे समय में उसका नाश होता है। पर्याय है न उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्। केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, दूसरे समय उस पर्याय का नाश होता है, दूसरे समय दूसरा केवलज्ञान उत्पन्न होता है। ओहोहो!

केवलज्ञान नाशवान है। सदृश रहता है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है। यहाँ तो त्रिकाल की अपेक्षा से तो उसे नाशवान कहा है। समझ में आया? ऐसी की ऐसी केवलज्ञान की पर्याय प्रगट हुई, ऐसी की ऐसी सदृशरूप रहती है। पर्याय वह की वह नहीं, परन्तु वैसी की वैसी, वैसी की वैसी रहती है, इस अपेक्षा से कूटस्थ कहा है। है तो नाशवान। एक भगवान ध्रुवस्वरूप अविनाशी है। आहाहा! यहाँ तो अभी शरीर और पर नाशवान है, यह अन्दर बैठता नहीं। आहाहा! यह नाशवान पदार्थ है - ऐसा बैठता नहीं। राग नाशवान है, यह इसे बैठता नहीं। पर्याय नाशवान कैसे बैठे ? आहाहा! बैठाकर बैठावे। भगवान स्वयं बैठावे तो बैठे। समझ में आया ? निश्चय गुरु तो यह आत्मा है। निश्चय देव

और निश्चय.. तीर्थ एक ध्रुव आत्मा है। इस तीर्थ में स्नान करो ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा ! गजब मार्ग, भाई !

अविनश्वर... कभी नाश नहीं होता। उसमें पलटना नहीं होता – ऐसा कहते हैं। ध्रुव में पलटना कैसा ? परिणमन कैसा ? परिणमन है, वह तो नाशवान है। आहाहा ! समझ में आया ? शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण। दूसरे में परमपारिणामिकभाव ऐसा शब्द आता है, भाई ! परमपारिणामिक। यहाँ शुद्ध पर जोर देकर त्रिकाल शुद्ध वह परिणम.. भव्य-अभव्य जीव। शुद्धपारिणामिक सहजभाव, परमभाव। केवलज्ञानादि भी अपरमभाव है। समझ में आया ? आहाहा !

नियमसार की ५० वीं गाथा में कहा न ! क्षायिक समकित भी परस्वभाव है, परस्वभाव है, परद्रव्य है, परस्वभाव है। गजब बात है ! ५० वीं गाथा में लिया, भगवान ! तेरा स्वभाव तो त्रिकाल, वह तेरा स्वभाव है। आहाहा ! एक समय की क्षायिक समकित की पर्याय, परस्वभाव है। नियमसार में है, इसमें नहीं। नियमसार ५० गाथा है न ? परस्वभाव, हों ! परभाव नहीं।

यहाँ तो पहले परस्वभाव। पूर्वोक्तस्वभाव परस्वभाव है। वे चार भाव परस्वभाव है। क्षायिक समकित परस्वभाव है। आहाहा ! यह तो कोई दिगम्बर सन्त ! कहते हैं कि चारित्र-पर्याय परस्वभाव है। सम्यग्दर्शनपूर्वक अनुभव में वीतरागी चारित्रपर्याय प्रगट हुई, वह भी परस्वभाव है।

मुमुक्षु : किसकी अपेक्षा से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल की अपेक्षा से। राग की अपेक्षा से तो स्वभाव है परन्तु त्रिकाल की अपेक्षा से परस्वभाव है और परद्रव्यं-उसे परद्रव्य कहा। आहाहा ! त्रिकाली ज्ञायकभगवान, वह स्वद्रव्य और निर्मल पर्याय, मोक्ष का मार्ग, वह पर्याय परद्रव्य है। परस्वभाव और परद्रव्य। आहाहा ! और हेय। तीन बोल लिये। **शुद्धान्तस्तत्त्वस्वरूपं स्वद्रव्यमुपादेयम्**। भगवान आत्मा... देखो ! सहज.. बहुत ऊँचा कहा **शुद्ध-अन्तस्तत्त्व-स्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (-सहज परम-पारिणामिकभाव जिसका लक्षण है ऐसा) कारणसमयसार है**। आहाहा ! त्रिकाली

भगवान, जिसमें मोक्ष की परिणति भी नहीं—ऐसा भगवान ध्रुव, कहते हैं कि शुद्धपारिणामिकभाव और उसके अतिरिक्त धर्म की एक समय की पर्याय, सच्चे धर्म की पर्याय, हों! वह भी परस्वभाव, परद्रव्य और हेय है। वह हेय है, उपादेय नहीं। आहाहा! सेठ! कभी ऐसा सुना नहीं।

मुमुक्षु : आठ वर्ष हो गये, आपके पास पहली बार सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है, किसी समय नहीं था इस गाथा में? पहले पढ़ा गया है। समझ में आया? यह तो अगम्यगम्य की बातें हैं।

कहते हैं, अत:तत्त्व स्वद्रव्य जिसे यहाँ पारिणामिकभाव कहते हैं। पारिणामिकपरम-भावलक्षण। पारिणामिक, शुद्धपारिणामिक ऐसा कहा है। क्योंकि अशुद्ध पारिणामिक का निषेध करना है न! शुद्धपारिणामिकपरमभाव। दूसरा, परमभाव। केवलज्ञानादि, क्षायिक समकित आदि अपरमभाव है। परमभाव भगवान ध्रुव है। आहाहा! निजपरमात्मद्रव्य। अपना निजपरमात्मद्रव्य त्रिकाली। देखो! निज-अपना परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि उसे अपना ध्येय बनाकर ऐसा जानता है और मानता है। यह मैं हूँ। समझ में आया? हमेशा निर्णय तो पर्याय करती है परन्तु पर्याय निर्णय करती है कि 'यह मैं हूँ।' समझ में आया?

निजपरमात्म.. देखो, कितने विशेषण पहले आये थे। पहले आया था न? सर्वविशुद्धपारिणामिक परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तत्व-भोक्तृत्व से रहित है और बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है। दूसरे पृष्ठ पर आया है। समझ में आया? पन्ना है न? समझ में आया? जब पढ़ा जाये तब पता होता है या नहीं? तो ऐसे कैसे भूल जाते हैं? सब भूल गये। पन्ना भूल गये। समझ में आया?

मुमुक्षु : भूल से दूसरा पन्ना रखा गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु भूल से कैसे रखा गया? वापस यह कोई बारम्बार नहीं आता। समझ में आया? ऐसा **निजपरमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ',...** वही मैं हूँ। सम्यग्दृष्टि अपने को ध्येय... वही मैं हूँ-ऐसा विशेषण है।

परन्तु ऐसा नहीं भाता... नास्ति से बात करते हैं। अनेकान्त है। परन्तु सम्यग्दृष्टि ऐसी भावना नहीं करता कि '**खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।**' मैं पर्यायरूप हूँ - ऐसी भावना नहीं

करता। समझ में आया? '**खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।**' ऐसी भावना नहीं करता। आहाहा! साधारण पामर का–अज्ञानी का तो कलेजा काँप जाये। हाय. हाय.. ऐसा मार्ग! यह वीतराग ऐसा एकान्त कहते हैं? यह तो एकान्त है... एकान्त है.. एकान्त है.. अरे! सुन तो सही। एकान्त ही कहा जाता है न!

मुमुक्षु : सम्यक् एकान्त ही होय न!

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यक् एकान्त ऐसी स्वद्रव्य की दृष्टि बिना, ध्येय हुए बिना सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? और सम्यग्दर्शन हुआ तो भी ध्येय तो वह का वही है। फिर शास्त्र में आता है या नहीं? अव्रत का त्याग करके व्रत करे, वह तो स्वरूप का अनुभव हुआ है, उसमें अव्रत के त्याग का अर्थ कि स्वरूप में स्थिरता विशेष हुई है, तब अव्रत का त्याग होकर व्रत के विकल्प की भूमिका में ऐसा आता है। वह आनन्द में स्थिर है तो व्रत कब आवे? समाधिशतक में आता है न? पूज्यपादस्वामी। इष्टोपदेश में है। अव्रत छोड़कर व्रत लेना, उसका अर्थ क्या?

मुमुक्षु : फिर तो दोनों छोड़ने योग्य हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छोड़ने योग्य – ऐसा नहीं, वह चीज़ ही मुझमें नहीं। व्रत और अव्रत का विकल्प मुझमें है ही नहीं। मेरी पर्याय में नहीं तो द्रव्य में तो है ही नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने के बाद अनुभव के आनन्द के स्वाद में विशेष स्थिर होकर आनन्द की विशेष दशा हुई, तब अव्रत का त्याग हुआ और तब व्रत के विकल्प की भूमिका उसे उत्पन्न होती है परन्तु आनन्द में विशेष आया है, उस भूमिका में व्रत का विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया? अव्रत है तो नरकादि में जायेगा। व्रत से स्वर्ग में जायेगा। वह (व्रत) छाया है, (अव्रत) वह धूप है – ऐसा आता है न?

मुमुक्षु : वह....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ।

मुमुक्षु : खण्डरूप...

पूज्य गुरुदेवश्री : खण्डरूप पाँच ज्ञान है न? पर्याय है, वह खण्डरूप है। पर्याय

है न पर्याय? राग-बाग नहीं। एक समय की पर्याय वह खण्डरूप है। वह शुद्ध केवलज्ञान की पर्याय भी खण्डरूप है। भगवान त्रिकाल अखण्ड है। समझ में आया? खण्डज्ञान भी भाता नहीं तो फिर शुभराग को भावे और निमित्त को प्राप्त करने की भावना हो, वह ज्ञानी को ऐसा होता नहीं। आहाहा! गजब बात, भाई!

मुमुक्षु : ऐसी भावना बारम्बार सम्यग्दृष्टि भाता है तो वह आत्मा को ही सम्मत करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको सम्मत करता है ध्रुव को। ध्रुव दृष्टि में आया, वही सम्मत करता है। दृष्टि वहाँ पड़ी है तो बारम्बार वहाँ ही दृष्टि जाती है।

मुमुक्षु : प्रत्येक समय..

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय में है दृष्टि, परन्तु यहाँ बात करनी है न! नियमसार में गाथा आती है। कि पंचाचार निर्मल पालनेवाले मुनि पंचम गति के कारण पंचम भाव का स्मरण करते हैं - ऐसा श्लोक आता है। क्या कहा? निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र-तप और वीर्य-निर्मल वीतरागी वीर्य - ऐसे पंचाचार पालनेवाले धर्मात्मा पंचमगति का कारण, पंचमभाव का स्मरण करते हैं। ऐसा पाठ है। स्मरण करते हैं, इसका अर्थ परिणति बारम्बार वहाँ ही ढली है। आहाहा! समझ में आया? कथन तो ऐसा ही आवे न, कथन दूसरा किस प्रकार आवे? बाकी तो समकिती के ध्येय में ध्रुव पर दृष्टि पड़ी है और परिणमन हुआ है। समझ में आया? वह परिणमन निरन्तर चालू है। उसका नाम ध्रुव को ध्याता है - ऐसा कहने में आता है। भाषा में उपदेश तो उपदेश की पद्धति से आता है। भाषा जड़, भाव कहना अन्तर के.. समझ में आया?

निजपरमात्मद्रव्य, 'वही मैं हूँ', परन्तु ऐसा नहीं भाता कि 'खण्डज्ञानरूप मैं हूँ।' मैं मतिज्ञान और श्रुतज्ञानरूप हूँ - ऐसी भावना ज्ञानी की नहीं होती। आहाहा! **ऐसा भावार्थ है।** लो, ऐसा भावार्थ है। सम्पूर्ण गाथा का यह भावार्थ है। **यह व्याख्यान, परस्पर सापेक्ष ऐसे आगम-अध्यात्म के..** आगम और अध्यात्म से मिलाकर यथार्थरूप कहा - ऐसा कहते हैं। आगम की भाषा क्या है और अध्यात्म की भाषा क्या है, इन दोनों को मिलाकर कहने में आया है। मोक्ष का मार्ग आगमभाषा से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक कहा। मोक्ष

का मार्ग अध्यात्मभाषा से शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम और शुद्धोपयोग कहा। दोनों में विरोध नहीं है। दोनों अपेक्षा लेकर बात की है। समझ में आया?

तथा नयद्वय... द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय के अभिप्राय से अविरुद्धपूर्वक कहने में आया है। क्योंकि पहले कहा था कि जो चार भाव हैं, वे पर्यायरूप हैं। त्रिकाली भाव द्रव्यरूप है – ऐसे दो को मिलाकर बात की थी। पर्याय नहीं – ऐसा नहीं; पर्याय, पर्याय में है। समझ में आया? देखो! यहाँ कहते हैं। (**तथा नयद्वय के (द्रव्यार्थिक..)** त्रिकाली द्रव्य ध्रुव और वर्तमान पर्याय चार भावरूप दोनों को मिलाकर **अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही कहा गया है..** उसमें कोई विरोध है नहीं। आचार्य स्वयं सिद्ध करते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म तो है, भाई!

मुमुक्षु : काम तो पर्याय से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, काम तो पर्याय से है परन्तु पर्याय का ध्येय कहाँ? इसकी बात है। दो बात की है कि चार भाव पर्यायरूप है, पारिणामिक ध्रुवरूप है। भावना भानेवाला ध्रुव की भावना करता है, पर्याय की भावना नहीं करता क्योंकि मोक्षमार्ग तो पर्याय है। आहाहा! **नयद्वय के (द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिकनय के) अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही कहा गया होने से सिद्ध है (निर्बाध है),..** उसमें किसी अंश में भी आगम से और अध्यात्म से विरोध नहीं है – ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं। **ऐसा विवेकी जानें।** आहाहा! देखो! एक शब्द में कह दिया, ऐसा विवेकी जानें। राग से पृथक् होकर ध्रुव की दृष्टि करने से विवेकी को उसकी सब खबर पड़ती है। समझ में आया? विवेकी जाने, हों! संस्कृत टीका में है। पहले से कर्ताकर्म उठाया है। आत्मा कर्ताकर्म नहीं, विकार का कर्ता और विकार का भोक्ता ध्रुव नहीं, यहाँ से उठाया था न? समझ में आया? क्या कहते हैं? विकार आया न पहले?

मुमुक्षु : फिर ऐसा आया कि जाननेवाला तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जाननेवाला दूसरा, वह जाननेवाला दूसरे अर्थ में कहा है। अपने को जानता है, वह जाननेवाला, यह तत्त्व चलेगा अपने अब।

मुमुक्षु : वह विवेकी जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; वही विवेकी जानता है। अलौकिक मार्ग है, भाई! कर्ता-कर्म उड़ा दिया यहाँ तो जानना – ऐसा कहा। जानने का अर्थ ऐसा कि पर्याय में उसका ज्ञान होता है। उसे जाने ऐसा कहा है सहजरूप परिणमन की पर्याय में उस प्रकार का ज्ञान होता है। समझ में आया? जानो–ऐसा कहा। वहाँ क्या जानने जाता है? वह जानने की ऐसी पर्याय प्रगट होती है। राग आवे तो उसे जाने ऐसा कहना, उपशम हो तो उसे जाने ऐसा कहना, क्षयोपशम–क्षायिक हो तो उसे जाने ऐसा कहना। कहना अर्थात् उसे जाने।

मुमुक्षु : जानता नहीं और कहना।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञात नहीं – ऐसा नहीं। जानने की अपनी पर्याय में वह आया है। इतनी व्यवहार की अपेक्षा से जाने ऐसा कहने में आया है। समझ में आया? सब बात आयी। लो, बारहवाँ दिन पूरा हुआ।

यह बारहवाँ दिन है, पूरा हो गया। ऐसा कभी नहीं चला, ऐसा व्याख्यान बाहर नहीं आया, ऐसा स्पष्टीकरण पहले नहीं हुआ। आहाहा!

निष्क्रिय भगवान आत्मा अर्थात् सिद्ध की पर्याय से भी रहित भगवान आत्मा.. आहाहा! ऐसी [illegible] की जानते हैं – ऐसा कहते हैं। जिसे विवेक नहीं, वह जान नहीं सकता।

क्षीणमोह गुणस्थान की प्राप्ति का अमोघ उपाय

मुमुक्षु : विवेकी अर्थात् साधक?

...दर्शानेवाले श्री सद्गुरुदेव की जय हो.. जय हो.. जय हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक, ज्ञानी, समकिती। यहाँ तो सम्यग्दृष्टि जानता है – ऐसा लेना है न? अज्ञानी को पता ही कहाँ है (कि) क्या वस्तु है? समझ में आया? अपनी दृष्टि में ध्रुव आया है, उसे शुद्ध विवेक है। उसे सबका ख्याल है कि पर्याय यह, द्रव्य यह, दूसरो को पता नहीं पड़ता। आहाहा!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रीमद् आचार्यवर अमृतचन्द्रसूरि विरचित श्री समयसार कलश की

पण्डितश्री राजमलजी कृत कलश टीका

कलश २७१

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि, न कालेन खंडयामि, न भावेन खंडयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि।

खण्डान्वय सहित अर्थ — 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' [**भावः अस्मि**] मैं वस्तु स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ? [**ज्ञानमात्रः**] चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका ऐसा हूँ। 'एकः' समस्त भेद विकल्पों से रहित हूँ। और कैसा हूँ? 'सुविशुद्धः' द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मरूप उपाधि से रहित हूँ। और कैसा हूँ? '**द्रव्येण न खण्डयामि**' जीव स्वद्रव्यरूप है – ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। '**क्षेत्रेण न खण्डयामि**' जीव स्वक्षेत्ररूप है – ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। '**कालेन न खण्डयामि**' जीव स्वकालरूप है – ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। '**भावेन न खण्डयामि**' जीव स्वभावरूप है – ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु स्वद्रव्य-स्वक्षेत्र-स्वकाल-स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही जाती है, तथापि चार सत्ता नहीं है; एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त—चार सत्ता इस प्रकार से तो नहीं है कि जिस प्रकार एक आम्र फल चार प्रकार है। उसका विवरण—कोई अंश रस है, कोई अंश छिलका है, कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य है, कोई अंश जीवक्षेत्र है, कोई अंश जीवकाल है, कोई अंश जीवभाव है—इस प्रकार तो नहीं है। ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है, इसलिए स्पर्शमात्र से विचारने पर स्पर्शमात्र है, रसमात्र से विचारने पर रसमात्र है, गन्धमात्र से विचारने पर गन्धमात्र है, वर्णमात्र से विचारने पर वर्णमात्र है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है, इसलिए स्वद्रव्यरूप से विचारने पर स्वद्रव्यमात्र

है, स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है, स्वकालरूप से विचारने पर स्वकालमात्र है, स्वभावरूप से विचारने पर स्वभावमात्र है। इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है। अखण्डित शब्द का ऐसा अर्थ है।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥८-२७१॥

खण्डान्वय सहित अर्थ— भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है। जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है—'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' [**अहं**] मैं [**अयं यः**] जो कोई [**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि**] चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ 'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' [**ज्ञेयः**] अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का [**ज्ञानमात्रः**] जानपना मात्र। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक, समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' [**ज्ञान**] जानपनारूप शक्ति [**ज्ञेय**] जानने योग्य शक्ति [**ज्ञातृ**] अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र ऐसे तीन भेद [**मद्वस्तुमात्रः**] मेरा स्वरूपमात्र है [**ज्ञेयः**] ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय, यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तियप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है। कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' [**ज्ञान**] जीव ज्ञायक हैं [**ज्ञेय**] जीव ज्ञेयरूप है - ऐसा जो [**कल्लोल**] वचनभेद उससे [**वल्गन्**] भेद को प्राप्त होता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है ॥८-२७१॥

साध्य साधक अधिकार
श्री समयसार कलश टीका कलश २७०

✧ ✧ ✧

न द्रव्येण खंडयामि, न क्षेत्रेण खंडयामि, न कालेन खंडयामि, न भावेन खंडयामि; सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि।

सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि। देखो! ऊपर क्या कहा? अब अन्तिम कलश है न, (इसलिए) एकदम अभेद के पहलुओं के प्रकार बताते हैं। ऊपर ७० में गया न, यह तो थोड़ा लेते हैं। यह तो उसके साथ सन्धि करते हैं।

आत्मा वस्तुस्वरूप से पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म से रहित है परन्तु अनन्त शक्तिसहित है परन्तु ऐसी अनन्त शक्तिसहित को एक-एक शक्ति को एक-एक नय से खोजने से खोज खो जाती है। ऐसा आया था। **सद्यः प्रणश्यति** का अर्थ ही उसका किया। **सद्यः प्रणश्यति** है न? **सद्यः प्रणश्यति** चौथी लाईन में है। **खण्ड-खण्डरूप होकर मूल से खोज मिटा-नाश पाता है।** अर्थात् आत्मा एक समय में अनन्त शक्तिसम्पन्न अनन्त गुणरूप है, तथापि एक-एक शक्ति को एक नय से खोजने से उसकी खोज नाश हो जाती है। खोज अर्थात् एकरूप वस्तु का अनुभव उसमें नहीं हो सकता। समझ में आया?

यह वस्तु स्वयं अनन्त शक्ति / गुणसम्पन्न वस्तु भले (हो) और विकार शरीर कर्म से तो वह प्राप्त होती नहीं। पुण्य-पाप के विकल्प से या शरीर की अवस्था के आश्रय से उस वस्तु की प्राप्ति का अनुभव नहीं होता परन्तु उसमें अनन्त गुण है। उन अनन्त गुण में एक-एक गुण का लक्ष्य करने जाये तो वह खण्ड-खण्ड होने से उसका अनुभव सिद्ध नहीं होता। क्योंकि वस्तु एकरूप है, एकरूप दृष्टि होने से उसका अनुभव होता है। अनन्तपने की दृष्टि करने से उसका अनुभव नहीं होता - ऐसा यहाँ इस गाथा में कहा है।

अब यहाँ चार बोल का निषेध करते हैं। उसमें अनन्त गुण के अनन्त नयों का निषेध किया; अब चार का निषेध (करते हैं)। फिर करेंगे तीन का निषेध –ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। परन्तु यह पहले चार का निषेध करते हैं।

पहले अन्तिम बोल लेते हैं **सुविशुद्ध एको ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि**। कैसा हूँ मैं ? कि **ज्ञानमात्रः भावोऽस्मि**। '**भावः अस्मि**' '**भावः अस्मि**' भाव अर्थात् वस्तु। **मैं वस्तु स्वरूप हूँ। मैं वस्तु स्वरूप हूँ। और कैसा हूँ ? ज्ञानमात्रः** उस वस्तु का स्वभाव **चेतनामात्र है..** जानना-देखना-ऐसा ही उसका स्वभाव है। **चेतनामात्र है सर्वस्व जिसका - ऐसा हूँ।** सब सर्वस्व, उस चेतनामात्र में सब समाहित हो गया। यह पुण्य-पाप, शरीर, कर्म उसमें नहीं। नहीं की यहाँ बात नहीं की। अब यहाँ है वह चेतनामात्र सर्वस्व... सर्वस्व.. सर्व अपना, सर्वस्व-सर्व अपना, चेतनामात्र वह वस्तु है।

एक हूँ **एको** है न अन्दर? **समस्त भेद विकल्पों से रहित हूँ**। एक हूँ; इसलिए शुद्ध हूँ शुद्ध हूँ इसलिए एक हूँ। एक हूँ, इसलिए कुछ भी भेद के विकल्प से रहित हूँ। **और कैसा हूँ ? 'सुविशुद्धः'..** देखो! अनुभव की दृष्टि होने पर यह होता है - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? आत्मा का अनुभव होने में अकेली वस्तु चैतन्यमात्र सर्वस्व एक और सुविशुद्ध, सुविशुद्ध अर्थात् अब इसमें लिखा **द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरूप उपाधि से रहित हूँ**। ऐसा आत्मा हूँ।

और कैसा हूँ ? 'द्रव्येण न खण्डयामि'.. यह व्याख्या अलग प्रकार से करते हैं। उसमें द्रव्य से खण्डित नहीं होता - ऐसा अर्थ अपने पण्डित जयचन्दजी में आता है। यहाँ तो कहते हैं जीव द्रव्य **स्वद्रव्यरूप है - ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ**। ऐसा। मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, स्वद्रव्यरूप हूँ - ऐसा होने पर भी वह एक भाग उसमें नहीं आता - ऐसा कहते हैं। क्षेत्र, काल और भाव - ऐसे चार भंग में मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, इससे उसके दूसरे तीन बोल शामिल नहीं आते - ऐसा नहीं है। मैं एकरूप अखण्ड द्रव्य में अखण्ड ही हूँ। समझ में आया ?

जीव स्वद्रव्यरूप है.. वस्तुरूप से, वस्तु। **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** एक द्रव्यरूप हूँ - ऐसा कहने से कहीं द्रव्य का भाग-खण्ड हुआ है और क्षेत्र, काल,

भाव का भंग कुछ रह गया है, ऐसा नहीं है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कहो, समझ में आता है या नहीं इसमें? यह तो अब सब ऊँची-सूक्ष्म बात है। जम्बुभाई!

मुमुक्षु : ऊँची और सूक्ष्म दोनों अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म में ध्यान रखना होता है। ऊँची में सच्ची है, ऐसा। समझ में आया?

द्रव्य-स्वद्रव्य, देखा? भाषा भी वापस कैसी (की है)। स्वद्रव्य। **द्रव्येण** अर्थात् जीव स्वद्रव्यरूप है—ऐसा कहने में दूसरे द्रव्यरूप तो नहीं परन्तु वह स्वद्रव्य कहने में एक अंश आ जाता है – ऐसा नहीं। मैं स्वद्रव्यरूप हूँ अर्थात् क्षेत्र, काल, भाव का दूसरा अंश भी अन्दर बाकी कोई रह जाता है – ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक द्रव्य चेतनामात्र वस्तु, मैं स्वद्रव्यरूप हूँ, स्वद्रव्यरूप हूँ – ऐसा कहने पर, **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।**

'क्षेत्रेण न खण्डयामि' जीव स्वक्षेत्ररूप है.. दूसरा बोल। जीव स्वक्षेत्ररूप है। ऐसा कहने पर भी एक अंश नहीं, उसमें भी सब द्रव्य, काल, भाव का अखण्ड एकपना आ जाता है – ऐसा कहते हैं। गजब सूक्ष्म बात, भाई! यह जीव का यह अखण्डपना ऐसा दृष्टि में आना, उसका नाम धर्म और सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहते हैं, मैं जीव स्वक्षेत्ररूप हूँ। अपने क्षेत्र-चौड़ाई इतना उस प्रकार मैं जीव स्वक्षेत्र हूँ। **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** इतने स्वक्षेत्ररूप, मैं स्वक्षेत्ररूप हूँ – ऐसा होने पर भी मैं तो अखण्ड ही हूँ। कोई भाग उसमें, स्वक्षेत्रमय हूँ उसमें कोई अन्दर भाव का या स्वकाल का या द्रव्य का भाग बाकी रह जाता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा धर्म, भारी, भाई! अब इसमें निवृत्ति कहाँ लोगों को? बाहर से अभी तो विकल्प से, दया, दान और भक्ति से धर्म करना है। इससे धर्म होता है और इससे कल्याण होता है..

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : भटकने के काल में। अनन्त काल से भटकता है, उसमें भटकना है – चौरासी अवतार का भटकना है। यह उससे मानता है कि मेरा कल्याण होगा। वस्तु स्वयं अखण्डानन्द, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है। उस वस्तु के जो चार भाग, उसमें

एक भाग में दूसरा भाग रह जाता है – ऐसा करके यहाँ निषेध करते हैं। दूसरी बात तो क्या करना? समझ में आया? पुण्य-पाप, दया, दान तो विकल्प / राग है, विकार है। उससे धर्म-बर्म है नहीं, उससे आत्मा का अनुभव नहीं होता। शरीर की क्रिया से तो कहीं रह गया। कौन जाने कहाँ का कहाँ डालते हैं! ओहोहो! शरीर की क्रिया-सचेत जीव से धर्म होता है, लो! अरे रे! क्या कहा? अरे! ऐसा काल मिला, बापू! भाई! कठिनाई से तिरने के काल में डूबने का रास्ता कहाँ लिया? आहाहा!

कहते हैं, यहाँ तो मैं स्वयं चार अंशरूप है, उसमें एक अंश में भी तीन अंश रह जाते हैं, ऐसा मैं नहीं – ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! रागरूप तो नहीं, पुण्यरूप नहीं, पापरूप नहीं, शरीर-वाणीरूप नहीं, कर्मरूप नहीं परन्तु एक अंश में मैं स्वज्ञेयरूप हूँ तो और दूसरे अंश उसमें बाकी रह जायें – ऐसा नहीं है, सब उसमें ही आ जाते हैं। आहाहा! एक असंख्य प्रदेशी एक वस्तु स्वक्षेत्ररूप, वह स्वयं द्रव्य है। उसमें उसकी अवस्था आदि का काल है और उसमें रहनेवाले गुण सब एक में आ जाते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह कलश है?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कलश नहीं, गद्य है गद्य, परन्तु गद्य है अमृतचन्द्राचार्य का। कहो, समझ में आया? कलश नहीं परन्तु अमृतचन्द्राचार्य का है यह, किसी का किया हुआ नहीं, हिम्मतभाई ने इसमें ऊपर से नहीं डाला है, यह तो भाई ने लिखा है – पण्डित राजमलजी ने यह अर्थ किये हैं। आहाहा! समझ में आया?

मैं एक स्वरूप से, स्वक्षेत्र से हूँ, तथापि उसमें खण्ड नहीं परन्तु अखण्ड हूँ। स्वक्षेत्र का भाग एक और स्वभाव, काल और द्रव्य का भाग दूसरा – ऐसा उसमें रहता नहीं। समझ में आया?

'कालेन न खण्डयामि' जीव स्वकालरूप है.. भगवान अपने स्वकाल से, त्रिकाल है। अनन्त गुण, द्रव्य, क्षेत्र सब उसमें समाहित हो जाता है। स्वकाल त्रिकाल, स्वकाल अर्थात् अपना काल अर्थात् अपने से त्रिकाल ऐसा का ऐसा है। वस्तु जो अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्यरूप, क्षेत्ररूप, भावरूप – ऐसा स्वकाल में सब आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? **'कालेन न खण्डयामि' जीव स्वकालरूप है..** परन्तु काल से न करके यहाँ

प्रत्येक में स्व डाला है। और कोई काल दूसरे का ले और दूसरे का द्रव्य ले.. **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।** भले मैं स्वकाल एक हूँ, स्वकाल एकरूप हूँ। त्रिकालरूप स्वकाल से एक हूँ – ऐसा कहने से मैं अखण्डित ही हूँ, उसमें कोई खण्ड, भेद, भंग है नहीं। समझ में आया?

'भावेन न खण्डयामि' जीव स्वभावरूप है... जीव स्व, स्व ऐसा लेना। जीव स्वभावरूप परन्तु जीव स्व-भावरूप है – ऐसा लेना। समझ में आया? मैं एक स्व-भाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि स्व-भाव, उस मेरे स्वभावरूप हूँ – ऐसा कहने पर भी अखण्ड ही हूँ। स्वभाव कहने पर कोई काल, द्रव्य और क्षेत्र कोई बाकी रह जाता है – ऐसा उसमें है नहीं। समझ में आया? **ऐसा अनुभवने पर भी मैं अखण्डित हूँ।**

भावार्थ इस प्रकार है कि एक जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभावरूप चार प्रकार के भेदों द्वारा कही जाती है... एक ही भगवान आत्मा का द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् असंख्य प्रदेश; काल अर्थात् त्रिकाल रहनेवाला काल; भाव अर्थात् अनन्त शक्ति – गुण—ऐसे चार प्रकार के भेद से एक चीज़ को कहने में आता है। **तथापि चार सत्ता नहीं है..** सत्ता तो चार में एक ही है। द्रव्य का सत्-अस्तित्व अलग; क्षेत्र का अस्तित्व अलग; काल का अस्तित्व अलग; और भाव का अस्तित्व अलग – ऐसा है नहीं। सत्ता तो एक ही है। द्रव्यसत्ता कहो तो वह; क्षेत्रसत्ता कहने पर वह; काल-त्रिकालरूप एकरूप सत्ता कहो तो वह; स्वभावरूप कहो तो वह। समझ में आया? **तथापि चार सत्ता नहीं है एक सत्ता है। उसका दृष्टान्त** – चार सत्ता, इस प्रकार तो नहीं है। चार प्रकार का अस्तित्व इस प्रकार से तो नहीं है। किस प्रकार से (है उसका) दृष्टान्त देते हैं। यह भगवान आत्मा इस शरीर, वाणी, कर्म से तो भिन्न है, यह मिट्टी है यह तो। कर्म से भिन्न, पुण्य-पाप का विकल्प / विकार उठता है, उससे भिन्न। तो कहते हैं उसे चार प्रकार से विभाजित करके कहें तो सत्ता चार है? किसकी तरह? ऐसा कहते हैं।

जिस प्रकार एक आम्र फल.. एक आम, आम – केरी। **चार प्रकार है। उसका विवरण—कोई अंश रस है,..** आम में एक भाग रस है, मीठा। **कोई अंश छिलका है,..** ऊपर की छाल है। एक रस है, एक छाल है। आम एक है, ऐसे उसके चार भाग। एक रस है, एक छाल है। **कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा है।** समझ में आया? कोई अंश

रस में से वापस अंश मीठा–भिन्न है, ऐसा। समझ में आया ? रस साधारण लिया, उसमें मिठास ली। चार भाग है ऐसा नहीं। समझ में आया ? यह चार भाग हैं ऐसा आत्मा में नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या कहा ? रस की विशेष पर्याय है। रस सामान्य है, उसका मिठास एक भाग है। समझ में आया ?

कोई अंश रस है, कोई अंश छिलका है, कोई अंश गुठली है, कोई अंश मीठा है। ऐसा नहीं है। क्या कहा ? एक आम में चार भाग। एक रस, छाल, गुठली और मिठास – ये चार भाग हैं। ऐसे आत्मा में चार भाग नहीं हैं। **उसी प्रकार एक जीव वस्तु कोई अंश जीवद्रव्य है,..** देखो! **कोई अंश जीवक्षेत्र है, कोई अंश जीवकाल है, कोई अंश जीवभाव है..** समझ में आया ? रस भावरूप से लिया और मिठास कालरूप से ली, भाई! भेद पाड़ना है न ? भेद। भाई! रस और मिठास, काल और भाव और छिलका तथा गुठली उसका क्षेत्र, वह द्रव्य पूरा। एक वस्तु भगवान आत्मा, जैसे उस आम के चार भाग हैं; वैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं हैं। समझ में आया ? तो कैसे हैं ?

ऐसा मानने पर सर्व विपरीत होता है। इस कारण इस प्रकार है कि जिस प्रकार एक आम्र फल स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है,... देखो, अब क्या कहा ? एक आम, वह वर्ण–गन्ध–रस–स्पर्श.. उठाया स्पर्श से। स्पर्श–आम; आम है, वह स्पर्श है तो वह; रस है तो वह; गन्ध है तो वह; वर्ण है तो वह। या चार भिन्न बोल हैं ? वर्ण एक इस जगह रहा, गन्ध इस जगह रही, इस जगह स्पर्श रहा – ऐसा है ? आम के चार तो भिन्न कहे। रस, छिलका अर्थात् छाल, गुठली और मिठास। वैसा आत्मा में नहीं है। आत्मा वस्तु एक स्वरूप देह से अत्यन्त भिन्न है। जैसे परमाणु में **स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण विराजमान पुद्गल का पिण्ड है,... इसलिए स्पर्शमात्र से विचारने पर स्पर्शमात्र है,..** क्या कहा ? इस आम को स्पर्शमात्र से विचार करने पर आम का पूरा स्पर्श स्वरूप ही है। समझ में आया या नहीं इसमें ? आम का दृष्टान्त तो एकदम स्पष्ट दिया है।

मुमुक्षु : आम का दृष्टान्त ही समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ले! ऐई! आम है न ? उसके ऊपर आत्मा को समझाने के लिये दृष्टान्त दिया कि भाई! केरी में एक रस है, एक छाल है, गुठली है और मिठास है। इसी

प्रकार आत्मा में ऐसे चार भाग हैं – ऐसा नहीं है। एक रह गया द्रव्य अलग, क्षेत्र अलग, काल अलग, और भाव अलग – ऐसा नहीं है। तब (कैसा है) ? जैसे आम में उस आम को स्पर्शरूप देखो तो पूरा स्पर्श ही है, रसरूप से देखो तो रस ही पूरा है, गन्धरूप से देखो तो गन्ध ही है, रंगरूप से देखो तो रंग पीला, वह पूरा पीला है। समझ में आया या नहीं ? इसी प्रकार आत्मा में.. यह कभी आत्मा क्या, इसे पता नहीं पड़ता।

कहते हैं **गन्धमात्र से विचारने पर गन्धमात्र है, वर्णमात्र से विचारने पर वर्णमात्र है। उसी प्रकार एक जीव वस्तु स्वद्रव्य,...** उसे द्रव्यरूप से देखे तो वही पूरी चीज़ है। स्वक्षेत्र से देखे तो पूरा स्वयं एक ही है। और स्वक्षेत्र में कोई द्रव्य दूसरा है, काल-भाव भिन्न है – ऐसा है नहीं। आम में स्पर्श से देखो तो अकेला स्पर्श ही है, पूरा आम स्पर्श (मात्र है)। रस से देखो तो रसमय ही है, रंग से देखो तो रंगमय है, गन्ध से देखो तो गन्धमय है। सुगन्ध आती है न उसकी ? इसी प्रकार भगवान आत्मा वस्तु से देखो तो भी वह; उसके स्वक्षेत्र से देखो तो भी वह; उसके स्वकाल से देखो तो भी वह और उसके स्व भाव से देखो तो भी वह। यह दृष्टान्त पंचाध्यायी में दिया है। उसके कर्ता राजमलजी हैं न। पंचाध्यायी के कर्ता भी राजमलजी हैं। यह आम का दृष्टान्त पंचाध्यायी में दिया है। इस प्रकार है।

मुमुक्षु : चार भाग में आम किस प्रकार समझ में आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री : चार भाग में टुकड़े-टुकड़े में समझ में आती है। आम वहाँ एक टुकड़ा आया, वहाँ पूरा नहीं आया। आम एक में। रस आया वहाँ गुठली नहीं आयी और गुठली आयी वहाँ छिलका नहीं आया, और छिलका आया वहाँ रस नहीं आया। यह और उसमें फिर डाला है, यह नहीं बोला, ख्याल में है। कहो, समझ में आया ? आम का छिलका देखा वहाँ गुठली नहीं आयी, गुठली देखी वहाँ छिलका नहीं आया और छिलका देखा वहाँ रस नहीं आया, रस देखो तो वहाँ उसकी मिठास की पर्याय नहीं आयी। ऐसा आत्मा में नहीं है। आत्मा को द्रव्य देखो तो कुछ भिन्न है ? जैसे छिलका देखो तो उसमें गुठली नहीं आयी, वैसे यह द्रव्य देखो तो क्षेत्र, काल, भाव, भिन्न पड़े हैं-ऐसा नहीं है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा देह से भिन्न तत्त्व है। समझ में आया ? वह सत्‌चिदानन्दस्वरूप, सत् शाश्वत्, ज्ञान और आनन्द (स्वरूप है)। कहते हैं कि उसे वस्तु से देखो तो वह एक

है। जैसे आत्मा को स्पर्श से देखो तो स्पर्शमात्र पूरा है, वैसे इसे स्वक्षेत्र से देखो तो वह है, उसे पूरे रस से देखो तो वह है, इसे स्वकाल से देखो तो वह है, उसे रंग से देखो तो वह है। आम में रंग का भाग अलग पड़ता होगा और स्पर्श का भाग अलग पड़ता होगा – ऐसा है? भाई! आम में से अकेला रस निकाल दो। स्पर्श, गन्ध और रंग रखो। कैसे होगा? उसमें से रस निकाल दो और स्पर्श, गन्ध और रंग रखो। उसमें से रंग निकाल दो और गन्ध, रस और स्पर्श रखो। ऐसा नहीं कहलाता?

मुमुक्षु : पृथक् पड़ता ही नहीं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : इसी प्रकार इस देह में भगवान आत्मा है। उसमें से कहते हैं कि उसका द्रव्य निकाल दो और अकेला क्षेत्र रहे, परन्तु क्या रहे? वह द्रव्य ही स्वयं अनन्त गुण का पिण्ड स्वयं ही आत्मा है। उसे क्षेत्र से देखो तो वह वही है। जैसे आम को रस से देखो तो पूरा एक है, रस अलग निकाल दो और वह रहे ऐसा भिन्न तो क्या रहे? आम ही नहीं रहेगा। इसी प्रकार आत्मा में वस्तु देखो तो उसरूप से है, उसका क्षेत्र देखो तो उसी रूप से वह है। वह द्रव्य और काल-भाव भिन्न रह जाते हैं – ऐसा नहीं है। काल से है, है ऐसा स्वकाल से है। स्व काल से है, उसमें सब आ गया। भाव, द्रव्य और क्षेत्र कुछ दूसरा भिन्न नहीं रह जाता। जैसे आम और रस लेने से सब आ जाता है। जुगराजजी! आहा..हा..!

आत्मा को समझना इसे (कठिन पड़ता है) उसे इसके मकान के धूल के ढ़ेर की बातें यदि करो तो इसे चार दिशा की बात याद आती है। एक मकान को चार दिशा बाँधते हैं या नहीं? क्या कहलाता है वहाँ कोर्ट में? चतुर्सीमा – चार सीमा, परन्तु घर तो एक है। चार सीमा बाँधे तो चार घर है? समझ में आया? वस्तु तो वह की वह है। इस ओर से कहो तो भी वह है, इसकी ओर से कहो तो भी वह है। इस ओर से कहो तो भी वह है, इसकी ओर से कहो तो भी वह है। या चार घर है?

इसी प्रकार भगवान आत्मा, देह में बिराजमान प्रभु, उसे कहते हैं गुठली की तरह या छाल की तरह यदि भिन्न-भिन्न चीज़ (देखो) तो उसमें दिखेगा, जुदी-जुदी चीज़ दिखेगी। पूरा आम नहीं दिखेगा। इसी प्रकार आत्मा को एक-एक भाग है गुठली, वह छिलका ऐसा नहीं। द्रव्य यह, क्षेत्र यह, काल यह और भाव यह – ऐसा नहीं है। भगवान आत्मा गुण-

पर्याय का पिण्ड वह द्रव्य है। विकार नहीं, कर्म नहीं, शरीर नहीं। वह असंख्य प्रदेशी जो चौड़ा क्षेत्र है, वही आत्मा है, वही पूरा है। उसे स्वकाल लो, काल-त्रिकालरूप काल, हों! उसका त्रिकाल। एक समय की पर्याय की बात नहीं। स्वकाल स्वयं काल है। उसमें द्रव्य भी आ गया, क्षेत्र भी आ गया और भाव भी आ गया। स्वकाल से देखो तो वह पूरा है।

स्वभाव – भगवान आत्मा को ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि अनन्त गुण-भाव है। उस भाव से देखो तो एक पूरी चीज़ है। भाव से देखो तो कोई द्रव्य भिन्न रह जाता है, क्षेत्र भिन्न रह जाता है और काल भिन्न रह जाता है – ऐसा नहीं है। समझ में आया या नहीं? आम में गुठली कहने से छिलका, रस और मिठास भिन्न रह जाते हैं। वैसे इसका द्रव्य कहने से कोई क्षेत्र, काल, भाव भिन्न रह जाता है – ऐसा नहीं है। आम को जहाँ स्पर्श कहने से चार साथ में आ जाते हैं, सब साथ ही है। समझ में आया? यहाँ तो चार बोल भी नहीं, एकरूप है – ऐसा सिद्ध करना है। चार में से एक। उन अनन्त में से एक, ऊपर अनन्त में से एक, यह चार में से एक, फिर तीन में से एक कहेंगे। समझ में आया?

यह बात किसलिए चलती है? कि इस आत्मा की जिसे दृष्टि प्राप्त करनी है अर्थात् धर्मरूप परिणमित होना है, जिसे अनन्त काल में आत्मज्ञान हुआ नहीं और आत्मदृष्टि हुई नहीं, उसे आत्मदृष्टि करनी हो तो उसके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इसे भिन्न नहीं करना, ऐसे भिन्न नहीं पड़ सकते इसलिए।

वस्तु है, लो! यह वस्तु है, देखो! यह सूखड़ है या नहीं? यह सूखड़ की लकड़ी, वह सुगन्ध कहो तो यह है, कोमल कहो तो यह है, भारी कहो तो यह है और रंग में इस प्रकार की पीलाश कहो तो भी यह है। इसमें पीलाश निकाल दो, सुगन्ध निकाल दो तो दूसरी क्या चीज़ रहेगी? यह तो वही चीज़ है। सुगन्ध, भारी, कोमलता.. समझ में आया? सब यही चीज़ है।

मुमुक्षु : उस दिन भिन्न कहा था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ कहा भिन्न उस दिन..

मुमुक्षु : भिन्न कहकर एक चीज़...

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह भिन्न कहकर क्या कहते हैं? उसकी स्थिति बताते हैं।

गुण-पर्याय का पिण्ड, उसे द्रव्य कहते हैं। उस चीज़ को चौड़ाई की अपेक्षा से उसे क्षेत्र कहते हैं। उसे त्रिकाल कहने की अपेक्षा से काल कहते हैं। उसमें रही हुई शक्तियों और गुणों की अपेक्षा से भाव कहते हैं। समझ में आया ? निज घर का विवाद.. दूसरी सब परत की लम्बी। स्वयं कौन और कैसा होगा, इसकी कभी खबर की नहीं। उसके बिना भटककर मरा चौरासी के अवतार में।

यहाँ कहते हैं कि यदि तुझे आत्मा प्राप्त करना हो तो आत्मा चार बोल से भले तुझे समझाया। विकाररहित समझाया, कर्मरहित समझाया, शरीररहित समझाया। अब उसे चार बोल से समझाया, इसलिए चार बोल में एक बोल में सब शामिल आ गये। चार के चार बोल नहीं, चार खाने नहीं कि एक खाने में द्रव्य रहता है, एक खाने में क्षेत्र रहता है, एक खाने में काल रहता है, और एक खाने में भाव रहता है। केरी में खाना (भाग) है, एक भाग में गुठली रहे, एक भाग में छिलका रहे, एक भाग में रस रहे, एक भाग में मिठास रहे - ऐसे उसमें चार खाने हैं... समझ में आया ? वैसा इसमें नहीं है।

जैसे आम में स्पर्श पूरे भाग में रहता है, रस पूरे भाग में रहता है, गन्ध पूरे भाग में रहती है, रंग पूरे भाग में रहता है, रस पूरे भाग में रहता है; वैसे भगवान आत्मा, देह अर्थात् मिट्टी से भिन्न, कर्म से भिन्न है। वह द्रव्यरूप से तो वह, वस्तुरूप से तो वह, चेतनामात्र वस्तु तो वह, वह असंख्य प्रदेशी-वह असंख्य प्रदेशी (कहा परन्तु) निश्चय से एक प्रदेश है। अखण्ड की अपेक्षा से वह एक प्रदेशी है। समझ में आया ? तो भी वह है और स्वकाल ऐसा का ऐसा त्रिकाल रहनेवाला तत्त्व सत्त्व कहो तो वह का वह है और उसके ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि भाव, अनन्त भाव, अनन्त शक्ति, अनन्त गुण, वे अनन्त गुण तो वह का वही है। कोई भाव अलग रह जाये, क्षेत्र भिन्न रह जाये, द्रव्य भिन्न पड़ जाये - ऐसा नहीं है। यह आम का दृष्टान्त बहुत सरस दिया। समझ में आया ? दृष्टान्त देकर समझावे तो भी न समझे। इसे कठिन लगता है। कहो, जमुभाई ! दृष्टान्त तो सहारा है, वह (सिद्धान्त) समझने के लिये। दृष्टान्त तो एक अंश है।

देख भाई ! यह आम है और जो आम एक रस, एक गुठली, एक छिलका और एक मिठास (ऐसे) चार भिन्न हैं; ऐसे आत्मा में एक द्रव्य, एक क्षेत्र, एक काल और एक भाव भिन्न नहीं है परन्तु आम में जैसे स्पर्श, रस, गन्ध, रंग एक साथ सब है, वैसे आत्मा में वस्तु

देखो तो भी वह आत्मा; उसकी चौड़ाई का क्षेत्र देखो तो वही द्रव्य, काल और भाव है। उसका काल ऐसा का ऐसा रहनेवाला काल देखो तो वह का वह भाव, द्रव्य और क्षेत्र है। उसके गुण देखो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द – ज्ञान, दर्शन, आनन्द की चौड़ाई, उनका काल और वह द्रव्य, वह सब वह का वह है। समझ में आया या नहीं इसमें? ऐसे चतुष्टय में एकरूप आत्मा को देखने का नाम अभेददृष्टि और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! **भूदत्थमस्सिदो** की दूसरे प्रकार से बात करते हैं। चन्दुभाई! आहाहा! यह एकरूप नजर पड़े बिना एक आत्मा हाथ में नहीं आता – ऐसा कहते हैं। दो–चार नजर करने जायेगा तो भी आत्मा को खो बैठेगा – ऐसा ऊपर कह गये हैं। समझ में आया? ऊपर कहा था।

नाश को प्राप्त होता है... ऐसी भाषा की है। '**सद्यः प्रणश्यति**' '**सद्यः**' अर्थात् एकदम नाश हो जाये – ऐसा इसका अर्थ है परन्तु इसका अर्थ ही दूसरे ढंग का यह करनेवाला है। भगवान आत्मा में जो अनन्त शक्ति है, उसमें एक–एक शक्ति को खोजने जायेगा, वहाँ अनन्त शक्ति का एक रूप खो जायेगा। है? भाई! चन्दुभाई! '**सद्यः प्रणश्यति' खण्ड–खण्ड होकर मूल से खोज मिटा – नाश को प्राप्त होता है...** नाश को प्राप्त होता है अर्थात् अनुभव नहीं होता। तेरे खोजने में आत्मा ढूँढ़ने गया वहाँ एक–एक नय से एक–एक गुण को देखने जाये, वहाँ नाश को प्राप्त हो जायेगा – तेरी खोज मिट गयी, अनुभव मिट गया, ऐसा। समझ में आया? नीचे भी कहा है देखो – सार में नीचे कहा है। **जीव का अनुभव खो जाता है**। है न? अन्तिम लाईन, अन्तिम लाईन, ऐसा करने से... **परन्तु अनन्त शक्तियाँ हैं इससे एक–एक नय करते अनन्त नय होते हैं। इस प्रकार करते बहुत विकल्प उत्पन्न होते हैं, जीव का अनुभव खो जाता है**। है न? नीचे से दूसरी लाईन। **जीव का अनुभव खो जाता है**। तू खो जायेगा – ऐसा कहते हैं। एकरूप अनन्त गुण का पिण्ड द्रव्य, क्षेत्र, काल एकरूप है, उन्हें दो–तीन रूप और अनन्त रूप यदि देखने जायेगा तो तू खो जायेगा। चन्दुभाई! आहाहा! शैली कैसी की है, देखो न!

भगवान! तेरा स्वरूप तो एकरूप अखण्डानन्द प्रभु है। उसमें एकरूप का अनुभव करेगा तो एक हाथ में आयेगा। उस ऐसी चीज़ को अनेक गुण से देखने जायेगा तो एकरूप खो जायेगा अर्थात् एकरूप अनुभव में नहीं आयेगा। आहाहा! इनकी भाषा ही दूसरे ढंग की–प्रकार की! रतिभाई!

निर्विकल्प होना है न? वस्तु निर्विकल्प अभेद है, अब पर्याय में निर्विकल्प न हो, तब तक वह अभेद वस्तु दृष्टि में आवे किस प्रकार? तू भेद पाड़ने जायेगा कि यह वस्तु द्रव्य, यह क्षेत्र... तो क्षेत्र कहीं भिन्न है? भिन्न करने जायेगा, वहाँ विकल्प उठेगा, अभेद खो जायेगा। आहाहा! अरे! इसके पंथ की विधि की इसे खबर नहीं होती, यह खोजने कहाँ जाये? यहाँ तो कहते हैं खोजने जायेगा, अनन्त गुण में से एक-एक नय के एक-एक गुण को खोजने जायेगा (तो) हाथ नहीं आयेगा, तू खो जायेगा - ऐसा कहते हैं। आहाहा! ए.. रतिभाई! आत्मा को और शान्ति को, धर्म को राग में और पुण्य में, शरीर में और धूल में खोजने जायेगा (तो) वहाँ भी तू अनादि का खो गया है। आहाहा! भीखाभाई! आहाहा! गजब बात!

एकरूप प्रभु (में) भले अनन्त गुण हो, परन्तु द्रव्य तो एकरूप है न! भले क्षेत्र असंख्य प्रदेश हो, वस्तु तो एकरूप है या नहीं? त्रिकाल हो, परन्तु एकसमय में एकाकार अभेद है या नहीं? अनन्त गुण हो, वस्तु तो एकरूप है या नहीं? एकरूप को अन्तर (में) देखने से निर्विकल्पता आवे और उसकी दृष्टि में निर्विकल्प चीज़ अनुभव में आवे; इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। आहाहा! दूसरी विधि हो नहीं सकती - ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञान की एकाग्रता में एकरूप दृष्टि में आये बिना उसकी एकाग्रता कभी नहीं होती। अन्तर एकाग्रता हुए बिना दृष्टि नहीं आती और एक में दृष्टि आये बिना एकाग्रता नहीं होती। जहाँ तक इसे ऐसा माने कि मैं रागवाला हूँ और शरीरवाला हूँ और कर्मवाला हूँ - ऐसा तो वह है ही नहीं, ऐसा तो वह है ही नहीं। वह कर्मवाला और पुण्य-पापवाला, देहवाला तो वह है ही नहीं परन्तु वह जो है अनन्त गुणवाला, असंख्य प्रदेशवाला, त्रिकाल रहनेवाला - उसमें भी भंग पाड़कर खोजने जाये तो अभेद वस्तु हाथ नहीं आती। नवरंगभाई! आहाहा!

बापू! तू एकरूप प्रभु है न? एकरूप की दृष्टि में दो रूप कहाँ से लाया तू? दो रूप में तो खो जायेगा। दो रूप में तो तू राग में फँस जायेगा। आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! ऐसी गजब बातें, भाई! कहते हैं कि प्रभु को ढूँढ़ना हो तो एक में ढूँढ़ना, दो में ढूँढ़ने जायेगा तो प्रभु हाथ नहीं आयेगा - ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! वह प्रभु तू, हों!

मुमुक्षु : डोरा बाँध दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये डोरा कहा न, यह।

मुमुक्षु : एक बार डोरा बाँध लेना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह डोरा इसका ही कहा जाता है, यह फिर से बात समझाना।

जहाँ नजर डालनी है, वह एकरूप वस्तु है। उस नजर में एकरूपता कब आवे? कि एक पर नजर जाये तो। एकरूपता नजर में कब आवे? कि यहाँ विकल्प टूटकर एकता पर्याय में करे तो.. आहाहा! समझ में आया? यह अनुभव की बात है, यह अनुभूति करने की बात है, बात की बात नहीं। आहाहा!

भाई! तेरा अनुभव करना हो, तेरी वस्तु को प्राप्त करना हो, भगवान जो अनादि का एकरूप स्वभाव से है, उसे तुझे प्राप्त करना हो तो उसके अनन्त गुण में भेद पाड़कर भी तू नहीं प्राप्त कर सकेगा, तो फिर दया, दान के राग से प्राप्त कर सकेगा, यह तो वस्तु में होता ही नहीं। उसके एकरूप में भेद पाड़ने जाये तो एक नहीं मिले, तो उसमें नहीं, उससे मिले भाई! नहीं मिलेगा। आहाहा! अब यहाँ तो दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से आत्मा मिलेगा (ऐसा अभी कहते हैं)।

मुमुक्षु : व्यवहार साधन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी साधन नहीं है। वह तो निमित्तरूप से ज्ञान कराया है। साधन-फाधन कैसा? आहा! (व्यवहार) साधन और निश्चय साध्य, वह तो निमित्त का ज्ञान (कराया है)। उस समय ऐसे ही विकल्प होते हैं - ऐसा बताया है। समझ में आया? सबेरे की चर्चा भी इसमें है, हों! उस काल में और स्वकाल में दो शब्द पड़े हैं। उस काल में है न? उस काल में, उस काल में।

यहाँ तो निश्चय-व्यवहार को साथ रखना है। वह तो निश्चय हो, तब पूर्व का विकल्प है, उसे कहा जाता है या साथ में विकल्प है, उसे व्यवहार कहा जाता है, बाकी बात में दूसरा कुछ माल है नहीं।

लाख बात की बात यही, निश्चय उर लाओ।
तोड़ सकल जग द्वन्द्व-फन्द निज आतम उर ध्याओ।

कहो, समझ में आया ? आहाहा !

कहते हैं, वह **जीव वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव विराजमान है, इसलिए स्वद्रव्यरूप से विचारने पर स्वद्रव्यमात्र है,...** देखो, स्वद्रव्यमात्र है। स्वद्रव्यमात्र में फिर कोई क्षेत्र, काल, भाव भिन्न रह जाते हैं – ऐसा नहीं है। आम को स्पर्श से देखने पर स्पर्शमात्र है। उसमें रसगुण कोई टुकड़ा दूसरा कहीं आगे रह जाता है (–ऐसा नहीं है)। उसमें समा गया है, उसमें भिन्न नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

स्वक्षेत्ररूप से विचारने पर स्वक्षेत्रमात्र है,... ऐसे अन्तर स्वक्षेत्र देखने से भगवान स्वक्षेत्रमात्र ही है। स्वक्षेत्रमात्र ही है; इसलिए उसमें द्रव्य भिन्न रह गया, काल भिन्न रह गया और शक्ति भिन्न रह गयी – ऐसा कुछ है नहीं। वह तो स्वक्षेत्रमात्र ही है, स्वक्षेत्रमात्र ही है। आहाहा ! एक तो चार बताते हैं, ऐसी स्थिति वीतराग के अतिरिक्त कहीं होती। सर्वज्ञ के अतिरिक्त वस्तु के ऐसे चार भाग कहीं नहीं होते और फिर भी उन चार भाग में एकरूप है। यह तो इनकी कथन शैली ! ऐसी व्याख्या वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा ने आत्मा देखा, उन्होंने आत्मा कहा, उसके अतिरिक्त अन्यत्र ऐसा आत्मा नहीं हो सकता। वस्तु की स्थिति ऐसी है।

यह तो एक बार श्रीमद् ने पत्र में लिखा था। सूर्यराम त्रिपाठी थे न ? उस समय में थे, वेदान्त में बहुत होशियार। सूर्यराम त्रिपाठी, उनके प्रति पत्र है। एक बार लिखा था कि एक व्याख्या इस प्रकार भी कही जा सकती है। वस्तु को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप से आप विचारना। ऐसा करके (लिखा था)। एक पत्र में ऐसे चार बोल रखे हैं। क्योंकि इस प्रकार विचारे तो उसे एक वस्तु इतने क्षेत्र में हैं, इतने ही काल में, इस गुण में, यह द्रव्य है – ऐसा करने से सब फू... तेरा हो जायेगा। एक द्रव्य ऐसे पूरे लोक में व्यापक है और तीन काल एकत्रित होकर ऐसे होता है... यह सब (कुछ नहीं)। काल भी यहाँ, क्षेत्र यहाँ और भाव यहाँ इतने में यहाँ है। ऐसा एक पत्र है, भाई ! सूर्यराम त्रिपाठी उस समय में वेदान्त में बहुत होशियार थे। उन्होंने पुनर्जन्म की बात भी की है। पुनर्जन्म है, यह मैं मेरे अनुभव से कहता हूँ और तुम वृद्ध हो परन्तु एक द्रव्य की व्याख्या इस प्रकार भी हो सकती है। वरना वस्तु-द्रव्य की चौड़ाई कितनी, उसका काल कितना, उसकी शक्ति कितनी–उसके वर्णन के बिना वस्तुस्थिति पर से भिन्न समझी नहीं जा सकेगी।

यहाँ तो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में भी एक को देखने से सब शामिल आ जाता है। आहाहा! समझ में आया? विकल्प रहेगा। यह द्रव्य और यह क्षेत्र – ऐसा भिन्न-भिन्न तो है नहीं। तुझमें विकल्प रहेगा, राग खड़ा रहेगा। वह एक खड़ा नहीं होगा। आहाहा! विकल्प खड़ा होगा, दृष्टि में एक खड़ा नहीं होगा। आहाहा!

स्वकालरूप से विचारने पर स्वकालमात्र है,.. भगवान तो अपने काल.. वस्तु है। स्वयं ही स्वकाल है। वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. और **स्वभावरूप से विचारने पर स्वभावमात्र है।** कहो, समझ में आया? **इस कारण ऐसा कहा कि जो वस्तु है, वह अखण्डित है।** इस कारण ऐसा कहा कि जो पदार्थ भगवान आत्मा है, यहाँ अखण्डित है। एक-एक स्वयं अखण्डित। एक-एक, हों! यहाँ। **अखण्डित शब्द का ऐसा अर्थ है।** लो! '**खण्डयामि**' था न? '**न खण्डयामि**' '**न खण्डयामि**' अर्थात् अखण्ड। अखण्ड का अर्थ ऐसा है – ऐसा कहते हैं, लो! अन्तिम शब्द यह किया। समझ में आया? अब चार में से एकरूप किया और अब तीन में से एकरूप करते हैं। ज्ञाता भी मैं, ज्ञेय भी मैं और ज्ञान भी मैं। जाननेवाला मैं और ज्ञेय पर – ऐसा नहीं। आहाहा! भगवान आत्मा मैं जाननेवाला ज्ञाता और छह द्रव्य ज्ञेय, उनका ज्ञान। नहीं; इतना भी मैं नहीं, ऐसा भी मैं नहीं। इतना भी मैं नहीं और ऐसा भी मैं नहीं।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥८-२७१॥

अन्तिम श्लोक है न? एकदम वस्तु का अभेदपना वर्णन करते-करते अनन्त गुण में से एक सार (कहा), ज्ञाता-ज्ञान में से एक (कहा)। जो शैली '**भूदत्थमस्सिदो**' ली है, उस शैली को बहुत समेटते-समेटते ऐसे चले जाते हैं। आहाहा! यह तो वस्तु की स्थिति है, हों! पुण्य-पाप और शरीर, कर्म की तो बात इसमें है ही नहीं। इसमें यह है नहीं, इसलिए फिर उसके भंग भेद की क्या बातें करना? कहते हैं। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा आदि का विकल्प उठता है, वह तो राग है, वह वस्तु में कहाँ है? इससे प्राप्ति

हो या वह आत्मा की चीज़ है, ये दो बातें तो यहाँ है ही नहीं, परन्तु रहा भगवान आत्मा विकाररहित निर्विकारी वस्तु; उसके जो अनन्त गुण हैं, उनसे एक-एक गुण को एक-एक नय से देखने जाने से एकरूप हाथ में नहीं आता। फिर कहते हैं कि चार रूप वस्तु कहते हैं, तथापि उसे चारपने में एकरूप खोजने जा और तीसरे तीन बाकी रखने जा तो वह हाथ नहीं आयेगी (क्योंकि) ऐसी वस्तु नहीं है।

अब कहते हैं **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है...** यहाँ से शुरु किया है। 'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी' ज्ञेय दो प्रकार के-स्वज्ञेय और परज्ञेय। इसमें वचन के भेद से लोगों को भ्रम उत्पन्न होता है कि यह ज्ञेय मैं, मैं ज्ञेय या ज्ञान। मैं ज्ञान और ये ज्ञेय - ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। यह छह द्रव्य को जो ज्ञेयपना, तो एक समय की पर्याय जाने, इतना वह ज्ञान और इतना वह आत्मा नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध में (अर्थात्) जाननेवाले और जाननेयोग्य में बहुत वचन के भ्रम उत्पन्न होते हैं। **सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं।** ऐसा कोई समझेगा कि जीव वस्तु तो जाननेवाली है और उससे छह द्रव्य भिन्न वे उसे ज्ञेय हैं। ज्ञात होने योग्य वे छह द्रव्य हैं और जाननेवाला यह आत्मा ज्ञायक है - ऐसा कोई कहे तो ऐसा है नहीं। आया है न? **ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।** दूसरी लाईन। समझ में आया?

जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य... भिन्न अर्थात् अनन्त सिद्ध, अनन्त निगोद - ये सब एक समय की पर्याय में सब ज्ञेयरूप से वे ज्ञेय और यह ज्ञान? कि नहीं; वह मेरी पर्याय जो ज्ञान और मैं जो ज्ञेय अनन्त द्रव्य, गुण और पर्याय को ज्ञेय करनेवाला मैं। अकेले छह द्रव्य को ज्ञेय करूँ, इतना ज्ञान नहीं, ऐसा। समझ में आया? वे ज्ञेय नहीं परन्तु एक इसके ज्ञान का परिणमन एक समय की पर्याय इतना भी ज्ञेय नहीं। वर्तमान ज्ञान का उतना भी ज्ञेय नहीं। ज्ञेय तो पूरा द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों होकर इसका ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह तो बहुत ऊँची बात है। अर्थात् इसके सत् के घर की बात है।

एक समय में इसके ज्ञानमात्र पर्याय वह मैं ज्ञान हूँ? ज्ञायक हूँ? इतना ज्ञायक हूँ? इतना ही ज्ञेय है? और इतना ही ज्ञान है? **सो ऐसा तो नहीं है।** भगवान ज्ञायक और छह द्रव्य उसका ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। अनन्त सिद्ध... मैं जाननेवाला और अनन्त सिद्ध मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। अनन्त केवली मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। आहाहा! समझ में आया? रखते हैं न, धीरे-धीरे आता है।

सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं।.. हों, सब आत्मा। अनन्त निगोद, अनन्त केवली, वे सब **ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।** आहाहा! **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है—'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि'' अहं' मैं जो कोई 'यः ज्ञानमात्रः भावः' चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** मैं तो **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** समझ में आया? यह **'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'..** क्या कहते हैं?

चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ.. परन्तु **'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।** इतना ज्ञेय - ऐसा तो नहीं। आहाहा! **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** पूरा चेतना वस्तु द्रव्य, गुण और पर्याय पूरा - ऐसा जो ज्ञेय, वह मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया? **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** देखा? यह छह द्रव्य ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा नहीं, परन्तु पूरा चेतनामात्र सर्वस्व वस्तु पूर्ण, एक वस्तु पूरी मेरी, वह ज्ञेय है। समझ में आया? आहाहा! **जो कोई.. 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि'** ऐसा कहना है न? **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ 'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'** उन ज्ञेयों को जाननेमात्र ज्ञानरूप ज्ञेय-ऐसा मैं नहीं।

मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य जाननेयोग्य, इतना तो नहीं। जाननेयोग्य इतना नहीं। पूरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे जाननेयोग्य और मैं ज्ञायक, ऐसा है। समझ में आया? मैं स्वयं ही पूरा ज्ञायक और मैं ज्ञेय पूरा हूँ। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! ये अन्तिम श्लोक है न! ये उतारेंगे अमुक-अमुकरूप से। शक्ति से ज्ञेयशक्ति और ज्ञानशक्ति, ज्ञाता और अनन्त शक्ति लेंगे परन्तु एक ज्ञेयशक्ति में अनन्त आ गये, पूरा सब आ गया। समझ में आया?

यह आत्मा और आत्मा की अन्दर की बात चलती है। राग-द्वेष से लेकर अनन्त सिद्ध, वे सब ज्ञेय, उनका ज्ञान इतना ज्ञायक और वे मेरे ज्ञेय - ऐसा नहीं है। समझ में आया? राग-द्वेष, पुण्य-पाप से लेकर अनन्त केवली या अनन्त निगोद, अनन्त छह द्रव्य, इतना ज्ञेय और मैं ज्ञान - ऐसा नहीं है परन्तु मैं तो पूरा सर्वस्व चेतनामात्र पूर्ण वस्तु हूँ। वह ज्ञेय। समझ में आया? वह मेरा ज्ञेय। '**सः ज्ञेयः न एव**' **मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है— 'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-ज्ञानज्ञेयज्ञातृ'** देखो! तीन से वापस चौथा बोल लेंगे। '**ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः**' ऐसा। '**ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः**' समझ में आया? मैं ज्ञान, मैं ज्ञेय और मैं वस्तु, ये तीनों मैं ज्ञेय। तीन होकर ज्ञेय पूरा। चन्दुभाई! सूक्ष्म है भाई यह! यह ज्ञान, यह ज्ञेय, और ज्ञातृ, ये तीनों ज्ञेय हैं। तीन रूप पूरा मैं ज्ञेय हूँ। पूरा ज्ञान हूँ, पूरा ज्ञेय हूँ और पूरा ज्ञायक-ज्ञाता हूँ। ये तीन भेद पाड़ने में ऐसा भेद मुझमें नहीं है। इसकी विशेष बात करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

निःशङ्कता

जिसका वीर्य भव के अन्त की निःसन्देह श्रद्धा में प्रवर्तित नहीं होता और अभी भी भव की शङ्का में प्रवर्तमान है, उसके वीर्य में अनन्तों भव करने की सामर्थ्य मौजूद है।

भगवान ने कहा है कि — 'तेरे स्वभाव में भव नहीं है' यदि तुझे भव की शङ्का हो गयी तो तूने भगवान की वाणी को अथवा अपने भवरहित स्वभाव को माना ही नहीं है। जिसका वीर्य अभी भवरहित स्वभाव की निःसन्देह श्रद्धा में प्रवर्तित नहीं हो सकता, जिसके अभी यह शङ्का मौजूद है कि मैं भव्य हूँ या अभव्य हूँ, उसका वीर्य, वीतराग की वाणी का कैसे निर्णय कर सकेगा और वीतराग की वाणी के निर्णय के बिना उसे अपने स्वभाव की पहचान कैसे होगी? इसलिए पहले भवरहित स्वभाव की निःशङ्कता को लाओ!!! ... —पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

प्रवचन - २, कलश - २७१ दिनांक ०६-०१-१९६६

साध्य-साधक अधिकार, कलश-टीका का आठवाँ श्लोक चलता है, भावार्थ है।

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,.. क्या अधिकार है यह ? ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान तीनों मैं एक ही हूँ। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हों - ऐसा मैं नहीं, इतना मैं नहीं। समझ में आया ? वस्तु एकरूप निर्विकल्प अभेद है - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। मैं जाननेवाला और छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसा, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं। ज्ञात होनेयोग्य वस्तु ज्ञात हो और मैं जाननेवाला, इतना मैं ज्ञेय नहीं और इतना ज्ञानमात्र भी मैं नहीं, ऐसा। क्या कहा ? समझ में आया ?

छह द्रव्य ज्ञात हों - ज्ञेय, उतना ज्ञेयमात्र मैं नहीं। उसे जाननेवाला ज्ञान, उतने ज्ञानमात्र मैं नहीं और (ज्ञेय) जो ज्ञात होता है, वह ज्ञेय ज्ञात नहीं होता, वह ज्ञान मेरी पर्याय ज्ञेय होकर मुझे ज्ञात होती है। समझ में नहीं आया ? उस ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय नहीं, वह तो मेरी ज्ञानपर्याय है और वह ज्ञानपर्याय मेरे सम्पूर्ण द्रव्य, गुण-पर्याय तीनों को जानती है। अकेले स्वज्ञेय पर को जानती है - ऐसा नहीं, और वह ज्ञेय पर है, इतना नहीं। मैं तो ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक तीनों होकर मैं ज्ञेय हूँ। जाननेवाला भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला ज्ञान, वह (भी) मैं। जाननेवाला ज्ञायकभाव भी मैं, जाननेवाला ज्ञान भी मैं, ज्ञात होनेयोग्य तीनों ज्ञेय भी मैं। सूक्ष्म है, फूलचन्दभाई!

मुमुक्षु : ज्ञेय कहाँ रहे ?

उत्तर : कहाँ, वे ज्ञेय उसमें गये। यहाँ क्या है ? इसकी एक समय की पर्याय में ज्ञात हुए, वह तो ज्ञान की पर्याय हुई और उस ज्ञान की पर्याय जितना भी नहीं, और उस ज्ञेय को जाने, वह वास्तव में उसे जानना, वह भी मैं नहीं। कहते हैं, देखो! तीनों आये या नहीं ? अन्तिम शब्द क्या आया ?

ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः ऐसा ज्ञेय हूँ। अन्तिम शब्द है न ? भाई! तीसरी

लाईन का पहला ज्ञेय। संस्कृत और अन्तिम **ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः** ऐसा ज्ञेय। समझ में आया? मैं तो ज्ञान, मैं ज्ञाता, मैं ज्ञेय, ये तीनों होकर मैं ज्ञेय। बात बहुत (सूक्ष्म है)। यह कहा न? देखो, **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** धर्मात्मा अपने आत्मा को पर से भिन्न करके ज्ञात होने योग्य भी मैं, और जाननेवाला भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं - ऐसे वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ। मुझे **वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,..** पर ज्ञात होनेयोग्य को जानता हूँ - ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? ये अभेद वस्तु है, यह निर्विकल्प अवस्था होने पर वह ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता तीन वहाँ दृष्टि में भेद नहीं रहता - ऐसा बताना है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-दृष्टि होने से, सम्यग्दर्शन की दृष्टि होने से दृष्टि के विषय में यह ज्ञेय, यह ज्ञाता और ज्ञान - ऐसे तीन भेद नहीं रहते। समझ में आया? स्वयं जाननेवाला, स्वयं जानने में आनेयोग्य और स्वयं ज्ञायक-तीनों वह एक ही है। जाननेवाला ज्ञान, ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय और पूरा ज्ञायक, यह सब एक ही हूँ। गजब बात, भाई!

भूतार्थ वस्तु एक स्वरूप से है। ऐसी अन्तर ज्ञेय.. दूसरा तो प्रश्न कहीं रहा कि निमित्त को जानता हूँ, या निमित्त मुझे ज्ञात होता है, यह नहीं। यहाँ तो मैं जानता हूँ और मैं जानने में आनेयोग्य हूँ। ऐसा अभेद और ज्ञायक भी मैं हूँ - ऐसी अभेददृष्टि अन्तर में करना, इसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया?

दृष्टि में... पहले कहा था न? बन्ध और मोक्ष के पड़ते विकल्प तो दूर हो, पश्चात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग भी दूर रहो अथवा शक्ति के अनन्त गुण की शक्ति के भेद भी दूर रहो, फिर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के भंग-भेद दूर रहो। अब ज्ञेय, ज्ञायक और ज्ञाता के तीन भेद भी मुझमें नहीं। अरे बात! कहो, नेमिदासभाई! बाहर से देखने से कितना अन्दर देखा जायेगा?

जैसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है - ऐसे नजर करके करता है या नहीं? ऐसे मैं देखनेवाला हूँ और यह ज्ञात होता है, ऐसा भेद भी उसमें-अन्दर में नहीं है - ऐसा कहते हैं। यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी कि यह ज्ञेय ज्ञात होते हैं और मैं जाननेवाला, यह बात तो बहिर्बुद्धि में गयी परन्तु मैं एक ज्ञात होनेयोग्य और मैं ज्ञान द्वारा जानता हूँ और

ज्ञायक–ऐसे तीन प्रकार भी, वस्तु पर दृष्टि पड़ने से तीन प्रकार–भेददृष्टि नहीं रहती। ओहोहो!

मुमुक्षु : अद्वैत ब्रह्म...

पूज्य गुरुदेवश्री : अद्वैत ब्रह्म यह स्वयं अकेला है। पूरे सब आत्मा की यहाँ बात नहीं है। द्वैतमय भासित नहीं होता। नहीं आ गया पहले? (कलश ९) **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** वस्तु तो वस्तु है, गुण है, पर्याय है परन्तु सब ज्ञेय है, सब का जाननेवाला ज्ञान हूँ और पूरा होकर मैं ज्ञायक हूँ। ओहोहो! गजब बात, भाई! क्योंकि सामने छह द्रव्य ज्ञेय है, वह तो ज्ञान की एक पर्याय–बहिर्मुख पर्याय के विषय में उतना ज्ञान तो आ जाता है। क्या कहा? छह द्रव्य हैं, अनन्त सिद्ध हैं, निगोद है, वह तो ज्ञान की एक बहिर्मुख परलक्ष्यी पर्याय में उतना तो ज्ञान आ जाता है। उतना मैं नहीं। मैं तो उस पर्यायसहित पूरा द्रव्य और गुण का–पर्याय का पिण्ड वह मेरा ज्ञेय है, उसका मैं जाननेवाला हूँ और ज्ञायकपने वह मैं ही हूँ। कहा न?

इसलिए मेरा नाम ज्ञान,.. क्यों कहते हैं? वेद्य–वेदकरूप से जानता हूँ, (इसलिए) मेरा (नाम) ज्ञान है। ज्ञेय को जानूँ, परज्ञेय को जानूँ; इसलिए मेरा नाम ज्ञान – ऐसा नहीं। क्या कहा? **मैं अपने स्वरूप को वेद्य..** अर्थात् जनाने योग्य और वेदक अर्थात् जानने योग्य – ऐसा **जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** है। मुझे ही मैं ज्ञात होनेयोग्य हूँ और जाननेवाला हूँ, दूसरा कोई है नहीं। ऐसी अन्तर्मुख में वस्तुस्वरूप की दृष्टि होने से, उसे देखने से, उसे देखने से और देखनेवाला ऐसा भेद भी न रहने से, इसे – वस्तु को देखता हूँ और मैं देखनेवाला ज्ञान हूँ – ऐसा भेद भी नहीं रहने से, स्वज्ञेय को मैं जाननेवाला स्वयं वेदने योग्य और वेदनेवाला स्वयं ज्ञायक भी मैं हूँ – ऐसी एकरूप अन्तर्दृष्टि होना, उसे निर्विकल्प सम्यग्दर्शन का विषय कहते हैं। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,.. मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ, मैं पर द्वारा जाननेयोग्य – ऐसा हूँ नहीं। **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। देखो! **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** है। ज्ञान भी मैं हूँ, वेद्य–वेदकरूप से जाननेवाला मैं ज्ञान; मेरे द्वारा मैं मुझे जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! अभी तो बाहर में सब विवाद हो रहा है। देह की क्रिया और वाणी की क्रिया से धर्म होता है और दया,

दान, व्रत, भक्ति के परिणाम से धर्म होता है.. ये तो कहीं बाहर रह गये। यह उनका ज्ञान (हो), उतना भी मैं नहीं - ऐसा कहते हैं। मुझे उनके सन्मुख देखकर मुझे ज्ञान हो - ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहार के ज्ञान को मैं जानूँ, व्यवहार ज्ञेयरूप से उसे जानूँ, इतना ज्ञेय भी मैं नहीं और उतना जाननेवाला ज्ञान की पर्याय, इतना भी मैं नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञायकस्वभाव चिदानन्दमूर्ति वह ज्ञात होनेयोग्य है, वह जाननेवाला ज्ञान और मैं मेरे द्वारा ज्ञात होता हूँ; इसलिए मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया?

ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। आहाहा! ऐसा का ऐसा अनन्त बार भटक मरा है। स्वयं कौन है, उसे देखने को निवृत्त नहीं होता। बाहर को देखने में विकल्प है और बन्ध का कारण है, दु:ख का कारण है। समझ में आया? यहाँ तो ऐसा सिद्ध करते हैं कि राग-द्वेष तो मैं नहीं परन्तु राग-द्वेष को जानने की पर्याय होती है, उतना भी मैं नहीं और राग-द्वेष ज्ञेय, वह वास्तव में ज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह व्यवहार जो विकल्प उठता है - दया, दान, भक्ति, यह तो विकल्प का उत्थान वृत्तियाँ हैं; वे चैतन्यस्वरूप नहीं हैं। वे वृत्तियाँ उठें, उन्हें जानूँ और वे वृत्तियाँ ज्ञेय - ऐसा नहीं है। और उन्हें जानना, ऐसी पर्याय हो, उतना ज्ञान - ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब सूक्ष्म, भाई! आत्मतत्त्व को पहुँचने के लिये अभेदपना होना चाहिए उसके बदले कहाँ के कहाँ विपरीतता में चढ़ा दिया बेचारे को। मर जाता है, हैरान होकर चला जाता है। समझ में आया?

वस्तु अन्दर सच्चिदानन्द स्वरूप है। आत्मा तो सत् शाश्वत् ज्ञानानन्द की मूर्तिस्वरूप है। उसके स्वरूप में, कहते हैं पर के कारण मैं जानूँ - ऐसा नहीं; पर को जानने की पर्याय, उतना मैं नहीं परन्तु मेरा स्वभाव मैं स्वयं ही मेरे ज्ञेय को जानता हूँ, जाननेवाला मैं हूँ और जाननेयोग्य मैं हूँ। इत्यादि शक्ति का-अनन्त शक्ति का सत्व वह ज्ञायक, वह भी मैं हूँ। ऐसे चैतन्यद्रव्य में अभेदरूप से आत्मा में अनुभव करना, यह उसका नाम अनुभव और सम्यग्दर्शन है। आहाहा! सिर घूम जाये ऐसा है न इसमें तो?

मुमुक्षु : इसमें तो देव, गुरु धर्म की श्रद्धा भी नहीं रही।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी अब... देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा तो कहीं रह गयी राग

में। यह इसके ज्ञान और ज्ञेय, ज्ञान नहीं और वह ज्ञेय नहीं – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। देव, गुरु हैं, वस्तु है, छह द्रव्य है, सब है, उसमें देव–गुरु नहीं आये ? सिद्ध आये, गुरु आये, देव आये। सब आया उसमें ? शास्त्र नहीं आये उसमें ? सब आये परन्तु वे छह द्रव्य जो आत्मा के अतिरिक्त हैं, उतना ही मेरा ज्ञेय है – ऐसा नहीं। मैं तो पूरे मेरे आत्मा द्वारा मुझे जानूँ, वह मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! और छह द्रव्य को जानने की पर्याय जितना ज्ञान मैं नहीं हूँ। मैं तो पूरे द्रव्य–गुण–पर्याय को – पूरा को जानूँ – ऐसा वह ज्ञान मेरा है। आहाहा! समझ में आया ? वजुभाई! बहुत सूक्ष्म... मशीन में तो एकदम (ऐसा) करे और वहाँ दस हजार–बीस हजार पैदा हों, चलो, चलो आँकड़ा इकट्ठा कर डालें।

इसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक ज्ञात हो बहिर्मुख में, इतना भी मेरा ज्ञान नहीं, इतना वह मेरा ज्ञेय नहीं – ऐसा यहाँ तो कहते हैं। क्या कहते हैं ? यह जगत चौदह ब्रह्माण्ड है और खाली भाग है। अनन्त खाली भाग है न ? खाली... खाली.. खाली.. खाली.. अनन्त.. अनन्त.. वह मेरा ज्ञेय और मैं उसे ज्ञान की अवस्था में जानूँ, इतना वह ज्ञेय नहीं और उसे जाननेवाली पर्याय, उतना यह ज्ञान नहीं। छोटाभाई! मैं तो सारे द्रव्य–गुण मेरे अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, उसे मैं ज्ञेयरूप से ज्ञान में जानूँ और ज्ञायक भी मैं, ऐसे तीन प्रकार के भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। ऐसी वस्तु की अनुभूति होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन, इसका नाम आत्मा का साक्षात्कार, इसका नाम मुक्ति का उपाय (है)। धर्मचन्दजी! ऐसा सब करने जायेंगे तो फिर यह कोई करेगा नहीं – यह मन्दिर, मन्दिर की पूजा (कोई करेगा नहीं)। एक तो युवक करते नहीं और फिर यदि ऐसा उनके समक्ष रखोगे तो युवक नास्तिक होकर भागेंगे। अरे! सुन न अब! उसके करने के काल में ऐसा विकल्प आये बिना नहीं रहेगा। भक्ति आदि हो परन्तु वह शुभभाव है। वह हो, उसका किसने इनकार किया है परन्तु वह शुभभाव, वह आत्मा का इतना ही ज्ञेय है – ऐसा नहीं। पूरे लोकालोक का ज्ञेय, परन्तु इतना ही ज्ञेय है – ऐसा नहीं। और पूरे लोकालोक को जानने की पर्याय इतना ज्ञानमात्र हूँ – ऐसा भी नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त–अनन्त जिसके एक ज्ञानगुण में अनन्त केवलज्ञान समा गया। एक समय में लोकालोक को जाने, वह मतिश्रुत में भी ज्ञात हो और केवल में भी ज्ञात हो परन्तु ऐसी–ऐसी तो अनन्त पर्यायें जिसके एक गुण में समा जाये, ऐसे–ऐसे अनन्त गुणों

का एकरूप, वह मेरा ज्ञेय; उसे जाननेवाला ज्ञान, वह ज्ञान; वह पूरा ज्ञायक, वह मैं एक हूँ। समझ में आया?

यह लकड़ी नहीं ज्ञात होती – ऐसा अभी तो कहते हैं। लकड़ी ज्ञात नहीं होती, ज्ञान की पर्याय उसरूप परिणमित हुई है, वह जानती है, तथापि वह ज्ञेय है, उतना ही ज्ञेय मेरा है – ऐसा नहीं। यह लकड़ी का दृष्टान्त दिया, इसी प्रकार लोकालोक। मेरा ज्ञेय जाननेयोग्य लोकालोक है, इतना मेरा ज्ञेय नहीं। मेरा ज्ञेय तो अनन्त गुण का पिण्ड पूरा ज्ञायक द्रव्य-गुण-पर्याय पूरा वह मेरा ज्ञेय है और इस लोकालोक को जानने जितनी ज्ञान की पर्याय – अवस्था, उतना मेरा ज्ञान नहीं है। मेरा ज्ञान तो अनन्त द्रव्य, गुण का पिण्ड ऐसा भगवान आत्मा, उसके गुण-पर्याय को जानने का ज्ञान ऐसे ज्ञानवाला मैं। वह तो मैं का मैं हुआ। जानने योग्य भी मैं, जाननेवाला भी मैं और ज्ञायक भी मैं। धर्मचन्दजी! गजब बात, भाई! ऐसी बात! यह आत्मविद्या है। समझ में आया?

मुमुक्षु : बाहर में तो सब उड़ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाहर में उड़ गया है न! अन्दर में है ही कब? था तब उड़े न? बाहर का रहेगा। जब तक राग है, राग है, तब तक हो, दिखेगा। क्रिया भी शरीर की होनेवाली होगी वह होगी, पूजा-भक्ति जो होनेवाली है, (वह होगी) परन्तु इसके स्वरूप में देखो तो मूल दृष्टि में वह विकल्प और उसका ज्ञान तथा उसके सामने ज्ञेय, इतना आत्मा नहीं। ऐसी दृष्टि में आत्मा को न ले, तब तक अन्य विकल्प और अन्य को व्यवहार भी नहीं कहा जाता – ऐसा कहते हैं। शोर मचाते हैं (कि) युवक नास्तिक हो जायेंगे। बापू! सत् वस्तु है, वह सत् समझने से वह सत् से भ्रष्ट होगा? समझ में आया? ऐसे तो अनादि से भ्रष्ट है ही। वस्तु की स्थिति-सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द कन्द आत्मा के अनन्त गुण का एक रसकन्द, उससे तो पतित है ही। राग को अपना मानता है, शरीर को अपना मानता है अथवा वर्तमान अल्पज्ञ दशा, इसकी स्वयं की इतनी है – ऐसा मानता है, वह पतित तो है। समझ में आया?

महा चैतन्यसागर भगवान आत्मा अनन्त गुण का सागर चैतन्य रत्नाकर है। जिसके एक-एक गुण में पूरे लोकालोक को जाने – ऐसी एक-एक पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय

जिसके एक गुण में पड़ी है। ऐसे अनन्त गुण का (पिण्ड) भगवान आत्मा, वह मेरा ज्ञेय है। लोकालोक ज्ञेय नहीं – ऐसा कहते हैं। उसे जानना, वह मेरा ज्ञान है और वह सब होकर पूरा मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! समझ में आया? रवजीभाई! समझ में आता है यह? यह समझ में आता है – ऐसा कहते हैं न! अन्य बाहर का तो सब समझ में आता है न! गजब बात भाई! ऐसी।

ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है। क्या कहते हैं? मुझमें ऐसा ज्ञात होने योग्य, जाननेवाला, सब शक्ति का पिण्ड, वह ज्ञायक – ऐसे नामभेद वचन में, बोलनेमात्र हो; वस्तु में भेद नहीं। वस्तु अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य हीरा पूरा अखण्ड है। उसे अन्तर में नजर में लेना और उसमें अभेद में अनुभव करना, उसका नाम धर्म और शान्ति है। इसके बिना धर्म और शान्ति कहीं तीन काल में अन्यत्र है नहीं। समझ में आया?

जगत की चीज़ होती है तो देखने के लिये नज़र रखकर ऐसी सूक्ष्मता से देखता है परन्तु देखनेवाला उसे वह देखनेवाले स्वयं को कैसे देखना, इसका इसे पता नहीं होता, यह नजर से पर को टकटकी करके देखना चाहता है, वह नज़र स्वयं कौन है – ऐसा देखने की नज़र नहीं करता।

मुमुक्षु : ऐसा क्यों नहीं होता?

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, इसलिए नहीं होता। कैसे होगा? मलूकचन्दभाई! आहाहा! बाहर में पाँच-पचास लाख रुपये (का) धावा पड़ता हो, वहाँ नजर टकटक किया करता है। यह पैसे आये, यह आमदनी हुई, यह बढ़े। क्या बड़ा परन्तु तुझे, धूल बढ़ी।

मुमुक्षु : परन्तु इतनी बात का सुख कितना है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:ख का ढ़ेर है उस समय। 'यह मुझे मिले' ऐसा भाव दु:ख का ढेर है। मूढ़ होकर मानता है कि सुख है। वह तो कौन इनकार करे? कहो, यह निर्णय करना पड़ेगा न? क्या कहते हैं? क्या होगा? मलूकचन्दभाई! अभी अनुभव होता है या नहीं थोड़ा-थोड़ा? यह तो अनादि का ऐसा ही है, धूल में भी कुछ नहीं। व्यर्थ ही मानकर बैठा है। आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दमूर्ति है। आत्मा में नित्य अतीन्द्रिय आनन्द रस पड़ा है, उसे

आत्मा कहते हैं। यह पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे आत्मा नहीं, वे तो विकार हैं। शरीर, वाणी, मन तो मिट्टी, जड़ है। अतीन्द्रिय आनन्द है, इतना भी मैं ज्ञेय नहीं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! और उसका ज्ञान करूँ, उतना भी मेरा ज्ञान नहीं और अतीन्द्रिय आनन्द एक उतना भी मैं ज्ञायक नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु (में) ऐसे तो अनन्त-अनन्त गुण आत्मा में हैं। स्वभाव है न? स्वभाव को क्षेत्र की मर्यादा की आवश्यकता नहीं है, उसके सामर्थ्य की आवश्यकता है। एक-एक अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय श्रद्धा, अतीन्द्रिय शान्ति, अतीन्द्रिय प्रभुता - ऐसे अनन्त गुणरूप एक का जो ज्ञान, वह ज्ञान और वह ज्ञायक मैं और वह मेरा ज्ञेय; दूसरा ज्ञेय - ऐसा नहीं। परन्तु इन तीन के भेद भी वचनमात्र हैं - ऐसा यहाँ तो कहते हैं। अपने में ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता, यह वचन का कल्लोल है, वचन की कल्लोल है, विकल्प की कल्लोल है; वस्तु में यह नहीं ऐसा कहते हैं। देखो!

ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् इस वस्तु के तीन नाम भले ही रखे, मुझमें ही मुझमें, हों! पर के साथ कुछ नहीं। मैं अनन्त गुण का पिण्ड ज्ञायक, मैं स्वयं ज्ञान, सबको जानूँ - ऐसा मैं ज्ञान और मैं मुझे मेरे द्वारा ज्ञात होऊँ - ऐसा मैं ज्ञेय, यह नाम भेद हो... समझ में आया? वस्तु भेद नहीं। वस्तु में ये तीन प्रकार नहीं हैं। वस्तु तो एकाकार सब है। ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञायक एक ही वस्तु है। समझ में आया? छहढाला में आता है, आता है या नहीं? ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। वह सब यहाँ से लिया है। **उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणं** भगवान स्वरूप में जहाँ अन्तर में अनुभव में आवे, (वहाँ) नय की लक्ष्मी छुप जाती है, निक्षेप कुछ दिखता नहीं, प्रमाण-फ्रमाण सब अस्त हो जाता है। आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है। समझ में आया? गुड़ कहो, मिठास कहो और गुड़ की मिठास कहो, सब एक ही है। इसी प्रकार ज्ञेय कहो तो भी मैं; जाननेयोग्य हो तो भी मैं; जाननेवाला हो तो भी मैं और ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञायक हो तो भी मैं। कहो, अब इसमें उड़ जाता है या नहीं सब? अन्दर की दृष्टि में वह कुछ है ही नहीं। जब अन्तर्दृष्टि में स्थिर न रह सके, तब ऐसा शुभविकल्प होता है। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि होते हैं। इतना भी ज्ञेयरूप से मैं - ऐसा उस समय

ज्ञानी नहीं मानता और उसके ज्ञानरूप से उसका ज्ञान, उतना ज्ञान हूँ – ऐसा भी नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! इस चैतन्य के अन्तर के रहस्य और मर्म इसने कभी देखे नहीं हैं। अनन्त काल से घिसटकर मर गया। त्यागी हुआ, साधु हुआ, बाबा हुआ, मर गया। दीक्षा ली, दीक्षा। समझ में आता है न? लोंच किया, मुँडाया, अनन्त बार परन्तु इस आत्मा का ऐसा भान (किये बिना) वह सब व्यर्थ गया। आहाहा!

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ

यह आत्मज्ञान की बात है। समझ में आया? लो! यह श्लोक पूरा हुआ।

प्रभु, तेरी प्रभुता!

हे जीव! तू कौन है? इसका कभी विचार किया है? तेरा स्थान कौन-सा है और तेरा कार्य क्या है, इसकी भी खबर है? प्रभु, विचार तो कर, तू कहाँ है और यह सब क्या है, तुझे शान्ति क्यों नहीं है?

प्रभु! तू सिद्ध है, स्वतन्त्र है, परिपूर्ण है, वीतराग है, किन्तु तुझे अपने स्वरूप की खबर नहीं है; इसीलिए तुझे शान्ति नहीं है। भाई! वस्तव में तू घर भूला है, मार्ग भूल गया है। दूसरे के घर को तू अपना निवास मान बैठा है, किन्तु ऐसे अशान्ति का अन्त नहीं होगा।

भगवान! शान्ति तो तेरे अपने घर में ही भरी हुई है। भाई! एकबार सब ओर से अपना लक्ष्य हटाकर निज घर में तो देख! तू प्रभु है, तू सिद्ध है। प्रभु, तू अपने निज घर में देख, मत में मत देख। पर में लक्ष्य कर-करके तो तू अनादि काल से भ्रमण कर रहा है। अब तू अपने अन्तर-स्वरूप की ओर तो दृष्टि डाल। एक बार तो भीतर देख। भीतर परम आनन्द का अनन्त भण्डार भरा हुआ है, उसे तनिक सम्हाल कर तो देख। एकबार भीतर तो झाँक, तुझे अपने स्वभाव का कोई अपूर्व, परम, सहज, सुख अनुभव होगा। अनन्त ज्ञानियों ने कहा है कि तू प्रभु है, प्रभु! तू अपने प्रभुत्व की एकबार हाँ तो कह।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

*अपना चलता विष है २७१ (कलश) २७० में यह निकाल दिया कि (चार भेद-द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव के मुझमें नहीं, अनन्त नयों के भेद नहीं)। देखो! यहाँ अभेद को सिद्ध करते हैं। भगवान आत्मा एकरूप वस्तु है, वह सम्यग्दर्शन का विषय है - ध्येय है अर्थात् अभेद वस्तु है, उसके आश्रय से श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द आदि प्राप्त होते हैं। इसलिए अभेद की वास्तविकता क्या है, उसका वर्णन (करते हैं)। जो (समयसार की) ११वीं गाथा में **भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मदिट्ठी अवधिजीवो** —इसका विशेष विस्तार करके भिन्न-भिन्न प्रकार से (वर्णन करते हैं)। अभेदपने का आश्रय लेना और अभेदपने का ज्ञान करना, अभेद वस्तु में स्थिर होना, इस बात का वर्णन करते हैं। जो मुद्दे की मूल रकम है। चार का निषेध किया, अब तीन का निषेध करते हैं। देखो न! ओहोहो! मैं राग तो नहीं, शरीर तो नहीं, वाणी नहीं, एक द्रव्य हूँ - ऐसा भिन्न भेद, क्षेत्र हूँ, काल भेद, भावभेद - ऐसा नहीं है। वस्तु तो भी मैं, क्षेत्र तो भी मैं, काल तो भी मैं और भाव तो भी मैं त्रिकाल - ऐसा आत्मा अखण्ड और अभेद का आश्रय करना, वह धर्म का कारण है। कहो, समझ में आया?

अब यहाँ तो तीन बोल—मैं जाननेवाला, ज्ञान द्वारा मैं जाननेवाला, ज्ञान और ज्ञात हो परद्रव्य-छह द्रव्य, वह मेरी ज्ञानपर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो, इतनी ज्ञानपर्यायवाला भी मैं नहीं, इतना ज्ञेय मैं नहीं। सूक्ष्म बात है। ज्ञान की अवस्था में छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसा जो ज्ञेयपना एक समय की पर्याय का, वह वास्तविक ज्ञेय नहीं है। छह द्रव्य तो ज्ञेय नहीं, परन्तु एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो - ऐसी एक समय की पर्याय, उतना भी मैं ज्ञेय और उतना ज्ञान मैं नहीं। समझ में आया? स्वयं का ज्ञेय स्वयं; स्वयं जाननेवाला, स्वयं जाननेयोग्य, स्वयं ज्ञाता - ऐसे तीन भी जिसमें नहीं। पर का ही ज्ञाता, परज्ञेय, मैं मेरी

* प्रारम्भिक छह मिनिट का प्रवचन उत्तम मार्दव धर्म पर है, जो यहाँ नहीं लिया गया है।

पर्याय में परज्ञेय ज्ञात हो, उतना मैं, उतना तो नहीं परन्तु मैं स्वज्ञेय-पूरी चीज़ वह स्वज्ञेय, उसका जाननेवाला और ज्ञाता – ऐसे तीन भेद भी मुझमें नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? यह बात करते हैं, देखो!

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

अन्तिम में अन्तिम अभेद की स्थिति का वर्णन है!

भावार्थ ऐसा है कि.. पहले से भावार्थ ऐसा है, कहते हैं। अभी कहे पहले। अर्थात् कि अब कहना है, उसका स्वरूप ऐसा है – ऐसा उसका भाव यह है कि जो कहना है, उसका भाव यह है कि **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है..**

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी॥
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी।
निजरूपा पररूपा भासी॥

(समयसार नाटक, साध्य-साधक द्वार, छन्द-४६)

ज्ञेय के दो प्रकार : एक निजरूप ज्ञेय जाननेयोग्य और एक पररूप ज्ञेय जाननेयोग्य। उसमें भी पररूप जाननेयोग्य ज्ञेय इतना ही मैं नहीं – ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ओहोहो! ज्ञान की पर्याय में अनन्त सिद्ध भी आ गये, छह द्रव्य में तो, हैं? अनन्त केवली आ गये। उस ज्ञान की पर्याय में अनन्त केवली, सिद्ध, छह द्रव्य, उनकी गुण-पर्यायें एक समय में जानने की पर्याय इतने ज्ञेय को जाने, उतना ज्ञानमात्र और इतना ज्ञेयमात्र मैं नहीं हूँ। समझ में आया?

ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है। सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। मैं एक जाननेवाला हूँ और मुझसे भिन्न सभी अनन्त छह द्रव्य, वे मुझे ज्ञेय हैं; ऐसा भी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठी! ओहोहो! **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य..** देखो, यह शरीर, राग,

परमात्मा, अनन्त निगोद, पंच परमेष्ठी और अनन्त परमाणुओं के स्कन्ध, अनन्त निगोद आदि, ये सब मुझे जाननेयोग्य है और मैं इनका जाननेवाला हूँ ? नहीं; इतना ही मैं नहीं। यह आत्मा कितना है, कैसा है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया ?

यह छह द्रव्य जो ज्ञेय हैं और मैं जाननेवाला हूँ **सो ऐसा तो नहीं...** हों! ऐसा कहते हैं। इतना मैं नहीं और ऐसा नहीं, हों! आहाहा! अमरचन्दभाई! गजब बात, अन्तिम कलश यह अभेद का है, फिर तो दूसरी भिन्नता की बातें लेंगे। यहाँ तो भूतार्थ वस्तु एकरूप वस्तु, उसमें कहते हैं कि ऐसे पर का जाननेवाला मैं और मैं ज्ञायक तथा पर मुझे ज्ञात हो, बस वह चीज़ मैं, कि नहीं; ऐसा तो मैं नहीं। समझ में आया ? इस शरीर का धर्म जीव पद में ज्ञात होता है। लोक के स्वभाव ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, कहते हैं कि इतना ही ज्ञेय हूँ ? और उस ज्ञेय को-छह द्रव्य को जानने की जो मेरी वर्तमान पर्याय, इतना ही ज्ञान है ? और इतना ही ज्ञेय है ? आहाहा! समझ में आया ? नहीं। **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है..**

'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' मैं जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ.. अकेला ज्ञातादृष्टा चैतन्यस्वभाव पूर्णस्वरूप सर्वस्व चेतनस्वरूप मैं हूँ। समझ में आया ? **ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** स्वज्ञेय **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** देखो! मैं एक वस्तु चेतन अनादि-अनन्त ज्ञानस्वरूप भगवान ज्ञानमूर्ति, वह ज्ञेय हूँ। छह द्रव्य ज्ञेय, इतना नहीं, छह द्रव्य ज्ञेय वे ज्ञेय नहीं। छह द्रव्य के ज्ञेय का ज्ञान, उतना ज्ञान नहीं और छह द्रव्य ज्ञेय वे ज्ञेय नहीं। सेठी! अजर प्याला है यह, आहाहा! आहाहा! क्या कहते हैं ? कहते हैं कि मेरे अतिरिक्त जितने छह द्रव्य हैं, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय को मैं रचूँ तो नहीं, करूँ तो नहीं, परन्तु वे जो ज्ञेय हैं, छह द्रव्य, मेरी ज्ञान की पर्याय मैं ज्ञात होने योग्य (है), उतना ज्ञेय ही मैं और वह ज्ञान की पर्याय उतना ही ज्ञान हूँ - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? धीरे से समझने जैसी बात है। यह तो अत्यन्त / एकदम भगवान आत्मा चैतन्यसर्वस्व का पिण्ड सम्पूर्ण वह स्वयं अपना ज्ञेय है। एक समय की पर्याय, जिसमें छह द्रव्य ज्ञात हों, छह द्रव्य ज्ञात हों, उतना ही ज्ञेय और उतना ही ज्ञान ? कि नहीं; उतना नहीं। वह पर्याय तो एक अंश हो गयी। समझ में आया ? आहाहा!

चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप.. मैं वस्तु पूर्ण स्वरूप स्वज्ञेय **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..**

कहो, समझ में आया या नहीं इसमें ? रतिभाई ! क्या पुस्तक, पुस्तक ली नहीं ? इसे समझ में नहीं आये इसमें अन्दर, क्या करे ? पुस्तक के इस शब्द का अर्थ (यह) होता है पता पड़े न कि इस शब्द का यह अर्थ है इसमें ! इसमें घर में (पढ़े तो) अता-पता हाथ आवे ऐसा नहीं है। गज का अंक सूझे ऐसा नहीं है वहाँ। आहाहा !

कहते हैं कि तू कितना और कहाँ है ? क्या तू ज्ञान की एक समय की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हो इतना ज्ञेय तू है ? और उतना ज्ञान तू है ? आहाहा ! राग आदि तो नहीं, पुण्य-पाप तो नहीं, कर्म-शरीर नहीं, यह छह द्रव्य का करना / रचना तो नहीं, परन्तु छह द्रव्य का ज्ञान, ज्ञान में ज्ञेयरूप से हो, उतनी भी पर्याय जो ज्ञेय हो, उतना ज्ञेय नहीं। और उतना ज्ञान ? उतना ज्ञान भी मैं नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? समझ में आता है या नहीं सेठ ? सूक्ष्म है।

आहाहा ! भगवान आत्मा, चैतन्यसर्वस्व जिसका स्वरूप, चैतन्य सर्वस्व ज्ञायक जिसका स्वरूप है, उसमें एक समय की पर्याय में षट्द्रव्य ज्ञात हो, उतनी पर्यायमात्र ज्ञेय कैसे हो और उतनी पर्यायमात्र ज्ञान मैं कैसे होऊँ ? मैं तो सर्वस्व चैतन्यमूर्ति आत्मा हूँ। समझ में आया ? आहाहा ! अभेद के आश्रय का, आश्रय करना वह अभेद कैसा - ऐसा यहाँ वर्णन करते हैं। एक समय की (ज्ञान) पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात है... ओहो ! अनन्त केवली ज्ञात हों। आहाहा ! श्रुतज्ञान की पर्याय में, हों ! श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों, ऐसा होने पर भी एक समय की पर्याय जितना मेरा ज्ञान नहीं है। एक समय की पर्याय में अनन्त सिद्ध ज्ञात हों.. छह द्रव्य है या नहीं ? यह क्या कहा ? आहाहा !

मेरी ज्ञान की पर्याय - श्रुतज्ञान की वर्तमान में एक अंश जो है, वह अनन्त सिद्धों के केवली का स्वरूप जो अनन्त है, उसे ज्ञेयरूप से मेरी पर्याय जानती है ! परन्तु कहते हैं, इतने सब अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध और उनसे अनन्त गुने निगोद आदि उनकी सर्वज्ञ शक्तियाँ अनन्त सब की, ओहोहो ! समझ में आया ? सर्वज्ञ अनन्त प्रगट और सर्वज्ञ शक्तिवन्त अव्यक्त अनन्त आत्मायें और एक-एक परमाणु सर्वस्व अनन्त गुण का पिण्ड है, वह तो जड़ अचेतन है, उसकी पर्याय में पूर्णता अनन्त गुण की पर्याय सब सफेद, हरी आदि पर्यायें - इन सबको मेरे ज्ञान की एक समय की पर्याय ज्ञेयरूप से जानती है, उतना एक समय की पर्याय जितना और इतना जाने उतनी पर्यायमात्र मैं नहीं हूँ। आहाहा !

शोभालालजी! आहाहा! गजब बात! परन्तु एक समय की पर्याय में अनन्त केवलियों को जाने, सर्वज्ञ शक्तिवन्त को जानता है न! आहाहा! और वह अंश जो है, उतना ज्ञेय भी नहीं और उतना ज्ञान भी नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! राजमलजी! यह तो लॉजिक से बात चलती है। एक समय के अंश की ज्ञानदशा, उतना ही ज्ञेय? बाकी सब वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, पूर्ण चैतन्यपिण्ड, चैतन्य सर्वस्व रह जाता है न! ज्ञेय में पूरा रह जाता है और ज्ञान में भी पूरा रह जाता है। पूरा स्वरूप ज्ञानमात्र चैतन्य है। समझ में आया? आहाहा!

राग का करना और राग को रचना, यह तो मुझमें नहीं परन्तु राग को जानना – ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, उतना भी मैं नहीं। समझ में आया? व्यवहार का विकल्प उठे, दया, दान आदि का विकल्प (उत्पन्न हो), वह परज्ञेय है। उस परज्ञेय का ज्ञान मेरी पर्याय में हो, उतनी पर्याय भी ज्ञेय-स्वज्ञेय उतना नहीं। स्वज्ञेय उतना नहीं और स्वज्ञान उतना नहीं। समझ में आया? मैं उस व्यवहारवाला और छह द्रव्यवाला तो नहीं। मैं उस व्यवहारवाला छह द्रव्यवाला, स्त्री-पुत्रवाला, आस्रववाला – ऐसा तो मैं नहीं, परन्तु उस सम्बन्धी का मेरी ज्ञान की पर्याय में जो ज्ञान होता है, उतना मैं ज्ञान नहीं और उतना मैं ज्ञेय नहीं। आहाहा! सेठी! आहाहा! किसका अभिमान हो, कहते हैं? यह छह द्रव्य जाने, बापू! छह द्रव्य जाने हों तो वह तो ज्ञान की पर्याय एक अंश है, उसमें हुआ क्या? आहाहा! और उतना ही ज्ञानमात्र। भगवान तो ऐसे अनन्त अंश का पिण्ड एक गुण है और ऐसे-ऐसे तो अनन्त गुण का पिण्ड तो वह द्रव्य है – ऐसा जो चैतन्य का सर्वस्व – पूरा, उसका द्रव्य-गुण-पर्याय चैतन्य का सर्वस्व, वह ज्ञेय है। चैतन्य का, द्रव्य का, गुण का, पर्याय का सर्वस्व, वह ज्ञेय है। एक समय की पर्याय वह ज्ञेय और एक समय की पर्याय वह ज्ञान, उतना मैं नहीं। स्वरूपचन्दभाई! बहुत कठिन, भाई! आहाहा!

इस समय देखो न, निर्वाण का दिन है न? तो कहते हैं कि इतना ज्ञेय मैं नहीं। किसका अभिमान करना है? इतना ज्ञान मैं नहीं, इतने अंश का ज्ञान-ज्ञेय माने तो मिथ्यादृष्टि है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक समय की ज्ञान की अवस्था छह द्रव्य जाने, इतनी ताकतवाली, इतना ही जीव का ज्ञेय माने और इतनी ही पर्याय ज्ञानस्वरूप इतना ही है – ऐसा माने, पर्यायबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! कहो, कठिन बातें भाई! ऐसी वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. ऐसी है, भाई! ऐसे-ऐसे अनन्त अंश तो पी गया है ज्ञानगुण। एक

समय में अनन्त केवलज्ञान ज्ञात हो, अनन्त सर्वज्ञ जीव, सर्वज्ञशक्तिवाले सर्वज्ञशक्तिवाले एक समय की पर्याय में ज्ञात हो ऐसा तो एक समय की पर्याय पी गयी उसे। और अब ऐसी एक समय की पर्याय का अंश तो ज्ञान अनन्त को पी गया अन्दर। अब इतना अंश कहाँ तू ज्ञेय और ज्ञान है ? आहाहा ! समझ में आया ?

कहा न देखो न ! '**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि**' '**अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि**' चेतना सर्वस्व ऐसी वस्तुस्वरूप हूँ। है न ? '**सः ज्ञेयः**' वह मैं ज्ञेय हूँ। मैं ज्ञेय इतना चैतन्यमात्र पूरा स्वरूप पूर्णानन्द वस्तु, वह ज्ञेय हूँ, वह मेरा ज्ञेय और वह मैं ज्ञान और उसका मैं ज्ञाता। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? ऐसी बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त त्रिकाल में कहीं नहीं हो सकती। क्योंकि वस्तु ही ऐसी भगवान आत्मा एक समय की पर्याय में सब ज्ञात हो, उतना नहीं। आहाहा ! मैं तो पूरा चैतन्य सर्वस्व द्रव्य में भरा हुआ ज्ञान, गुण में भरा हुआ ज्ञान, अनन्त गुण में व्यापक ज्ञान, वह सब पूरा आत्मा होकर मैं स्वज्ञेय हूँ। एक समय की पर्याय का ज्ञेयमात्र नहीं परन्तु सर्वस्व ज्ञानमात्र पूरा आत्मा, वह मैं स्वज्ञेय हूँ। आहाहा !

ज्ञानमात्र '**सः ज्ञेयः न एव**' **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ...** ऐसा कहते हैं। एक पद के दो टुकड़े किये। '**ज्ञानमात्रः भावः अस्मि सः ज्ञेयः**' समझ में आया ? '**न एव**' क्या कहते हैं ? **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ... 'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र** ज्ञेय इतना मैं नहीं। समझ में आया ? '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः**' ज्ञेय के जानपना मात्र, इतना मैं नहीं। आहाहा ! ज्ञान की एक समय की अवस्था, वह छह द्रव्यों को ज्ञेयरूप से जाने, उतना मैं ज्ञेयरूप नहीं हूँ। '**न एव**' ज्ञेयरूप नहीं, उतना ज्ञेयरूप नहीं। सर्वस्व ज्ञायकस्वरूप त्रिकाल है, उतना वह मैं ज्ञेयरूप हूँ। अस्ति-नास्ति की है। आहाहा ! लोगों को भारी कठिन पड़ता है परन्तु सरल है, यह इसकी चीज़ इस प्रकार ही है। जिस प्रकार हो, ऐसा प्राप्त होता है या जिस प्रकार न हो ऐसे प्राप्त होता है ? समझ में आया ? आहा ! '**ज्ञेयः ज्ञानमात्रः न एव' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र**। वह ज्ञेय उतना मैं नहीं। आहाहा !

यहाँ तो अभी थोड़े बहुत शास्त्र का पठन जहाँ हो, वहाँ तो लोगों को ऐसा हो जाता है (कि) हमने तो बहुत जाना। ओहो ! उसका तो पेट फट जाता है (अभिमान चढ़ जाता

है)। दूसरे को कहता है कि मुझे ऐसा आता है, देखो अधिक मानना मुझे दूसरे की अपेक्षा, हों! इतना मुझे आता है। ऐसा क्या हुआ तुझे? यह यहाँ कहते हैं, तुझे तेरे ज्ञान की पर्याय में अनन्त केवली ज्ञात हों, इतना तेरा ज्ञान हो, उतने जानने को भी तू तेरा माने - ज्ञेय को भी (तो) तू मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

इसमें न्याय समझ में आता है या नहीं? कहीं ऐसी बात नहीं कि पकड़ में नहीं आवे। लो, समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय, कितनी बड़ी कि जिसमें छह द्रव्य ज्ञात हो जायें। इतना बड़ा तो मैं हूँ या नहीं? छह द्रव्य में कौन से शास्त्र का बाकी रह गया? केवलज्ञानी, बारह अंग के पढ़नेवाले भी उसकी ज्ञान की पर्याय में आ गये। आहाहा! मन:पर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी, चौदह पूर्व के धारक, बारह अंग के धारक, अल्पज्ञताधारक और गुण के पूर्ण धारक शक्तिरूप से और ऐसे द्रव्य सब ज्ञान की पर्याय में.. आहाहा! एक समय की पर्याय में इतना सब आया, तथापि उतने ज्ञेयमात्र मैं नहीं, हों! आहाहा! इस पर से तो भिन्न है ही परन्तु इतनी पर्याय जितना मैं नहीं - यहाँ तो ऐसा सिद्ध करना है। यहाँ तो अभी एक समय की पर्याय, उतना वह ज्ञेय और उतना ज्ञान नहीं। पूर्ण द्रव्य का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञेय पूरा रह जाता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पूर्ण भगवान, पूर्ण अखण्डानन्द प्रभु जो ज्ञेयरूप है और जो ज्ञानरूप है, वह पूरा ज्ञेय और ज्ञान, पर्याय में न आवे, और एक ही पर्याय का अंश ही ज्ञेयरूप ज्ञात हो और माना जाये और उतना ही ज्ञानमात्र आत्मा माने, उसने आत्मा जाना ही नहीं, उसकी पर्यायबुद्धि, मूढ़मिथ्यादृष्टि बुद्धि है। आहाहा! समझ में आया?

ओहो! सन्तों की कथनी!! बहुत सरल करके रखा है। उसकी-आत्मा की महिमा की शक्ति का माप निकालने के लिये बहुत सरल रीति से बात रखी है, (तथापि) कहे पकड़ में नहीं आता प्रभु तुझे? भाई! तेरी ज्ञान की एक समय की अवस्था.. यह सब राग और विकल्प हो, शरीर या वाणी हो, वह सब छह द्रव्य हो, अनन्त केवली हो इतनी पर्याय जाने तो इतनी पर्याय ज्ञेय को जाने, इतनी ही पर्याय ज्ञेयमात्र तेरी है? इतना ही ज्ञेयमात्र तू है? भाई! और वह पर्यायमात्र तेरे ज्ञान का अंशमात्र तेरा ज्ञान इतना ही ज्ञान है? समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय - ऐसा तो नहीं है।

आहा! दूसरे छह द्रव्यों को मैं रुचूँ (ऐसा तो नहीं), वह तो उसकी सत्ता से रहे हुए हैं। छह द्रव्य उनके गुण और उनकी पर्याय अर्थात् कार्य वे सब उनके कार्य-कारण से रहे हुए हैं। मेरे कारण से कार्य नहीं है और मेरे कारण से वह कारण नहीं है अथवा उनका मैं कारण और वे मेरे कार्य अथवा वे कारण और मेरा कार्य (-ऐसा तो नहीं है)। ज्ञान की पर्याय, वह छह द्रव्य को जाने इससे वह छह द्रव्य कारण और मेरी ज्ञान की पर्याय कार्य - ऐसा भी नहीं है। तथा मेरी ज्ञान की पर्याय कारण और छह द्रव्य को रखे - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो परमात्मा का तल खोजते हैं। परमात्मा के तल में कितना पड़ा है अन्दर में। तल समझते हैं? उस कुएँ में जाते हैं न, पानी में गिरते हैं और थाह लाते हैं, थाह समझते हो? वह।

मुमुक्षु : भीतर में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; अन्दर में से। गोताखोर - गोताखोर हो और वह पानी में पड़े फिर अन्दर ठेठ (तल में) जाये, हाथ में ले आवे (तल की) रेत-रेत; इसी प्रकार परमात्मा की थाह लेते हैं। परमात्मा का शक्ति का महाकुँआ है, उसकी यहाँ थाह लेते हैं। आहाहा!

ज्ञान की पर्याय, पूर्णानन्द केवलज्ञान पूरा (पूर्ण स्वरूप) अकेला ज्ञायकस्वभाव का पिण्ड, ऐसे केवलज्ञानी और अनन्त सिद्धों को जाने और अनन्त सर्वज्ञ, अनन्त आत्मा को जाने तो आत्मा में सर्वज्ञ शक्ति प्रत्येक में है - ऐसा भी ज्ञानपर्याय जानती है या नहीं? (जानती है)। प्रगट रूप से है, उन सर्वज्ञों को जानती है और अप्रगटरूप है - ऐसे द्रव्यों को जानती है। आहाहा! ऐसे-ऐसे अनन्तगुणे आत्मा और उनसे अनन्तगुणे परमाणु... अनन्तगुणे आत्मा हैं न, सिद्ध से अनन्त हैं। उनसे अनन्तगुणे परमाणु हैं, उससे अनन्तगुणे त्रिकाल (तीन काल के समय) उनसे अनन्तगुणे आकाश के क्षेत्र के प्रदेश। आहाहा! उन्हें ज्ञान की एक समय की पर्याय ज्ञेयरूप से जानती है, तथापि वह एक समय की पर्याय, वह ज्ञेयमात्र नहीं, उतना ज्ञेय मैं नहीं। आहाहा! मुझे जानने का तो उससे अनन्तगुणा ज्ञेय रह जाता है। समझ में आया? और उतने ज्ञान का अंशमात्र मैं ज्ञान नहीं; उससे तो अनन्त-अनन्तगुने अंश का धारक ज्ञान, ऐसे अनन्त गुण का धारक द्रव्य रह जाता है। समझ में आया?

बापू! यह तो धर्म का मार्ग है, यह वीतराग का मार्ग / रास्ता (है)। इस वीतराग के

मार्ग को पहिचानना कठिन, प्रभु! ओहोहो! और जिसने यह जाना, वह वीतराग हुए बिना नहीं रहता। आहाहा! ऐसी वस्तु भगवान के अतिरिक्त (अन्यत्र कहीं नहीं हो सकती)। परिपूर्ण द्रव्य को किस प्रकार सिद्ध करना चाहते हैं! आहाहा!

इस पर्याय से अनन्तगुणा तो वह ज्ञान है, एक गुण है। ऐसे अंश, एक अंश में छह द्रव्य आदि के गुण-पर्यायों को जाने - ऐसे एक अंश से अनन्तगुणा तो एक ज्ञानगुण है। उससे अनन्तगुणे तो दूसरे गुण हैं। इन अनन्तगुणे गुण का रूप पूरा द्रव्य, वह पूरा ज्ञेय है। आहाहा! वे-गुणभेद तो निकाल दिये थे। उसमें-अनन्त शक्ति में निकाल दिये थे न? अकेला।

अब यहाँ तो यह कहते हैं—इतना एक गुण का इतना एक अंश और ऐसे अनन्त गुण (का पिण्ड), इतना वह एकरूप त्रिकाल अकेला चैतन्य सर्वस्व आत्मा है, वह मेरे ज्ञान की पर्याय का ज्ञेय और उतना पूरा वह मैं ज्ञान। समझ में आया? आहाहा! तब दृष्टि अन्दर में जाती है, कहते हैं। यह एक समय की पर्याय इतनी और इतना ज्ञान? कि नहीं, नहीं; वह तो पर्यायबुद्धि हुई, वह तो अनादि की बुद्धि है, अनादि की मान्यता है, ऐसा तो अनादि से वह नौ पूर्व पढ़ा तो उसमें भी यह माना था।

भगवान आत्मा एक सर्वस्व चैतन्य, पूरा चैतन्य। और एक अंश क्या... समझ में आया? आहाहा! उसमें लिखा है, हों! उसमें (समयसार नाटक में) स्व-परप्रकाशक शक्ति कही है न?

कोऊ ग्यानवान कहै ग्यान तौ हमारौ रूप।
ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नांही है॥

षट्द्रव्य हमारा रूप नहीं। नहीं... नहीं.. षट्द्रव्य को जानने की एक समय की पर्याय भी तेरा पर्यायरूप है।

एक नै प्रवांन ऐसे दूजी अब कहूँ जैसे।
सरस्वती अक्खर अरथ एेक ठाहीं है॥

शब्द है न शब्द, उसमें अक्षर भी वह, सरस्वती भी वह और अर्थ भी वह। इसी प्रकार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय स्वयं अपना अपने में है। ज्ञेय दूसरा और ज्ञान दूसरे का और ज्ञाता दूसरा - ऐसा नहीं है।

तैसे ग्याता मेरौ नाम ग्यान चेतना विराम।
ज्ञेयरूप सकति अनंत मुझ मांही है॥
आ कारन वचन के भेद भेद कहै कोऊ।
ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है॥

मेरी महासत्ता भगवान में ज्ञाता, ज्ञेय का विलास उसमें है। एक समय की पर्याय में भी ज्ञाता-ज्ञेय नहीं आता। फिर यह कहा..! (चौपाई ४६)

स्वपर प्रकासक सकति हमारी।
तातैं वचन भेद भ्रम भारी॥
ज्ञेय दशा दुविधा परग्रासी।
निजरूपा पररूपा भासी॥

निजरूपा आतम सकति, स्वज्ञेय निजरूप वह आत्मशक्ति निजज्ञेय **पररूपा पर वस्त। जिन लखि लीनौ पेंच यह, तिन लखि लियौ समस्त॥४७॥**' समझ में आया?

अर्थ :- स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत के सब पदार्थ है, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलझन समझ ली है उलझन; उलझन क्या? उलझन क्या? उलझन का अर्थ नहीं आता? यह तो हिन्दी शब्द है। यह उलझन (अर्थात्) इसका रहस्य समझ लिया। ऐसा (अर्थ है) यहाँ तुम्हारी भाषा आवे तो, उसने सब कुछ ही जान लिया समझो - स्वज्ञेय-परज्ञेय की उलझन समझ ली। 'उलझन' नहीं आता तुम्हारे?

श्रोता : कहीं मुसीबत हो, गूँच पड़ी हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, गूँचवाड़ा ठीक, इस गूँचवाड़े की गूँच जिसने समझ ली, वह सब समझ गया। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र ।..** **मैं ज्ञायक और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नहीं है,** हों! **तो कैसा है? ऐसा है 'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः'** आहाहा! '**ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः**' '**ज्ञान**' अर्थात् **जानपनारूप शक्ति..** और '**ज्ञेय**' (अर्थात्) **जानने योग्य शक्ति..** अपनी, हों! प्रमेय। अपना द्रव्य, गुण और पर्याय में प्रमेयपना व्यापक है, ज्ञेय शक्ति है वह, पूरा द्रव्य, पूरा गुण और पर्याय तीनों होकर एक ज्ञेय

है। एक समय की जो पर्याय छह द्रव्य को जाने, वह स्वज्ञेय, इतना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

बहुत ऊँचा अधिकार है। मूल सम्यग्दर्शन का विषय अभेद है, यह सिद्ध करना है। वस्तु स्वयं अभेद, ज्ञान तो वह; ज्ञाता तो वह; ज्ञेय भी वह। परज्ञेय-फरज्ञेय का यहाँ है नहीं और स्वयं ज्ञान, स्वयं ज्ञाता, स्वयं ज्ञेय, यह भी वचन के भेद से भेद पड़ता है; वस्तु तो अखण्ड अभेद वह ज्ञान, वह ज्ञाता और वह ज्ञेय। जैसे उसमें (चार बोल में) कहा था कि द्रव्य कहो तो वह; क्षेत्र कहो तो वह; काल कहो तो वह और भाव कहो तो वह; (इसी प्रकार यहाँ) ज्ञाता कहो तो वह; ज्ञान कहो तो वह और ज्ञेय कहो तो वह (ही है)। यह ऐसा कहते हैं। आहा! समझ में आया?

'ज्ञान' जानपनारूप शक्ति 'ज्ञेय' जानने योग्य शक्ति 'ज्ञातृ' अनेक शक्ति बिराजमान वस्तुमात्र ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है.. परन्तु ये तीनों होकर मैं एकरूप वस्तु हूँ। **ऐसा ज्ञेयरूप हूँ।** लो! ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। क्या कहा? एक जानपनेरूप शक्ति, एक जाननेयोग्य शक्ति और ज्ञाताशक्ति - ऐसे तीन रूप होकर ज्ञेयरूप हूँ। आहाहा! भाई! ऐसी बात तो कहाँ से.. एक इन्द्रिया, दो इन्द्रिया, तीन इन्द्रिया में चलता हो, जीवदया, वोसराविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं और जाओ हो गया.. मिच्छामि दुक्कडं में धर्म हो गया। इच्छामि पडिक्कम्मामि, हल्का हो गया, यहाँ से निकलकर जायेगा अब नीचे। वस्तु का भान नहीं होता। चैतन्यबिम्ब प्रभु कौन है? उसका सामर्थ्य कितना है? कितने में -शक्ति में रहा हुआ है - ऐसे स्व के सामर्थ्य की जिसे खबर नहीं और दूसरे क्रियाकाण्ड में रुके, वे सब परिभ्रमण के मार्ग में पड़े हैं। समझ में आया? आहाहा! कठिन पड़ता है परन्तु दूसरा क्या हो? वस्तु ही ऐसी है, वहाँ क्या हो? कहीं भगवान ने की है? भगवान ने-सर्वज्ञ ने ऐसी की है? स्वतः ऐसी चीज़ है। यह पूरा ज्ञाता, वह स्वयं ज्ञेय और स्वयं ज्ञान। ज्ञान कहो तो भी सर्वस्व; ज्ञेय कहो तो भी सर्वस्व ज्ञाता कहो तो भी सर्वस्व। समझ में आया? गजब बात है!

दिगम्बर सन्तों की कथन पद्धति! अलौकिक वस्तु को स्पर्श करावे, ऐसी वस्तु है। इसके ख्याल में आ जाये.. आहाहा! कि यहाँ कहाँ अटका - ऐसा ये कहते हैं। एक समय के ज्ञान के अंश में कहाँ अटका? इतना कहाँ तेरा स्वरूप है? ऐसा कहते हैं। समझ में

आया ? और एक समय का ज्ञान, इतना ही तेरा ज्ञान कहाँ है ? पूरा भगवान ज्ञायकस्वरूप है न, पूरा ज्ञानस्वरूप है न, पूरा ज्ञेयस्वरूप है। ये तीनों वचन के भेद से भेद हैं, वस्तु में भेद नहीं है।

पर के साथ तो कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु स्वयं ज्ञेय कहो तो भी पूरा; ज्ञान कहो तो भी पूरा; ज्ञाता कहो तो भी पूरा है। आहाहा! अनन्त यह स्वयं का स्वयं। क्या कहा फिर..

मुमुक्षु : अनन्त शक्ति-गुण कहा है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अनन्त शक्ति अनन्त शक्ति का नहीं, यह अनन्त शक्ति तो इसका माहात्म्य कहा, ऐसा नहीं। यह तो अनन्त स्वरूप जो है, ज्ञान एक अंशमात्र नहीं परन्तु पूर्ण ज्ञायक, वह मैं और एक अंश जितना ज्ञान नहीं, पूरा ज्ञान, पूरा सब पूर्ण वस्तु, वह मैं और पूर्ण वस्तु, वह ज्ञेय। समझ में आया ? देखो, यह सर्वज्ञ परमात्मा के कहे हुए तत्त्व का रहस्य!

श्रीमद् में आता है न! हे भगवान! तुम्हारे (कहे हुए) तत्त्व को मैंने लक्ष्य में लिया नहीं - ऐसा आता है। लक्ष्य में लिया नहीं, हों! ***(क्षमापना-हे भगवान! मैं बहुत भूल गया। मैंने तुम्हारे अमूल्य वचन को लक्ष्य में लिया नहीं, तुम्हारे कहे हुए अनुपम तत्त्व का मैंने विचार किया नहीं। तुम्हारे प्रणीत किये हुए उत्तम शील का सेवन किया नहीं, तुम्हारे कहे हुए दया, शान्ति, क्षमा, और पवित्रता मैंने पहचाना नहीं)*** तुम्हारे कहे हुए दया, दान को मैंने जाना नहीं, पहिचाना नहीं, हों! ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है - ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। ऐसे ज्ञेयरूप हूँ कहकर कहते हैं कि ये तीन होकर मैं एक ज्ञेय हूँ। **भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,...** देखो! स्पष्टीकरण करते हैं। वेदनेयोग्य मैं, ज्ञात होनेयोग्य मैं और जाननेवाला मैं, जानने में आनेयोग्य मैं और जाननेवाला भी मैं। जाननेयोग्य चीज़ दूसरी और मैं जाननेवाला हूँ - ऐसा नहीं। समझ में आया ? वेद्य अर्थात् जाननेयोग्य और वेदक अर्थात् जाननेवाला। मैं स्वयं ही वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,..** पर को जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान-ऐसा नहीं है। मैं जाननेयोग्य और मैं जाननेवाला; इसलिए मेरा नाम ज्ञान। क्या कहा, समझ में आया ? वेद्य-जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला

मैं। ऐसे जाननेयोग्य और जाननेवाला ऐसे ज्ञानमात्र मैं। जाननेयोग्य और जाननेवाला – ऐसा ज्ञानमात्र मैं; इसलिए मेरा नाम ज्ञान है। **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ; विकल्प द्वारा नहीं, निमित्त द्वारा नहीं, पर द्वारा नहीं.. गुरु द्वारा भी नहीं.. ऐसा कहते हैं। परन्तु इसमें क्या आया, देखो न, लिखा है ? **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,..**

मुमुक्षु : आप कहते हो, तब सत्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सत् तो इसे स्वयं को लगे, तब हो न, और स्वयं से ही– ऐसा यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : किसी की मदद तो होती है न.. ? गुरु मददरूप होते हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ क्या कहते हैं, देखो !

मुमुक्षु : गुरु बतानेवाले हैं न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जब स्वयं स्वयं को बताता है, तब स्वयं अपना गुरु है।

मुमुक्षु : पहले तो चाहिए न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले – पीछे कुछ है ही नहीं इसमें। ऐसी बात है, भाई ! गुरु की व्याख्या नहीं आयी थी ? समाधिशतक में (आया था) कि जो कोई तत्त्व को समझावे, वह गुरु। तो स्वयं अपने को तत्त्व को समझाता है कि ऐसा हूँ, भाई ! ऐसा हूँ न, भाई ! इसलिए तू तेरा गुरु है। सेठी ! आहाहा !

मुमुक्षु : समझावे तब समझ में आवे न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वयं समझे, तब समझ में आता है। दूसरे से समझाने में कुछ नहीं आता, दूसरा तो ज्ञेय है – ऐसा कहते हैं यहाँ तो। क्या कहा ? वे गुरु और गुरु की वाणी तो ज्ञेय परन्तु इतनी ज्ञान की पर्याय, इतना ज्ञेय भी मैं नहीं – ऐसा कहते हैं और वह ज्ञान की पर्याय गुरु तथा वाणी से हुई – ऐसा भी नहीं है। क्या कहा ? वर्तमान ज्ञान की एक समय की पर्याय है, उसमें गुरु, देव, और शास्त्र, वे तो ज्ञेय हैं। अब वे ज्ञेय हैं – ऐसा जाना, वह ज्ञेय के कारण नहीं; अपनी पर्याय के कारण जाना कि यह है। परन्तु वह पर्याय ने जाना, उतना भी मैं नहीं ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

आहाहा! वीतरागमार्ग के रहस्य अलौकिक मक्खन है मक्खन! आहाहा! स्थिर होकर पिण्ड हो जाये ऐसा है। ऐसी वस्तु भगवान।

कहते हैं, इन छह द्रव्यों को जानने में इसमें देव-गुरु और वाणी आ गये या नहीं? और शास्त्र-ये सभी शास्त्र आ गये या नहीं? ज्ञेय। उन शास्त्रों को मेरी ज्ञान की पर्याय में, मेरे से जानूँ, इतना भी मैं ज्ञेय नहीं, ऐसा। उस शास्त्र से मैंने जाना – ऐसा नहीं; मेरे ज्ञान की पर्याय उसे ज्ञेय करके, वह वर्तमान मेरी ज्ञान की पर्याय स्वतन्त्र उस ज्ञेय के अवलम्बन बिना अर्थात् उसके आधार बिना, उसका जितना जैसा स्वरूप है – ऐसा मेरी ज्ञानपर्याय में मुझसे ज्ञात हुआ, परन्तु उतना भी मैं ज्ञेय और उतना ज्ञान मैं नहीं; तो फिर सामने वाणी और गुरु इतना यहाँ आया और उससे हुआ, ऐसा तो है नहीं – ऐसा कहते हैं। सेठ! तुम्हारे यहाँ बहुत चलता है। उस-पुस्तक की वाणी में से, मूर्ति को उत्थापन कर, मूर्ति में कुछ नहीं मिलता, वाणी में सब आ गया – ऐसा बोलते हैं, इनमें लिखते हैं, इनके पण्डितों का लेख आता है। शास्त्र में मिथ्या के मिथ्या लेख सब। मूर्ति में कहाँ कोई गुण पड़ा है, वह तो जड़ है – ऐसा कहते हैं। तो वह तो जड़ और वाणी वह (भी) जड़ है। सुन न अब! दोनों जड़ हैं।

यहाँ तो कहते हैं उस वाणी का ख्याल किया – ऐसा विकल्प भी जड़ है। वह उस ओर के ज्ञान का अंश प्रगट हुआ, वह भी वास्तव में चैतन्य का अंश नहीं है, ले! कहते हैं। चैतन्य का अंश नहीं और वास्तव में उतना ज्ञेय नहीं और वास्तव में उतना ज्ञान नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं, बापू! समझ में आया? ऐसा कि वाणी में भगवान के भाव भरे हैं – ऐसा लिखा है क्या? सेठ! तुम्हारी पुस्तक में ऐसा लिखा है, यह सब अभी प्रकाशित किया है, उसमें है। वाणी में सब भगवान के भाव भरे हैं। वाणी में भाव भरे होंगे भगवान के? भगवान का आत्मा वहाँ जाता होगा जड़ में? परन्तु इन सेठियों को कुछ पता नहीं पड़ता? भान नहीं होता, रुपये दें इसलिए हो हा हो जाता है, जाओ। ऐ शोभालालजी! परन्तु सेठिया को कहे कौन? दस हजार-बीस हजार दे वहाँ तो आहाहा! सेठी! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, गजब बात है, हों! इस श्लोक की तो अन्तिम... अब तो फिर दूसरा ढंग लेंगे। स्याद्वाद की दूसरी पद्धति लेंगे। इस वाणी को दूसरे ढंग से लेंगे। यह तो

इसमें अन्तिम बोल रख दिया है। अभेद करते-करते सब निकालकर अनन्त शक्तियों को- द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को और इन तीन को (ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के भेद को) निकाल दिया। भाई! इसमें तो गजब की बात है। यहाँ कहते हैं, भाई! तेरे ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञ की वाणी ज्ञात हुई, यह सर्वज्ञ हैं और सर्वज्ञ की वाणी समोवसरण में। वह तेरे ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हुआ वह तो तेरे ज्ञानपर्याय की ताकत से ज्ञात हुआ है। उसके कारण नहीं। उस ज्ञेय के कारण नहीं। उस (सर्वज्ञ की) वाणी में कहीं यह ज्ञान की पर्याय उसमें-वाणी में नहीं थी। आहाहा! और वाणी में कहीं भगवान के भाव नहीं आये। भगवान का भाव तो उनके पास रहा। वाणी में तो वाणी का भाव है। स्व-पर को कहने की शक्ति-वाणी की ताकत वाणी का वाणी में भाव है। भगवान का भाव जरा भी इसमें स्पर्श नहीं किया। जैसे मूर्ति में भगवान का भाव जरा भी नहीं, इसी प्रकार वाणी में भगवान का भाव जरा भी नहीं। अरे! गजब की बात है! यह तो अजर प्याला की बात है, सेठ! इसमें कहीं किसी की सिफारिश काम आवे, ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : सिफारिश क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सिफारिश। सिफारिश नहीं चलती तुम्हारे? क्या कहते हैं (तुम्हारी हिन्दी में) ? सिफारिश अर्थात्, इस सेठ को साथ में ले जाये मदद में थोड़ा, ऐसा, क्या कहलाता है असरदार लो न भाई! असरदार.. असरदार भाई! यह सेठ बड़े हैं, इन्हें ले जाओ अपने वहाँ, तब जायेगा। ऐसा करके ले जाते हैं, कन्या का विवाह कर देगा ऐसा इसमें असर किसी का चले - ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है! कहाँ लाकर रखा! परज्ञेय से उठा लिया, अपने ज्ञान की पर्याय में इतना ज्ञात हो, उतना ज्ञेय, वहाँ से उठा लिया। उठ जा वहाँ से। और उतनी ज्ञानपर्याय में उतना सब जाना, तुझसे, हों! तेरी ज्ञानपर्याय से, इतने ज्ञानमात्र तू? उठ जा वहाँ से। आहाहा!

कहते हैं **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय, यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता।** इन सब शक्तियों का पिण्ड मैं ज्ञाता। आहाहा! **ऐसा नामभेद है,..** ऐसे तीन में भी (ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय के) **नामभेद है,**

वस्तुभेद नहीं है। आहाहा! **कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं..** स्वयं **ज्ञेयरूप है, ऐसा जो वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता...** समझ में आया? **वस्तु का भेद नहीं।** यह स्वयं ज्ञायक और स्वयं ज्ञान – ऐसा भी भेद नहीं, ऐसा कहते हैं। (यहाँ) परज्ञेय का ज्ञान, उसकी तो बात है ही नहीं। समझ में आया? मैं एक ज्ञायक और मैं ज्ञेय (यह) कथनमात्र की-व्यवहार की पद्धति है। बाकी तो ज्ञान भी मैं, ज्ञाता भी मैं और ज्ञेय भी मैं, वह का वही एक मैं हूँ। ऐसे स्वभावमात्र की दृष्टि करने को सम्यग्दर्शन और धर्म की उत्पत्ति कहते हैं। आहाहा! भेद निकाल दिया। समझ में आया?

जीव ज्ञायक है, जीव ज्ञेयरूप है। देखो! जीव परज्ञेयरूप है – ऐसा नहीं। स्वयं ज्ञेयरूप है और स्वयं ज्ञायकरूप है। वचन से भेद पड़ो, वस्तु में भेद है नहीं। वचन के भेद, वह वस्तु में भेद नहीं, लो! भावार्थ ऐसा है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं।

विशेष कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्रव्यदृष्टि ही परम कर्त्तव्य है

अनादि काल से चले आये इन महान दुःखों का नाश करने के लिए उनके मूलभूत बीज को अर्थात् मिथ्यात्व को, आत्मस्वरूप की पहिचानरूप सम्यक्त्व के द्वारा नाश करना, यही जीव (आत्मा) का परम कर्त्तव्य है। अनादि संसार में परिभ्रमण करते हुए इस जीव ने दया, दान, व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि सर्व शुभकृत्य अपनी मान्यता के अनुसार अनन्त बार किए हैं और पुण्य करके अनन्त बार स्वर्ग का देव हुआ है, तो भी **संसारपरिभ्रमण टला नहीं, इसका कारण मात्र यही है कि जीव ने अपने आत्मस्वरूप को जाना नहीं, सच्ची दृष्टि प्राप्त की नहीं और सच्ची दृष्टि किए बिना भव का अन्त नहीं आ सकता।** इसलिए आत्मकल्याणर्थ द्रव्यदृष्टि प्राप्त कर, सम्यग्दर्शन प्रगट करना, यही सब जीवों का कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य को स्वलक्ष्यी पुरुषार्थ द्वारा प्रत्येक जीव कर सकता है। इस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से जीव को अवश्यमेव मोक्ष होता है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(श्री समयसार कलश-टीका) अब यह कलश। हमारे प्रसनकुमार सेठी ने माँगा है कि यह श्लोक फिर से लो। कहो, समझे? युवा व्यक्ति को भी यह श्लोक बहुत अच्छा लगा। परसों, परसों चला था न, कल तो (व्याख्यान) बन्द था। यह सुनकर कहता है कि ओहोहो! गजब बहुत सरस न! ए सेठी! तुम्हारे चिरंजीव ने यह दूसरी बार माँगा है।

मुमुक्षु : सबको पसन्द हो - ऐसा होगा न?

पूज्य गुरुदेवश्री : निकले ऐसा सही, कोई वहाँ... यह तो श्लोक भाई ने कहा है कि फिर से पढ़ा जाये तो अच्छा और दूसरे भी कितने नये आये हैं न, देखो! समझ में आया? यह २७१ श्लोक है, २७१।

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१॥

अलौकिक श्लोक है। **भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है..** आत्मा जाननेवाला ज्ञान और परवस्तु ज्ञेय, वही ज्ञेय है और दूसरा ज्ञेय मैं स्वयं अपना ज्ञेय हूँ। ऐसी भ्रान्ति चलती है, कहते हैं, इसका पता नहीं पड़ता मैं जाननेवाला और यह वस्तु (जगत) जाननेयोग्य, ज्ञेय। देखो! वस्तु ऐसा कहते हैं कि ऐसी भ्रान्ति जगत में है कि मैं एक जाननेवाला हूँ और यह छह द्रव्य, मेरे अतिरिक्त चीज़ें - अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, रागादि-द्वेषादि सब परवस्तु, वे सब ज्ञेय और मैं ज्ञान, यह भ्रान्ति है। ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? लो, ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध (के ऊपर) भ्रान्ति (चलती है)। **सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं।** आत्मा जाननेवाला है और मुझसे अन्य पदार्थ वे जाननेयोग्य ज्ञेय हैं। ऐसा जो मानता है, वह तत्त्व से विरुद्ध दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

देखो, **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है—'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' मैं जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** मैं तो चेतना–जाननेमात्र वस्तुस्वरूप मैं हूँ। क्या कहते हैं? कि मेरे अतिरिक्त जो वस्तु परज्ञेय है, अनन्त छह द्रव्य.. वे सब ज्ञेय हैं, वे ज्ञेय हैं और मैं उनका ज्ञायक हूँ – ऐसा नहीं। दूसरे प्रकार से–मेरे अतिरिक्त जो अनन्त शरीर, आत्माएँ, सिद्ध, परमेश्वर, निगोद के जीव जो अनन्त हैं, वे ही मुझमें ज्ञेय हैं, मुझे जाननेयोग्य वह चीज़ है और मैं जाननेवाला हूँ, इतना उसका स्वरूप नहीं है। अभी तो फिर पर्याय में डालेंगे। समझ में आया? ये मेरे अतिरिक्त छह द्रव्य हैं। यह शरीर, कर्म, परमेश्वर, अनन्त निगोद के जीव इत्यादि; परमाणु, स्कन्ध इत्यादि – वे मुझसे हैं, ऐसा तो नहीं और उनसे मैं हूँ – ऐसा तो नहीं। समझ में आया? मैं एक आत्मा हूँ ज्ञानानन्दस्वरूप (हूँ); इसलिए मुझसे वे ज्ञेय हैं – ऐसा तो नहीं और वे ज्ञेय हैं–परमेश्वर हैं, निगोद के जीव हैं, लोकालोक है, छह द्रव्य है; इसलिए मेरे ज्ञान की पर्याय है, इसलिए मेरे ज्ञान की पर्याय है – ऐसा है नहीं। समझ में आया?

अब इतना तो नहीं परन्तु **'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' चेतना सर्वस्व 'सः ज्ञेयः'** इन छह द्रव्यों को, जानने की वर्तमान पर्याय की एक समय की योग्यता आत्मा के ज्ञान के एक समय का जो अंश वर्तमान इन छह द्रव्यों को जानने के योग्य पर्याय, छह द्रव्यों के जानने के योग्य एक समय की मेरी पर्याय, वह ज्ञेय है, वह नहीं – इतना ज्ञेय है, वह भी नहीं। समझ में आया? कहो, यहाँ तो पर का करना और पर से होता है, यह बात तो कहीं बह गयी। मलूकचन्दभाई! ये सब होशियार लोग हों तो सब करते होंगे या नहीं? सेठ ने तो तम्बाकू का बहुत किया है और सब उसमें क्या कहलाता है? साइकिल में? अमरचन्दभाई!

कहते हैं, भगवान! सुन तो सही एक बार! सर्वज्ञ ने देखा हुआ, कहा हुआ और ऐसा है। परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाली ज्ञान है, उस ज्ञान में भगवान ने ऐसा देखा और है कि तेरे अतिरिक्त जितने अनन्त परपदार्थ हैं.. अरे! सर्वज्ञ, केवली अनन्त और वे सब तथा निगोद के जीव अनन्त, अनन्त परमाणु, अनन्त इस शरीर के रजकण, इस शरीर के रजकण और ये स्कन्ध सब या कर्म के स्कन्ध पिण्ड आदि और यह वाणी, मन, ये सब जानने योग्य ज्ञेय, ये सब जानने योग्य ज्ञेय, यही ज्ञेय तेरे लिये हैं – ऐसा नहीं है। प्रसन्नभाई! कहो समझ में आया? इसी प्रकार इस भगवान

आत्मा को ज्ञान की एक समय की पर्याय.. पर्याय अर्थात् भाव, उसमें छह द्रव्य ज्ञात हों, कितनी ताकत! अनन्त केवलियों को एक समय की पर्याय जानने की ताकत है। जीव में अनन्त निगोद और तीन काल-तीन लोक का क्षेत्र का अमापपना है। है.. है.. है.. है.. ऐसा जो क्षेत्र अनन्त आकाश, उसे ज्ञान की एक समय की पर्याय में जानने की ताकत है। समझ में आया? परन्तु फिर भी मेरे ज्ञान की अवस्था में जो ये ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वह तो मैं नहीं, वह ज्ञेय तो मैं नहीं परन्तु वे ज्ञेय मेरी ज्ञानपर्याय में मुझसे ज्ञात होते हैं एक समय में-एक समय का ज्ञेय, उतना भी मैं नहीं। समझ में आया? छह द्रव्य हैं, वह तो मैं नहीं तथा ये छह द्रव्य ज्ञेय हैं, वे मेरे ज्ञान के नहीं और मेरे ज्ञान की पर्याय उस ज्ञेय की नहीं। मेरी ज्ञान की पर्याय अभी वर्तमान, हों! एक समय का ज्ञान का अंश जो वर्तमान प्रगट अंश है, वह अंश ज्ञेय का नहीं है। अनन्त केवलियों का, सिद्धों का नहीं है। निगोद का नहीं है तथा वे ज्ञेय मेरी पर्याय के नहीं हैं। समझ में आया? तत्त्व बहुत सूक्ष्म है। सर्वज्ञ द्वारा कथित स्वभाव, यही वस्तु की स्थिति है परन्तु इसने कभी ऐसा अन्तर में जागृत होकर प्रयत्न नहीं किया।

कहते हैं भगवान! तू कितना है? आहाहा! ये मेरे अतिरिक्त अनन्त जीव, अनन्त पदार्थ—केवली अनन्त... ओहोहो! अनन्त सिद्ध, अरे! एक-एक आत्मा में सर्वज्ञशक्ति आदि से भरपूर एक आत्मा अनन्त गुणवाला, ऐसे अनन्त—सिद्ध से भी अनन्त आत्मायें; उनसे अनन्तगुणे पुद्गल; उससे अनन्तगुणे तीन काल के समय; उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश... समझ में आया? उससे एक-एक द्रव्य के अनन्तगुणे गुण हैं। उन सब गुणों को मेरी ज्ञान की एक समय की पर्याय जानने की ताकतवाली है।

मुमुक्षु : अलौकिक है...

पूज्य गुरुदेवश्री : अलौकिक है। है ऐसा कहते हैं, लो! यह तो भाषा समझ में आती है या नहीं? कहो, समझ में आया?

वस्तु ज्ञान का समुद्र है और ज्ञानस्वरूप वस्तु है। आत्मा अर्थात् ज्ञान के स्वभावस्वरूप। 'ज्ञ' स्वरूप। अब यह पूरी चीज़ अभी एक ओर रखो। अभी वर्तमान प्रगट अंश जो है, ज्ञान का प्रगट अंश, क्षयोपशम है और वर्तमान प्रगट अंश विकास में ज्ञात होता है कि यह है, यह है, यह है, यह है - ऐसा ज्ञात होता है न? वह जाननेवाला जो पर्याय का अंश है, कहते

हैं कि वह अंश छह द्रव्यों-ज्ञेयों का नहीं है तथा वे छह द्रव्य हैं, इसलिए मेरी ज्ञान की पर्याय है – ऐसा नहीं है। तथा उस ज्ञान की पर्याय में अनन्त-अनन्त आत्मा और अनन्त पुद्गल ज्ञात होते हैं; इसलिए ज्ञान की पर्याय इतनी न हो – ऐसा नहीं है। इतना बड़ा है, तो भी उस ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, उसमें जो ज्ञेय ज्ञात होते हैं, वे ज्ञेय तो मैं नहीं, परन्तु वे अनन्त ज्ञेय मेरी ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, उतना भी मैं ज्ञेय नहीं। वे ज्ञेय तो नहीं – छह द्रव्य तो ज्ञेय नहीं, परन्तु छह द्रव्य मेरी पर्याय में अनन्त केवली, अनन्त परमाणु, अनन्त आत्मा सर्वज्ञ शक्तिवाले-अनन्त शक्तिवाले पर्याय में ज्ञात हो, इससे वह पर्याय बड़ी है और जोरदार है, इसलिए वहाँ ज्ञेय पूरा हो गया, इसलिए ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय वहाँ पूरा हो गया? कि नहीं; उतना ही मैं ज्ञेय नहीं। स्वरूपचन्दभाई! क्योंकि ऐसा जो ज्ञेय, ज्ञान का जो अंश है – ऐसे अनन्त अंश का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण है। समझ में आया? जो एक अंश प्रगट है, ऐसे सादि-अनन्त- सादि-अनन्त अनन्त.. अनन्त.. अंश, उनका पिण्ड तो एक आत्मा का ज्ञानगुण है। इसलिए ज्ञान का जो अंश है, उतना मैं ज्ञेय नहीं हूँ। समझ में आया? यह तो अलौकिक बात है, भाई!

इसने आत्मा क्या चीज है, उसकी महत्ता और माहात्म्य अन्दर से कभी किया नहीं। यह करूँ और यह करूँ और यह करूँ.. करे क्या बापू! सुन न! यहाँ यह तो कहते हैं, जगत की सब चीज़ें.. अरे! दया, दान, व्रत, आदि के विकल्प ज्ञेय हैं, इसलिए यहाँ ज्ञान की पर्याय है – ऐसा नहीं है। ज्ञान की पर्याय है, इसलिए ये राग-द्वेष हैं – ऐसा भी नहीं है।

अब इन सबको जानती है ज्ञान की पर्याय; इसलिए सब हैं, इस कारण उनकी ताकत से यहाँ जानती है – ऐसा नहीं है, अपनी पर्याय से जानती है परन्तु वह अपनी पर्याय का अंश जो है, उतना ही मेरा ज्ञेय है – ऐसा नहीं है। मुझे ज्ञात होने योग्य इतना ही अंश ज्ञेय है – ऐसा नहीं है क्योंकि उस समय का अंश है, ऐसे अनन्त अंशों का पिण्ड तो एक ज्ञानगुण है और ऐसे-ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। वह द्रव्य, वह मेरा ज्ञेय है।

मुमुक्षु : वह पकड़ना है..

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पकड़ना है (वह लक्ष्य में लेना है)। वह मार्ग तो यह है। वस्तुस्थिति यह है। यह कहीं किसी की की हुई है या हमारी तुम्हारी ऐसी है? वीतराग

भगवान ने जैसा देखा, वैसा कहा और कहा वैसा है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कहते हैं '**सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ...** क्या कहा? पर अनन्त ज्ञेय, उनरूप मैं नहीं। अनन्त ज्ञेयों को जानने की एक समय की पर्याय, उतना मैं नहीं, तब **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ..** सम्पूर्ण चेतना का पूरा रूप जो है त्रिकाल, वह मैं हूँ, वह मैं ज्ञेय हूँ। कभी सुना नहीं होगा वहाँ! वहाँ कहाँ था? आहाहा! **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** आहाहा! ज्ञात होने योग्य इतना मैं चेतना सर्वस्व वस्तु। चेतना सर्वस्व वस्तु! उसमें सब गुण स्वरूप पूरा आ गया। चेतना सर्वस्व वस्तु.. वस्तु.. वस्तु.. वह मैं ज्ञेय हूँ। वह मैं ज्ञेय हूँ। इतना मैं ज्ञेय हूँ। रतिभाई! वफम जैसा है, वहाँ उस दुकान में व्यापार करे, कैसी धमाधम चलती है झूठी। ऐई.. भाई! होशियार वहाँ दिखती हैं, यहाँ वफम हो जाता है। वहाँ भी होशियारी काम नहीं करती, व्यर्थ का अभिमान करता है। वहाँ धूल में भी काम नहीं करती, उसे अभिमान में काम आती है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा वस्तु है, उसका एक ज्ञानगुण है। जैसे शक्कर वस्तु है, उसका मिठास गुण है (और) उसकी वर्तमान अवस्था मिठास की है। उसी प्रकार मैं आत्मा हूँ, उसका ज्ञान गुण है, उसकी वर्तमान अवस्था है एक अंश। वह अंश है, उतना ज्ञेय हूँ - ऐसा नहीं है। पूरी शक्कर रह जाती है, कहते हैं। आत्मा चेतना सर्वस्व पूर्ण चेतना सर्वस्व.. उसमें-पंचाध्यायी में आया नहीं। 'उतरा हुआ है' ऐसी भाषा आती है न भाई! चेतना सर्वस्व 'चेतना उतरी हुई है' ऐसा पाठ आता है। आत्मा में चेतना उतरी हुई है, पूरा उपयोग उतरा हुआ है। उतरा हुआ अर्थात्? चैतन्यस्वरूप ही है, ऐसा। आहाहा! शास्त्र की भाषा भी भिन्न-भिन्न करके भारी केवलज्ञान उतारा है। इसी प्रकार आत्मा में चेतना उतरी हुई है। उतरी हुई अर्थात् उत्कीर्ण है। आत्मा चेतनास्वरूप ही है, वह चेतनास्वरूप जो आत्मा है, वह मैं ज्ञेय-मेरे जाननेयोग्य चीज़ हो तो वह चीज़ है। समझ में आया? आहाहा!

अब यहाँ तो दुनिया के थोड़े एल.एल.बी. और एम.ए. की डिग्रियाँ लगे, वहाँ थोड़ा बहुत हो जाये वह क्या कहलाता है मास्टर-वास्टर कहलाता है न?

श्रोता : ग्रेजुएट...

पूज्य गुरुदेवश्री : ग्रेजुएट नहीं, वह बड़ा पढ़ा हुआ वह...

श्रोता : पीएच-डी. प्रोफेसर।

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर, उसका बड़ा कहलाता है न तुम्हारे ? तेरी वह ज्ञान की पर्याय तो – अज्ञान तो कहीं गया। समझे ? वह अज्ञान की पर्याय, हों! परन्तु उस पर्याय में इतना सब छह द्रव्य ज्ञात हो, वह पर्याय अंश है। अंश है, वह ज्ञेय नहीं। वह मेरे जाननेयोग्य का पूरा ज्ञेय नहीं, वह तो अपूर्ण ज्ञेय है। आहाहा! जिसमें यह विद्या तो कहाँ.. परन्तु जिसमें छह द्रव्यों को अनन्त केवली जिस ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो, वह पर्याय भी मेरा पूरा ज्ञेय नहीं। वह तो पर्याय का–अंशरूप ज्ञेय है, मेरा पूरा ज्ञेय चेतन सर्वस्व पूर्ण ज्ञायकमात्र चेतनस्वभाव वह मेरा ज्ञेय है, मुझे जाननेयोग्य हो तो वह चीज़ है। अंश जितनी जाननेयोग्य चीज़ है नहीं। कहो, समझ में आया ?

तब कहते हैं **वह मैं ज्ञेयरूप हूँ... 'सः ज्ञेयः'** है न ? **'न एव' परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र** वह ज्ञेय नहीं। पहले ज्ञेय छह द्रव्य को निकाल दिया। भावार्थ में पहले समुच्चय में। है न, भिन्न छह द्रव्य ज्ञेय है–ऐसा नहीं। **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।** छह द्रव्य ज्ञेय है – ऐसा तो नहीं, वह तो पहले निकाल दिया। अब, ये छह द्रव्य जो अनन्त हैं, उन्हें जाननेवाली ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञेय नहीं। इतने 'जाननेमात्र' का अंश वह ज्ञेय उतना नहीं। आहाहा! यह अलग प्रकार की बात है, हों! कभी वहाँ गज का आँक भी सूझे ऐसा नहीं है, वहाँ पढ़े तो भी। घर में है पुस्तक तो होगी घर में, यह लिया है या नहीं, क्या कहलाता है यह। कलश–टीका। ली है या नहीं ली, जवाब नहीं इसका। ली हो वह पता भी न हो, यह ऊँची पुस्तकें, अभी तो बहुत प्रचलित हो गयी हैं, बहुत कलश–टीका। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं **'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र** भाव, उतना भी ज्ञेय मैं नहीं। ओहोहो! यह क्या कहते हैं यह ? आहाहा! मैं तो केवलज्ञान का भिखारी हूँ, कहते हैं। केवलज्ञान का माँगनेवाला हूँ और केवलज्ञान की माँग भी पूर्ण द्रव्य के आश्रय से मिले ऐसी है। आहाहा! कहो समझ में आया ? केवलज्ञान की उत्पत्ति है न, उत्पत्ति, इस अपेक्षा से उसकी भावना, परन्तु उसकी उत्पत्ति होगी कहाँ से ? वह ज्ञेयमात्र चैतन्यस्वरूप पूर्ण हूँ, उसके अवलम्बन से केवलज्ञान होता है। समझ में आया ? अपना पूर्ण स्वरूप को ज्ञेय बनाने से एक समय का केवलज्ञान, तीन काल को जाने

ऐसा ज्ञेय एक समय की पर्याय में से प्रगट होता है। आहाहा! जो ज्ञेय वस्तुस्वरूप अखण्ड, वह केवलज्ञान के अंशमात्र भी जो ज्ञेय नहीं। क्या कहा? श्रुत के-ज्ञान की पर्याय के अंशमात्र वह ज्ञेय नहीं, उतना ज्ञेय नहीं, परन्तु केवलज्ञान की पर्याय जो है, उतना भी मेरा ज्ञेय नहीं, ले! आहाहा! वह केवलज्ञान भी एक समय का तीन काल-तीन लोक को प्रत्यक्ष जानता है। यहाँ मति-श्रुतज्ञान परोक्ष जानता है परन्तु उतना भी मैं ज्ञेय नहीं। एकरूप चैतन्यस्वरूप त्रिकाली ज्ञायकमात्र, जिसमें ऐसे अंश अनन्त पड़े हैं - केवलज्ञान के अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्तगुने.. अनन्तगुने.. अनन्तगुने.. अंश पड़े हैं - ऐसा पूरा ज्ञानमात्र और ज्ञानमात्र शब्द से पूरा द्रव्य.. पूरा द्रव्य। समझ में आया? आहाहा!

ऐसे अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह के जानपनेमात्र भी ज्ञेय मैं नहीं हूँ। ऐसा परन्तु उतना ज्ञेय नहीं। भाई! धीरे-धीरे तो आता है। एक भाई कहते थे, कहाँ गये? कि मैं विचारता हूँ परन्तु अन्दर बैठता नहीं। पालनपुरवाले मणिभाई, मणिभाई है या नहीं? गये? (मणिभाई-जी) हाँ ठीक है। ये कहते हैं कि मैं मेहनत तो करता हूँ परन्तु पकड़ में नहीं आता। दूसरी बार आया, यह दूसरी बार (आता है) दो-दो बार आता है, तब तो पकड़ में आता है या नहीं? परन्तु बात ये है कि जीव ने दरकार ही नहीं की है। बाहर यह करूँ और यह छोड़ूँ, और दया, व्रत, भक्ति और पूजा और धूल-धाणी.. परन्तु वास्तविक ज्ञानानन्दमूर्ति हूँ, वह तो जाननेवाला है, करना-फरना उसमें था कब? समझ में आया? ऐसा सर्वज्ञस्वभाव आत्मा है - ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञस्वभाव अर्थात्? एक समय की पर्याय सर्वज्ञ - ऐसा नहीं। ऐसे सब अंश त्रिकाल और ऐसे सब गुणों का पिण्ड - ऐसा मैं पूरा आत्मा वह मेरा ज्ञेय है। वह मैं ज्ञेय हूँ। उतना मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! सेठ! इसमें कुछ भाषा बहुत कठिन नहीं है, हों! न समझ में आये ऐसा मस्तिष्क में नहीं करना। न समझ में आये ऐसा करने जाये तो यह इसे समझने नहीं देगा। यह न्याय से तो कहा जाता है परन्तु अब इसे पकड़ना तो स्वयं को है न, या कोई पकड़ा दे ऐसा है?

कहते हैं मैं ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। कितना कि चेतना सर्वस्व जितना पूरा, **परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ।** कि **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र। ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ।** आहाहा! और ज्ञात होनेयोग्य प्रमेय तो पूरा द्रव्य है, कहते हैं। ऐसा कहते हैं देखो, समझ में आया? और इस द्रव्य को जान, तब तुझे सम्यग्दर्शन होगा क्योंकि इतना

ज्ञेय है, उतना जब प्रतीति में आवे, तब सच्ची प्रतीति हुई कही जाती है। समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक, समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' 'ज्ञान'... अर्थात् **जानपनारूप शक्ति...** त्रिकाल; ज्ञान-जापनामात्र शक्ति त्रिकाल। **'ज्ञेय' जानने योग्य शक्ति...** यह भी त्रिकाल, जाननेयोग्य शक्ति त्रिकाल। जाननेयोग्य द्रव्य त्रिकाल। यहाँ दो शक्ति ली है, वह ज्ञान और ज्ञेय - ऐसा लिया है। एक-एक शक्ति **'ज्ञातृ'** ज्ञाता **अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र..** ऐसा लिया है। ज्ञान, जाननेयोग्य एक शक्ति पूर्ण। समझ में आया? ज्ञेय ज्ञात होने योग्य शक्ति पूर्ण, एक-एक शक्ति ली है परन्तु ज्ञाता, सब पूरा पिण्ड, वह ज्ञाता। कहते हैं ज्ञाता, **अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र - ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है..** ये तीन भेद कहनेमात्र हैं, बाकी मेरा स्वरूप एकरूप **ऐसा ज्ञेयरूप..** है। ज्ञान, वह मैं; ज्ञेय, वह मैं और ज्ञाता, वह मैं। मैं सब एक का एक हूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

यह पर को जानने का ज्ञेय, वह तो नहीं; पर ज्ञात होता है, इतना ज्ञान का अंश, उतना तो ज्ञेय नहीं, परन्तु मैं अखण्ड ज्ञेय, मैं अखण्ड ज्ञान और मैं अखण्ड ज्ञाता - ऐसा तीन भेद भी मुझमें नहीं हैं। मैं तो हूँ वह का वह हूँ। जाननेयोग्य, वह भी मैं और जाननेवाला, वह भी मैं तथा ज्ञाता भी मैं। आहाहा! **ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूपमात्र है...** ये तीन भेद होकर पूरा स्वरूप है - ऐसा कहते हैं। **ऐसा ज्ञेयरूप हूँ...**

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,... लो! **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** ज्ञान क्यों? कि ज्ञात होनेयोग्य और जाननेवाला मैं, ऐसा जानूँ, इसलिए ज्ञान। ज्ञात होनेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं, इसलिए ज्ञान। समझ में आया? कहते हैं, आहाहा! लोग वे-पुराने सुननेवालों को भी ऐसा लगता है कि क्या है यह सब, नया है। नया नहीं परन्तु इसकी चीज़ है। ऐसी भी इसने उस चीज़ को कितनी और कैसी है - ऐसा सुना नहीं इसलिए इसे ऐसा लगता है कि यह क्या है? क्या कहते हैं, परन्तु मुझे धर्म करना, उसमें ऐसी बात रखकर क्या काम है तुम्हारे? परन्तु तुझे धर्म करना हो तो धर्मी ऐसा धर्म करनेवाला कितना है, वह दृष्टि में न ले तो धर्म नहीं होगा - ऐसा कहते हैं। धर्म करनेवाला धर्मी कितना है? वह ज्ञेय कितना है, ज्ञान कितना है और ज्ञाता कितना है?

– इसके भान बिना धर्म तीन काल में कहीं नहीं होता। ए, निहालभाई! इसमें कहाँ 'वडाल' में उपाश्रय में सुनने मिले ऐसा है ?

मुमुक्षु : निहालभाई वहाँ से तो भाग आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग आये। आहाहा! परन्तु क्या कहते हैं ? अरे! पूरा समुद्र डोलता है न, प्रभु तेरे पास! कहते हैं।

वह ज्ञानमात्र भी तू अकेला अखण्ड, हों! ज्ञेयमात्र भी तू और ज्ञाता भी तू। तीन वचन के भेद हैं, वस्तु में भेद नहीं। कहा न—

करता परिणामी दरव करम रूप परिणाम;
किरिया पर जय की फिरनि वस्तु एक त्रय नाम।

(समयसार नाटक, कर्ताकर्म क्रिया द्वार - काव्य 7)

कर्ता आत्मा; उसका परिणाम, वह कार्य; पर्याय बदले वह उसकी क्रिया परन्तु वस्तु तो एक की एक ही है। इसी प्रकार यहाँ जाननेयोग्य, वह मैं; जाननेवाला, वह मैं; ज्ञाता, वह मैं। समझ में आया ? आहाहा! दृष्टि पर्याय से छुड़ाकर द्रव्य पर कराना चाहते हैं। पर्याय जितना आत्मा नहीं है, पर्याय जितना ज्ञेय नहीं है, पर्याय जितना ज्ञान नहीं है और पर्याय जितना ज्ञाता नहीं है। भाई! क्या कहा ? पर जितना तो नहीं परन्तु इसकी एक समय की पर्याय जितना ज्ञेय नहीं; पर्याय जितना ज्ञान नहीं और पर्याय जितना ज्ञाता नहीं। समझ में आया ? पर्याय जितना ज्ञेय नहीं, पर्याय जितना ज्ञान नहीं, पर्याय जितना ज्ञाता नहीं। कहो, देवानुप्रिया! हमारे वकील हैं न, वे होशियार हैं। कहो समझ में आया ? आहाहा! लॉजिक-न्याय से तो बात कहते हैं इसमें, परन्तु कभी नजर के आँगन में आया नहीं और आँगन में... छवबा दिया नहीं इसे। बाहर का बाहर भटकता रहता है। ऐसा और ऐसा। ऐसा और वैसा! आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा 'प्रभु तेरे पास, प्रभु नहीं बेगला' (अर्थात्) तुझसे भिन्न-पृथक् नहीं है। आहाहा! जाननेयोग्य तो भी मैं – जाननेवाला तो भी मैं ऐसा कहा न, देखो न! **मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान,..** मेरा नाम ज्ञान। **यतः मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,..** मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** ऐसे तीन नाम पड़े हैं, कहते हैं। वस्तु में भेद नहीं है। **ऐसी दो शक्तियों से लेकर**

अनन्त शक्तिरूप हूँ,.. अनन्त शक्तिरूप हूँ। अनन्त शक्तिरूप-अनन्त शक्तिस्वरूप हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं है।** आहाहा! है ? तू वहाँ जो है, वह तू है, ज्ञेय भी पूरा तेरा, ज्ञान भी पूरा तेरा और ज्ञाता भी पूरा तेरा। वहाँ दृष्टि करनेयोग्य है। पर्यायदृष्टि छोड़कर, निमित्तदृष्टि छोड़कर, भेददृष्टि छोड़कर, ज्ञेय की भी निमित्तदृष्टि छोड़कर, पर्यायदृष्टि छोड़कर, ज्ञेय पूर्ण है, वहाँ दृष्टि करने योग्य है। ज्ञान में भी पर से ज्ञान होगा - ऐसा छोड़कर एक अंशमात्र ज्ञान, वह पूरा ज्ञान है - ऐसा छोड़कर और त्रिकाल ज्ञान है - ऐसी दृष्टि करनेयोग्य है। ज्ञाता भी पर के कारण है - ऐसा छोड़कर.. अंशमात्र है - ऐसा छोड़कर, त्रिकाल ज्ञाता है - ऐसी दृष्टि करनेयोग्य है। कहो, प्रसन्नभाई! भाई! यह तो प्रसन्नभाई ने फिर से पढ़ाया है। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा!

इसमें दया, दान, व्रत के विकल्पों का कर्ता तो कहीं रह गया। यह है ही नहीं परन्तु इन दया, दान के विकल्प का ज्ञाता, ज्ञान की पर्याय में वे ज्ञात हों, उतना ज्ञान है, वह राग है, इसलिए ज्ञान की पर्याय है - ऐसा भी नहीं और यह जानता है ज्ञान की पर्याय उसे अपने और पर को, इसलिए एक समय की पर्याय, उतना भी ज्ञेय नहीं है। उतना भी ज्ञेय नहीं है, उतना ज्ञान भी नहीं है, उतना ज्ञाता भी नहीं है। आहाहा! तीनों की पर्यायदृष्टि उठाकर, अन्तर्दृष्टि करने का यह विषय है। आहा! बहुत गजब बात है। ऐसी बात कहीं अन्यत्र कहीं हो नहीं सकती। दिगम्बर सन्त-मुनियों ने वास्तविक तत्त्व को प्रसिद्ध करके जगत के समीप प्रसिद्ध करके रखते हैं। आहाहा! वाड़ा वालों को पता नहीं होता, सम्प्रदाय में पड़े हों, उन्हें। यह तो... सन्तों ने दी हुई प्रसादी है। आहाहा! महामुनि दिगम्बर सन्त वनवासी, वन के बाघ (सिंहवृत्ति युक्त) स्वरूप में रहकर राग को थाप मारकर तोड़ देनेवाले, वीतराग-विज्ञान को प्रगट करके ऐसी शैली में किस प्रकार से, किस पद्धति से आत्मा को ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञातारूप से लाकर रखा है! आहाहा! समझ में आया ? कहते हैं, तुझे करना हो तो यह करना है। कहो, सेठ!

कैसा हूँ ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं, जीव ज्ञेयरूप है.. एक ही एक के दो भाग, ऐसा भी नहीं, कहते हैं। वह तो वचनमात्र कहनेमात्र है। भाषा तो देखो! कहते हैं, परज्ञेय है, वह तो गया। यह परज्ञेय को एक समय की पर्याय का ज्ञेय, वह तो गया। अब जीव ज्ञेय और जीव ज्ञायक, जीव ज्ञेय और जीव ज्ञायक, करो भेद पाड़ो विकल्प

उठेगा। अन्दर भेद है नहीं। समझ में आया? आहाहा! दुनिया के समीप सत्य को प्रसिद्ध करने की-रखने की कला, इन सन्तों की यह बात है। ये सन्त (दिगम्बर) नग्न मुनि 'नागा बादशाह से आघा' उन्होंने यह बात जगत के समीप प्रसिद्ध की और रखी है। समझ में आया? गजब की शैली!

जीव ज्ञायक है और जीव ज्ञेयरूप है। सेठी! ये भेद भी नहीं हैं कहते हैं। ले, ठीक! परज्ञेय है वह नहीं, एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाने, इतना भी ज्ञेय नहीं; जीव पूरा ज्ञेय और पूरा ज्ञायक (-ऐसा) भेद नहीं। आहाहा! ऐसी ज्ञायक शक्ति का तत्त्व पूरा भगवान ज्ञेयरूप और ज्ञानरूप और ज्ञायक, बस यही दृष्टि करनेयोग्य अभेद वस्तु है। अभेद में भेद नहीं। यह जीव है, वह ज्ञेय और वह जीव, फिर ज्ञायक - ऐसा भी जहाँ दृष्टि के विषय में वस्तु का भेद नहीं पड़ता। कहो, समझ में आया?

ऐसा जो वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता हूँ। क्या कहते हैं? यह जीव ज्ञेय है और यह जीव ज्ञायक है-ऐसे व्यवहार के वचनों से भेद भले हो; वस्तु में भेद है नहीं। ओहोहो! भगवान केवलज्ञानी मेरे ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य परमेश्वर.. आता है न!

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जायत्तेहिं।
(सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥)

(प्रवचनसार गाथा-८०)

जो प्रवचनसार में ऐसा आता है कि अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, यह ज्ञेयरूप है - ऐसा जाने तो उसे आत्मा ज्ञात होता है और मोह का नाश होता है। यहाँ तो कहते हैं कि अरिहन्त के जितना ज्ञेय मैं नहीं और उन्हें जानने की मेरी पर्याय, उतना भी मैं नहीं। वह उड़ाते हैं अन्दर में। वहाँ ऐसा कहा है कि अन्दर में तू झुक जा। वहाँ ऐसा कहा है। समझ में आया? इतने अरिहन्त सर्वज्ञ हैं, वे तो एक में सब आ गये। ऐसा पर्याय निर्णय करे, तब वह पर्याय फिर अन्तर में झुके तो यह द्रव्य भी ज्ञेय पूर्ण है, ज्ञान पूर्ण स्वभाव पूर्ण है - ऐसा गुण-गुणी का भेद और पर्याय-पर्यायवान का भेद निकालकर और अभेद पर दृष्टि करे तो इसे मोह का नाश होकर क्षायिक समकित होता है। तब केवलज्ञान लेने का पक्का बीज पकता है। आहाहा! समझ में आया?

(कहते हैं) **भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है।** राजमलजी ने भी टीका की है न, 'पाण्डे राजमल्ल जिनधर्मी, समयसार नाटक के मर्मी' लो, यह श्लोक हुआ, फिर से लिया तो लो न, इन लोगों को सुनने को मिला है न? बोटादवाले, यह क्या है यह? नया-नया लगता है, जब आवें तब ऐसा कहते हैं। यह सब नया क्या है। नया नहीं बापू! तेरी जाति की बात है, भगवान ने कही हुई है परन्तु इसे सुनने को मिलती नहीं इसलिए इसे लगता है कि यह क्या? यह फिर किस प्रकार की बात? ओहो! आहा!

मेरे अतिरिक्त के अनन्त ज्ञेय वे मेरा कार्य है, मेरे कारण है, यह तो नहीं परन्तु उनके कारण मैं हूँ, यह भी नहीं परन्तु वे मेरा ज्ञान उन्हें जानता है; इसलिए इतनी पर्याय जितना मैं हूँ, यह नहीं और वह पर्याय जानती है, वह ज्ञेय है; इसलिए जानती है - ऐसा भी नहीं और वह पर्याय स्वयं से स्वतन्त्र अंश से जानती है, उतना भी ज्ञेय नहीं; मैं तो त्रिकाल ज्ञायकमात्र जीव हूँ, वह ज्ञेय हूँ। आहाहा! समझ में आया? इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती, हों!

मुमुक्षु : पुनरुक्ति तो करनेयोग्य है...!

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! लो, यह श्लोक हुआ, २७१।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

संसार का मूल

आत्मा के स्वभाव का मार्ग सरल होने पर भी समझमें क्यों नहीं आता? इसका कारण यह है कि अज्ञानी को अनादि काल से आत्मा और राग के एकत्व का व्यामोह, भ्रम है, पागलपन है। जिसे अन्तरङ्ग में रागरहित स्वभाव की दृष्टि का बल प्राप्त है, वह आत्मानुभव की यथार्थ प्रतीति के कारण एक-दो भव में मोक्ष जाएगा और जिसे आत्मा की सच्ची प्रतीति नहीं है, ऐसा अज्ञानी छह-छह महीने का तप करके मर जाए तो भी आत्मप्रतीति के बिना उसका एक भी भव कम नहीं होगा, क्योंकि उसे आत्मा और राग के एकत्व का व्यामोह है और वह व्यामोह ही संसार का मूल है।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१ ॥

भावार्थ इस प्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है.. सूक्ष्म विषय है ! कोई कहे कि ज्ञेय पर है और मैं जाननेवाला हूँ, ऐसा भी नहीं। आहाहा ! मैं पर का कर्ता तो नहीं, पर से मुझमें कुछ होता तो नहीं परन्तु मैं पर का जाननेवाला हूँ और मैं जाननेवाला तथा पर ज्ञात होता है, यह भी भेद वस्तु में विकल्प उठता है। ऐसी वस्तु वह नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? भ्रान्ति ? ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के विषय में बहुत भ्रान्ति चलती है। **सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक,...** भगवान आत्मा जाननेवाला है और **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य (ज्ञेय है)**। भगवान ने देखे हैं - अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, आकाश ये छह द्रव्य भगवान ने देखे तो ये छह द्रव्य ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा नहीं है। आहाहा ! सूक्ष्म बात है, भाई ! तत्त्व की दृष्टि की-सम्यग्दर्शन का विषय, जो धर्म की पहली दशा है, उसमें ज्ञेय पर और जाननेवाला मैं - ऐसा भेद भी सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं है। आहाहा ! समझ में आया ? कहाँ से कहाँ लाकर रखते हैं।

मैं परवस्तु की (पर जीव की) दया पाल सकता हूँ या रख सकता हूँ या प्राप्त कर सकता हूँ, वह तो वस्तु में है नहीं। पोपटभाई ! यह सब पैसे इकट्ठे किये हैं न ? अज्ञानी का भ्रम है, कहते हैं। आत्मा चैतन्यमूर्ति भगवान, सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिस प्रकार है, उस प्रकार देखा है और उस प्रकार कहा है कि आत्मा परवस्तु की (पर जीव की) दया पाल सके या पर की हिंसा कर सके, यह वस्तु में नहीं है। समझ में आया ? इसी प्रकार पैसा प्राप्त कर सके, पैसा आवे तो रख सके और उनका सदुपयोग कर सके - ऐसा आत्मा में नहीं है। वह तो नहीं, परन्तु ज्ञान में जो चीज़ ज्ञात होती है, जाननेवाला मैं और ज्ञात हो वह—यह

भी वस्तुस्वरूप नहीं है। इस पर प्रकाश में अन्दर ही अन्दर में ज्ञान के अतिरिक्त दूसरे को प्रकाशित करे, वह परप्रकाशक (है)। सूक्ष्म बात है। अन्तिम श्लोक है न!

जीव वस्तु ज्ञायक और यह शरीर पुद्गल ऐसा कहा न? पैसा, शरीर, मकान, आदि धूल धमाल यह तुम्हारे बंगले, मकान ये सब मुझसे भिन्नरूप छह द्रव्य मेरे ज्ञेय है, वह मुझे जाननेयोग्य चीज़ है – ऐसा नहीं है। आहाहा! ज्ञान में देव, गुरु और शास्त्र वे ज्ञेय – परज्ञेय हैं तो वे परज्ञेय हैं, उनका मैं जाननेवाला और वे जाननेयोग्य ज्ञेय – ऐसा नहीं है वस्तु में। छह द्रव्य ज्ञेय हैं – छह द्रव्य में सिद्ध आ गये, देव-गुरु आ गये, शास्त्र भी आ गये। वे ज्ञेय अर्थात् ज्ञान में ज्ञात होने योग्य है.. आहाहा! और मैं जाननेवाला हूँ – ऐसा भेद भी वस्तु के स्वरूप में नहीं है। समझ में आया?

सो ऐसा तो नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा जाननेवाला और आत्मा से भिन्न छह द्रव्य, वे मुझे जाननेयोग्य हैं और मैं उनका जाननेवाला हूँ – ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है..** ऐसा तो नहीं कि मैं जाननेवाला और छह द्रव्य मुझे जाननेयोग्य, ऐसा नहीं। आहाहा! तो यह स्त्री-पुत्र और पैसा कहते हैं कि जाननेयोग्य ज्ञान में और मैं उनका जाननेवाला, तथा ये जाननेयोग्य ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने जो आत्मा का स्वभाव देखा तो वह तो स्वयं ज्ञेय अपने में जाननेयोग्य, स्वयं ज्ञान और स्वयं ज्ञाता, ये तीन भेद वस्तुस्वरूप में तो हैं नहीं, तीन भेद भी नहीं परन्तु दूसरों से भिन्न करने को इस प्रकार से कहने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अनन्त काल में तत्त्व रह गया। इसने दया, दान, व्रत, भक्ति और पूजा ऐसा तो अनन्त बार किया, व्रतादि अनन्त बार पालन किये, वह सब शुभराग था। आहाहा! महीने-महीने के उपवास अनन्त बार किये, वह तो राग की क्रिया-शुभराग की क्रिया है। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि वह राग ज्ञेय,.. वह राग मेरा, यह तो स्वरूप नहीं परन्तु राग मुझे जाननेयोग्य और मैं जाननेवाला-ऐसा भी नहीं कहते हैं। आहाहा! राग की मन्दता के भाव में, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आवे, दया, दान के भाव हों, वह सब शुभभाव / राग, वह राग ज्ञेय है और मैं ज्ञाता हूँ – ऐसा नहीं है। आहाहा! गजब बात है न! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। सूक्ष्म बात, भाई! सम्यग्दर्शन, वीतराग

तीर्थंकरदेव जो कहते हैं, वह बात बहुत अलौकिक बात जगत को (समझने से) रह गयी। बाहर में (धर्म) मानकर बैठे हैं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा अरिहन्तदेव जैसा फरमाते हैं, वैसा सन्त जगत को प्रसिद्ध करते हैं! प्रभु! तू आत्मा है। आहाहा! और वह तू जाननेवाला-ज्ञायकस्वभावी है। उस ज्ञायकस्वभाव में पर आत्मा और पर रजकणों की क्रिया कर सके, यह तो वस्तु में है नहीं। आहाहा! जो राग की क्रिया करे, वह भी वस्तु में नहीं है। आहाहा! पर की दया पालने की क्रिया तो कर नहीं सकता परन्तु वह पर की दया का जो भाव आता है, वह कर सकता है, यह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा! यह तो नहीं; चैतन्यबिम्ब प्रभु सर्वज्ञस्वभावी आत्मा जानने का काम करे, तो कहते हैं किसका? इस पर का? राग का? आहाहा! ऐसा नहीं है। राग, ज्ञेय और आत्मा, जाननेवाला - ऐसा पर के साथ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : राग, वह पर? सब पर?

पूज्य गुरुदेवश्री : मार्ग सूक्ष्म है, भाई! अभी चलता है वीतराग के नाम से, वीतराग के बहाने, वीतराग के नाम से, वीतराग के बहाने। आहाहा! भभूतमलजी! आहाहा!

तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव सर्वज्ञ पद को प्राप्त हुए, उनकी वाणी-दिव्यध्वनि खिरी। उस दिव्यध्वनि में से परमागमों की रचना हुई, उन परमागमों में वस्तु का स्वरूप कैसा है, वैसा उसमें बतलाया कि भाई! तू एक ज्ञायकस्वरूपी चैतन्य है न! और वह भी जाननेयोग्य वस्तु का तू जाननेवाला है, यह बात सत्य है परन्तु कौन जाननेयोग्य वस्तु? समझ में आया? तू जाननहार वस्तु है, चैतन्य ज्ञायकस्वभाव से भरपूर पदार्थ है। उस जाननेयोग्य को जाने, वह बात योग्य है परन्तु किसे? जाननेयोग्य कौन? कि राग और पर जाननेयोग्य / ज्ञेय और मैं ज्ञान - ऐसा नहीं है। आहाहा!

'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' मैं जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ... चेतना सर्वस्व, जानना और देखना - ऐसा सर्वस्व अपना स्वरूप। जानना और देखना जो सर्वस्व अपना। सर्वस्व अर्थात् वस्तु। **ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ...** ऐसी चीज़ मैं हूँ! **'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ...** आहाहा! मैं स्वयं ही चेतनासर्वस्व - ऐसी वस्तु हूँ, उसे जाननेयोग्य मैं हूँ, उसे जाननेयोग्य मैं हूँ। वीतराग की बातें सूक्ष्म हैं। आहाहा!

अभी तो बाहर में विवाद (चलता है कि) यह व्यवहार करे तो निश्चय होता है और राग, दया, दान, भक्ति यह शुभभाव हो तो फिर इसमें से (ऐसा करते-करते) धर्म होता है, यह तो बहुत दूर रह गया। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान ज्ञेयस्वरूप को ज्ञातारूप से जाने, परन्तु वह कौन से ज्ञेय को? आहाहा! स्वयं ज्ञेय है न! अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह के जानपनेमात्र वह नहीं। **कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ?** है न अन्दर? **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।** वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! अनन्त केवलियों को ज्ञेयरूप से ज्ञान जाने, ऐसा भी मैं नहीं। समझ में आया? अनन्त-अनन्त केवली, सिद्ध बिराजमान हैं, तीर्थंकर बिराजमान हैं, तीन लोक के तीर्थंकर और केवली ज्ञान में ज्ञात होते हैं, वह ज्ञेय है, और मैं जाननेवाला हूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत अलौकिक है। आहाहा! **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ 'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ...** चेतनास्वरूप सर्वस्व भगवान आत्मा, वह मैं ज्ञेय हूँ। समझ में आया? धीरे-धीरे तो बात चलती है, भाई! यह तो अलौकिक बातें हैं! आहाहा! कितनों ने तो कभी सुना भी नहीं होगा। वीतराग क्या और वीतराग का मार्ग क्या और वीतराग का पंथ क्या है? आहाहा!

यह तो यात्रा करो, भक्ति करो, पाँच-दस लाख खर्चो, तुम्हें धर्म का भाव होगा। यहाँ तो कहते हैं प्रभु! एक बार सुन! भाई! अनन्त काल में तूने तेरे तत्त्व को, पर से भिन्न है, उस प्रकार से तूने जाना नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि सर्वस्व चेतनामात्र मैं, वह सर्वस्व मैं, वह ज्ञेय। समझ में आया? आहाहा! और उसे कितने धीरे से देखना पड़ता है। आहाहा! पर को ज्ञेय बनायी हुई चीज़ को छोड़कर और चेतना सर्वस्व आत्मा को ज्ञेय बनाना.. आहाहा! ऐसी वस्तु है। आहाहा! वीतराग के दरबार में तो यह हुक्म है वीतराग का। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं, मैं सर्वज्ञ अर्थात् पर को ज्ञेयरूप से जानता हूँ, इसलिए सर्वज्ञ हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! मैं तो मेरे सर्वज्ञस्वभाव चेतना सर्वस्व.. चेतना-सर्वस्व कहो या सर्वज्ञस्वभाव कहो, वह मेरा ज्ञेय है और उसे मैं जानता हूँ। आहाहा! वह भी वचन के व्यवहार से भेद पाड़कर कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** क्या? **'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' चेतना सर्वस्व..**

चेतना सर्वस्व वह मैं ज्ञेय हूँ, चेतना सर्वस्व, वह मैं ज्ञेय हूँ। अलौकिक बात है। यह पुस्तक तो रखी है या नहीं घर में? घर में तो होती ही है न! आहाहा!

परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र। वह मैं नहीं हूँ। आहाहा! समझ में आया? ऐसी धर्मकथा कैसी? वीतराग की बात तो ऐसी है, बापू! यह वीतराग की बात इसने सुनी नहीं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, वे गणधरों और इन्द्रों आदि एकावतारी दशा के धारकों को यह बात करते थे! समझ में आया? तू तेरा ज्ञेय है अर्थात्? चेतना सर्वस्व; वह तेरा ज्ञेय है.. आहाहा! चेतना - जानने-देखने का सर्वस्वपना, वही तेरा ज्ञेय है। तू उसका ज्ञेय और तू ही उसका जाननेवाला। आहाहा!

परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः' अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र। आहाहा! एक समय की पर्याय में छह द्रव्यों का ज्ञान, छह द्रव्य के ज्ञान की पर्यायरूप जीव परिणमे। एक समय की पर्याय में छह द्रव्यों को जानने की पर्यायरूप परिणमे, परन्तु उतना ज्ञेय नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी तो अनन्त पर्याय का समुदाय गुण है, ऐसा सर्वस्व चेतना का पूरा पूर्ण स्वरूप है। आहाहा! छह द्रव्य को जाने, वह तो इसकी एक समय की पर्याय का स्वभाव; एक समय की दशा का स्वभाव है। परन्तु इतना ही वह नहीं, क्योंकि तब तो वह इस पर्याय जितना हो गया। परन्तु सर्वस्व-चेतना सर्वस्व वस्तु, अकेला ज्ञानघन चैतन्यबिम्ब प्रभु, वह ज्ञेय है। तेरे ज्ञान में वह ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक.. मैं एक जाननेवाला। आहा..हा..! इतना भी इसे नहीं पोसाता। पर का करना तो पोसाता ही नहीं। आहाहा! पर की रक्षा कर दे, पर को हैरान कर दे, पर का पालन-पोषण कर दे, बड़ा व्यापारी हो, वह हजार-दो हजार लोगों को निभाता नहीं? नौकर को दो-दो हजार, पाँच-पाँच हजार (वेतन) नौकरों को देता है.. एकदम मिथ्या बात है। पर का पालन और पोषण करना, वह तो आत्मा का स्वभाव ही नहीं; इतना तो नहीं परन्तु पर को जानना इतना ज्ञेय, वह भी इसका स्वभावसम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसे अन्दर उतारते हैं, अन्दर परमात्मा में उतारते हैं। अन्दर जो तू ज्ञेय चेतना सर्वस्व

स्वभाव.. आहाहा! उस पर्याय से छह द्रव्य जानने में आये, इतने को न देख। आहाहा! वह ज्ञेय और ज्ञायक सम्बन्ध पर्याय में व्यवहार से है। समझ में आया? आत्मा जाननेवाला और पर ज्ञात हो – ऐसा सम्बन्ध तो पर्याय के साथ व्यवहार से है; वस्तु के साथ वह सम्बन्ध नहीं है, आहाहा! क्योंकि ऐसी तो अनन्त पर्यायें, पर की अपेक्षा रखे बिना अपने में अन्दर पड़ी हुई है। आहा! ऐसे जो ज्ञेय-चेतना सर्वस्व – ऐसा जो ज्ञेय, ज्ञान, ज्ञायकरूप सर्वस्व जो ज्ञेय, उसका तू जाननेवाला है। आहाहा!

यह स्त्री मेरी, पुत्र मेरा... कहाँ गया इसमें? लो, शिष्य मेरा.. वह तेरा कहाँ था भगवान! तेरा स्वभाव पर को अकेला जानना, इतना नहीं – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तेरा स्वभाव तो पर को जानने की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञान, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड जो द्रव्य, वह ज्ञान का ज्ञेय है, लो! समझ में आया?

मैं ज्ञायक और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय – ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः'.. आहाहा! **ज्ञान** अर्थात् **जानपनारूप शक्ति..** वह अपना भाव, जानपनारूप भाव, वह अपनी शक्ति। **ज्ञेय** (अर्थात्) **जानने योग्य शक्ति..** प्रमेय अपना गुण। आहाहा! जानपनारूप शक्ति, वह ज्ञानशक्ति स्वयं की और जाननेयोग्य शक्ति, वह भी मेरी अपनी। आहाहा! मैं स्वयं जाननेयोग्य होकर जानने में आता हूँ। समझ में आया? अब इसमें गहरे कहाँ उतरना लोगों को? न समझ में आये तो सीधे बाहर में और व्रत में.. मिथ्यात्वभाव है। अज्ञानभाव में भटक मरा है। ऐसे अनादि से साधुपना अनन्त बार लिया, पंच महाव्रत पालन किये। आहाहा! साधु के अट्ठाईस मूलगुण पालन किये परन्तु उसे (आत्मवस्तु) चीज़ जानने में रह गयी। राग की क्रिया वह मेरी (–ऐसा मानकर अटक गया)। यहाँ तो राग को जानना, इतना ज्ञेय मैं–यह भी उसे आत्मा की प्रतीति नहीं है। आहा! पर को जाननेमात्र का जो पर्याय का ज्ञान उतना मैं, उसने आत्मा को जाना नहीं। आहाहा! समझ में आया?

'ज्ञान' जानपनारूप शक्ति और **'ज्ञेय' जानने योग्य शक्ति..** वह मेरी। जाननेयोग्य शक्ति, वह भी मेरी और जाननेयोग्य शक्ति, वह भी मेरी और **अनेक शक्ति बिराजमान वस्तुमात्र..** ज्ञाता-ज्ञाता, **अनेक शक्ति बिराजमान वस्तुमात्र..** जाननेयोग्य शक्ति भी मैं; जानपनेयोग्य शक्ति ज्ञान, वह मैं और ऐसी-ऐसी अनन्त शक्तियों से बिराजमान ज्ञाता, वह

मैं वस्तुमात्र – **ऐसे तीन भेद 'मद्वस्तुमात्रः' मेरा स्वरूपमात्र है..** वह तीनों मेरा स्वरूप है। जानपनेयोग्य भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं ऐसी शक्ति से, अनन्त शक्ति से बिराजमान ज्ञाता भी मैं। तीन होकर एक वस्तु मैं हूँ। आहाहा! कहो, पकड़ में आता है या नहीं कुछ? वीतराग की बात ऐसी है। आहाहा! इसे स्वज्ञेय में झुकाया है; पर को जानने में लगा, वह वस्तु नहीं – ऐसा कहते हैं। इतना ही इसे वस्तु में पोसाता नहीं। आहा! पर को जानने में जिसकी शक्ति पर में रुक गयी है। आहाहा! पर में जानने की, हों! उसमें भी तू आत्मा नहीं। इतना आत्मा माननेवाला भी वास्तविक आत्मा के स्वरूप को वह नहीं मानता। आहाहा! समझ में आया?

यह ऐसा वीतराग का मार्ग होगा? भाई! हमने तो अभी तक सुना नहीं था! *इच्छामि पडिक्कमाणुं इरिया विरीया तस्स मिच्छामि दुक्कडम् इच्छामि पडिकमणुं* किया था या नहीं भभूतमलजी?— *तस्स उत्तरी करणेणं, पायच्छितं करणेणं, पाउ का उठाणेणं मोणेणं झाणेणं-अप्पाणं वोसिरामि* – समझने का है कुछ इसमें? पहाड़े बोलते जायें, हो गयी सामायिक.. धूल में भी सामायिक नहीं इसमें, सुन न!

मुमुक्षु : मिच्छामि दुक्कडम्।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहा... ? हैं?

मुमुक्षु : मिच्छामि दुक्कडम्।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; तस्स मिच्छामि दुक्कडम्। किसका मिच्छामि दुक्कडम्? आहाहा! यह जो विकल्प उठा न, तस्स मिच्छामि दुक्कडम् का, उस विकल्प का कर्ता आत्मा नहीं है। उसे आत्मा नहीं कहते। उसे तो अब आत्मा नहीं कहते परन्तु मात्र विकल्प को जाननेवाला हो, उतना भी आत्मा नहीं कहते। स्वरूपचन्दभाई! सूक्ष्म बात आयी है।

सबेरे ९९वें (गाथा की) बात थी। आहाहा! स्व को ज्ञेय बना तो ज्ञाता भी तू और ज्ञान भी तू; पर के साथ तुझे कोई सम्बन्ध नहीं, प्रभु! ऐसी शक्ति जो तीन रूप – ऐसा मेरा स्वरूपमात्र है, ऐसे ज्ञेयरूप हूँ, देखो! ज्ञानशक्ति जानने की, ज्ञेयशक्ति जनवाने की – ऐसी अनन्त शक्ति ज्ञाता की, तीन रूप होकर मैं ज्ञेय हूँ, तीन रूप होकर मैं ज्ञेय हूँ। आहाहा! जानने की शक्ति ज्ञान, उसमें वापस ज्ञेय उतारते हैं। ज्ञान को ज्ञान जाने और ज्ञेय अर्थात्

जाननेयोग्य पूरी चीज़ है, उसे वह जाने। आहाहा! ऐसी ज्ञाता-ज्ञेय मैं, मैं ज्ञाता, मैं जाननेयोग्य - ऐसी तीन वस्तु मात्र ज्ञेय, उसे आत्मा कहने में आता है।

लोग बाहर का जानने में, बाहर की प्रवृत्ति में रुक गये और पूरी वस्तु रह गयी। आहाहा! जिससे जन्म-मरण का अन्त आवे, ऐसा सम्यग्दर्शन क्या और सम्यग्दर्शन का विषय क्या, उसे जानते नहीं। वे तो अपन कुछ करेंगे तो पायेंगे.. लो! क्या करेंगे तो पायेंगे? मिलेगी, धूल मिलेगी वह तो बाहर की! शुभभाव होगा तो बाहर में संयोग मिलेंगे। वह आत्मा का शत्रु होगा। आहाहा!

भगवान आत्मा.. केवली सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो आत्मा देखा, ऐसे अनन्त आत्मायें भगवान ने देखे हैं। आहाहा! उसमें का एक आत्मा, वह अनन्त आत्मा को जानने की पर्याय से भी भिन्न.. आहाहा! उतना ज्ञेय नहीं। अनन्त आत्माओं को जाने, ऐसी जो ज्ञान की पर्याय है, उतना ज्ञेय आत्मा नहीं। समझ में आया? उससे अनन्तगुना जो तत्त्व-जो ज्ञेय और ज्ञाता है, उसे ज्ञेयरूप से तीन अभेद होकर जाने, उसे आत्मा कहने में आता है। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन - चौथा गुणस्थान (की बात है)। आहाहा! पाँचवाँ तो कहीं रह गया और छठवाँ तो कहीं रह गया। आहाहा!

ऐसे तीन भेद 'मद्वस्तुमात्रः' मेरा स्वरूपमात्र है ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। आहाहा! **भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,...** वेदनेयोग्य और वेदनेवाला, वह सब मैं स्वयं हूँ। आहाहा! वेद्य-वेदनेयोग्य, वेदक-जाननेवाला, वह मैं हूँ। वेद्य-वेदकरूप से मैं हूँ। मेरे वेद्य में-जानने में दूसरी चीज़ है और मैं उसका जाननेवाला हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो बहुत धीरज चाहिए।

पैसा-बैसा मिले वह तो पूर्व का पुण्य हो तो है न? तो व्यवस्था बन जाती है। आहाहा! यह अभिमान करता है कि हम कमाते हैं। पूर्व के (पुण्य के) रजकण पड़े हों तो उस प्रकार व्यवस्था बन जाती है, धन्धे में लाभ हो जाता है, पाँच-पाँच दस-दस लाख, बीस-बीस लाख, धूल का (लाभ हो जाता है)। इसलिए मानो कि हमने कमाया। क्या कमाया? वह पैसा तो जड़ है, वह जड़ तूने कमाया? आहाहा! और वे मेरे पास आये, ऐसी ममता, वह तूने कमायी है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि उस ममता का ज्ञान, इतना भी मैं नहीं है। आहाहा! पैसा एक

ओर रह गया, परन्तु उसमें ममता की वृत्ति उत्पन्न हुई, आहाहा! उसे जाननेवाला मैं, इतना भी मैं नहीं। आहाहा! मैं तो अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, जो ज्ञाता-अनन्त शक्तिवान; ज्ञान-जानने की शक्तिस्वरूप; ज्ञेय जनवाने की शक्तिरूप, इन तीन का एकरूप वह ज्ञेय मैं हूँ। आहाहा! बहुत बदलाव करना पड़े लोगों को! है न, परन्तु अन्दर है या नहीं? घर में तो पढ़ना भी आवे नहीं, इसमें क्या कहते हैं? रुपये और व्यापार की बहियाँ टटोले, उसमें पढ़े। आहाहा! प्रभु! तेरी बात को तूने नहीं देखा। आहाहा! इन अनन्त चीज़ों को तू ज्ञेयरूप से व्यवहाररूप से पररूप से जानना, आहाहा! वह लक्ष्मी अरबों रुपये, अन्दर दिखायी दे, यहाँ नजर में आवे, उसे ज्ञेयरूप से जानना, उतना भी तू नहीं है। मेरे रूप से मानना, वह तो तू नहीं, आहाहा! परन्तु इतने को ज्ञेयरूप से जाननेवाला मैं, उतना भी मैं नहीं। कठिन बातें हैं, हों! बापू! यह अपूर्व बात है।

अनन्त काल से इसने, मेरी चीज़ कितनी महान है, कितनी है और कैसे है? इसका सम्यग्ज्ञान नहीं किया। शास्त्र पढ़ा, क्रियाकाण्ड किये, वहीं का वहीं अटककर चार गति में भटकता रहा। आहाहा!

मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,... जाननेयोग्य और जाननेरूप मैं जानता हूँ - ऐसे जनानेरूप और जाननेरूप मुझे में जानता हूँ; **इसलिए मेरा नाम ज्ञान है,** इसलिए मेरा नाम ज्ञान है। **यत: मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,..** मैं मेरे द्वारा जाननेयोग्य हूँ। **इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,..** ओहोहो! **ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ,..** ऐसी अनन्त शक्तियाँ आत्मा में है। आहाहा! **इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है,..** इन तीनों में ऐसा नाम भेद है। आहाहा! मैं एक जाननेवाला शक्तिवाला; जनानेयोग्य शक्तिवाला; और अनन्त शक्तिवाला ज्ञाता ऐसे तीन के नाम भेद हैं। मुझमें तीन के नाम भेद हैं; ये नामभेद निकाल डालते हैं। आहाहा! **वस्तुभेद नहीं है।** यह क्या कहा? मैं स्वयं ज्ञान हूँ - ऐसी एक शक्ति और मैं स्वयं ज्ञेय हूँ - जनानेयोग्य हूँ - ऐसी एक शक्ति और ऐसी अनन्त शक्तिरूप ज्ञाता-ऐसे तीन रूप से अनन्त शक्तियाँ वह हूँ। इसलिए मेरा नाम ज्ञाता - ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मैं, ज्ञाता भी मैं हूँ। आहाहा! ऐसी अन्तर्दृष्टि होना, उसे सम्यग्दर्शन-धर्म की पहली दशा कहते हैं। अभी तो उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। आहाहा! और सम्यग्दर्शन के बिना इसके शास्त्र के पठन सब अज्ञान है। इसके व्रत और नियम, इस

सम्यग्दर्शन के बिना, वे व्रत और नियम सब बालव्रत और बालतप हैं। आहा! समझ में आया? गजब बात, भाई! अन्तिम श्लोक है न।

कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं... भगवान आत्मा जाननेवाला है। **जीव ज्ञेयरूप है..** मैं स्वयं ज्ञेयरूप हूँ, मैं स्वयं ज्ञायक हूँ। **ऐसा जो वचनभेद..** आहाहा! वह नहीं। आहाहा! **वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता हूँ।** ऐसे वचनभेद से भेद को प्राप्त होता हूँ। **भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है।** ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान – ऐसा शब्द भेद है, वस्तु तो 'है वही है।' ज्ञेय भी वह, ज्ञान भी वह और ज्ञाता भी वह। आहाहा! '**ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्**' वचन का भेद है – ऐसी कल्लोल अर्थात् ऐसे भेद को **वल्गन्** (अर्थात्) पाता हूँ। जो वचनभेद उससे भेद को प्राप्त होता हूँ, वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं! वही ज्ञेय, वही ज्ञान, वही ज्ञाता – तीन अभेद होकर वस्तु एक अखण्ड कहने में आती है। इस सम्यग्दर्शन के विषय में ऐसी अभेद वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

अभी तो कहते हैं कि नवतत्त्व की श्रद्धा करो और देव अरिहन्त, गुरु निर्ग्रन्थ, केवली से प्ररूपित धर्म, वह सत्य है, उसकी श्रद्धा ही समकित... ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसा तो अनन्त बार किया है। आहाहा! अपूर्व भगवान आत्मा पूरा ज्ञेय, पूरा ज्ञान का ज्ञेय। आहाहा! वह पूरा ज्ञाता। एकरूप वस्तु, जिसमें वचन का भेद भी नहीं रहता – ऐसी चीज़ की दृष्टि करने का नाम अनुभव करना, और उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा!

अभी तो क्या कहा जाता है, वह पकड़ना कठिन पड़ता है। अन्य तो सीधा सट्ट-जाओ! गृहस्थ हो तो पैसा खर्च करो, धर्म-धुरन्धर का नाम देते हैं। शरीर का बलिष्ठ अपवास कर डाले, वह तपस्वी कहलाता है। मन का बलिष्ठ हो, वह शास्त्र की बातें करता है, (इनमें किसी में धर्म नहीं है)।

चैतन्य प्रभु स्वयं ही ज्ञेय होकर ज्ञान में ज्ञात हो, स्वयं ज्ञाता होकर ज्ञेय में स्वयं ज्ञाता ज्ञात हो। आहाहा! ज्ञाता वह ज्ञेय; ज्ञान वह ज्ञेय; और ज्ञेय वह ज्ञेय – ऐसी अभेद वस्तु की दृष्टि होना, ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है अन्दर में। ऐसी चीज़ की दृष्टि होने का नाम धर्म की पहली दशा-सम्यग्दर्शन तब कहने में आता है। आहाहा! ऐसा मार्ग यह नया निकाला नहीं होगा न ऐसा?

मुमुक्षु : नया ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा तो हम सुनते नहीं थे। जहाँ जायें वहाँ—स्थानकवासी में हो तो कहे सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो; मन्दिरमार्गी में हो तो (कहे) कि भाई! यात्रा करो, चैत्र शुक्ल पूर्णिमा की, कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा की शत्रुंजय की, सम्मेदशिखर की यात्रा करो; पैसा होवे तो गरीब के आसूँ पोंछो, विधवा के आसूँ पोंछो, भूखे को अनाज दो, प्यासे को पानी दो, नंगे को वस्त्र दो, रोगी को औषध दो—ऐसा तो सुनते थे! यह सब बातें भ्रम है। कौन दे और कौन ले? आहाहा!

यहाँ तो पर को जानना, वह भी जहाँ आत्मा के स्वभाव में नहीं। आहाहा! अकेला पर को जानना, इतना भी आत्मा का स्वभाव नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसी-ऐसी जानने की पर्यायें तो गुण में-ज्ञाता में अनन्त पड़ी है। आहाहा! वह जब स्व को ज्ञेय बनावे, तब उसका पूर्णरूप ज्ञान में आवे, तब उसे वास्तविक आत्मा उसके ज्ञान में ज्ञात हो, उसमें-जानने में आवे और प्रतीति हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : निर्विकल्पदशा में होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निर्विकल्प होता है, भेद नहीं रहता वहाँ। आहा! श्लोक बहुत सरस था। लो! श्लोक पूरा हुआ...

मुमुक्षु : राजकोट में छह प्रवचन किये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : ९९ वें गाथा के, छह दिन चली थी। वह तो पहले-पहले तो सब डालना पड़े न? अब तो यहाँ कितने वर्ष हो गये? मक्खन-मक्खन हो और उसमें से निकले। ९९ गाथा पहले यहाँ शुरु की थी तब छह दिन चली थी। सबेरे की (स्वाध्याय में)। आहाहा! भाई! अब यह तो मक्खन है। इसे लम्बा काल नहीं चाहिए, अब ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा को, उसकी पर्याय जो ज्ञान की वर्तमान वर्तती है, उसे परसन्मुख में जानने में रोकी है। वह छोड़ दे। आहाहा! उस ज्ञान की पर्याय को स्वज्ञेय में ला। आहाहा! तब वह आत्मा जितना है पूरण, उतना इसे ज्ञान में ज्ञेयरूप ज्ञात हो, उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं, उस ज्ञान को सम्यग्दर्शन कहते हैं और उस ज्ञान में स्थिर होने को चारित्र कहते हैं। आहाहा! लो, (२७१) पूर्ण हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कलश टीका २७१ कलश पहले छोड़ दिया था, परन्तु इसमें सब आ गया, बात आ गयी है।

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन् ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१ ॥

भावार्थ इस प्रकार है... पहले से ही भावार्थ लिया। कहने से पहले उन्हें क्या कहना है, उसे जरा स्पष्ट करने के लिये (भावार्थ लिया है)। **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है...** यह बात उठायी ऐसे कि परद्रव्य ज्ञेय है और आत्मा ज्ञान है – ऐसी भ्रान्ति चलती है। परज्ञेय है, वह तो व्यवहारज्ञेय है। निश्चय में तो अपनी ज्ञान की पर्याय में जो छह द्रव्य का ज्ञान होता है, वह अपना ज्ञेय और अपना ज्ञान और अपना ज्ञाता है। आहाहा! जैसे पहले कहा कि द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव वही है। द्रव्य है, वही है, क्षेत्र भी वही है, काल भी वही है। द्रव्य भिन्न, क्षेत्र भिन्न, काल भिन्न, भाव भिन्न – ऐसा नहीं है। आहाहा!

वस्तु जो अनन्त गुण का भण्डार द्रव्य है। वह द्रव्य, वही असंख्यप्रदेशी क्षेत्र, वही त्रिकाल और वही भाव। भाव – जैसे आम में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श—वर्ण कहो तो वह, गन्ध कहो तो भी वह, और रस कहो तो भी वह और स्पर्श कहो तो भी वह। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आम में अलग है– आम में ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार आत्मा द्रव्य अर्थात् अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु द्रव्य; वही असंख्यप्रदेशी द्रव्य है; वही क्षेत्र है और जो असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, वही द्रव्य है और जो असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है, वही त्रिकाल काल है और वही त्रिकाल भाव है। आहाहा! समझ में आया? चार प्रकार का भेद भी निकाल दिया। आहाहा!

दृष्टि का विषय तो द्रव्यस्वभाव, क्षेत्रस्वभाव, काल-भाव वह एकरूप स्वभाव है।

दृष्टि के विषय में चार भेद नहीं हैं। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य है, वही पंचम पारिणामिकभाव है; क्षेत्र है, वही पंचम पारिणामिकभाव है; त्रिकाल वस्तु, वह परमपारिणामिकभाव है और अनन्त भाव, वह भी पारिणामिकभाव है। आहाहा! ये चार भेद एक ही चीज़ हैं; चार भिन्न-भिन्न हैं - ऐसा सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एक स्वरूप से अभेद-अखण्ड, वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! कठिन बातें भाई! गजब! समझ में आया? इस सम्यग्दर्शन के विषय में निमित्त तो न हो, वह राग तो नहीं परन्तु एक समय की पर्याय सिद्ध आदि, केवलज्ञान की, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहाहा!

अब यहाँ तो ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञाता.. ज्ञान जाननेवाला, ज्ञेय जानने में आता है, ज्ञाता वह सब गुण का पिण्ड। आहाहा! यह कहते हैं, देखो! **ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है। सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक है..** आहाहा! **छह द्रव्य..** उसमें अनन्त केवली आये, अनन्त सिद्ध आये, अनन्त निगोद के जीव आये। आहा! तो आत्मा ज्ञायक है और पंच परमेष्ठी, वे छह द्रव्य में आये तो वे ज्ञेय हैं - ऐसा है नहीं। आहाहा!

ज्ञेय-ज्ञायक का व्यवहार सम्बन्ध भी छुड़ा देते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म बात भाई! जाननस्वभाव ऐसा भगवान आत्मा, वह ज्ञायक; ज्ञायक, जाननेवाला और छह द्रव्य में अनन्त केवली आये और सिद्ध आये, वे ज्ञान में ज्ञेय हैं - ऐसा है नहीं। आहाहा! वह कहते हैं, देखो! **वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर..** एक परमाणु से लेकर अचेतन महास्कन्ध-कर्म आदि। आहाहा! यहाँ तो आत्मा ज्ञायक है और राग-व्यवहाररत्नत्रय का राग उत्पन्न होता है, वह ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया? जो व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, यह आत्मा ज्ञायक और वह ज्ञेय है - ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! बारहवीं गाथा में कहा था - जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ - वह तो जानता है अपनी पर्याय। राग को, व्यवहार को अपनी पर्याय जानती है तो पर्याय अपना ज्ञेय है। राग ज्ञेय तो व्यवहार से कहने में आया है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म!

छह द्रव्य में जो देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नवतत्त्व का भेदवाला भाव, पंच महाव्रत के परिणाम, वह राग, वह अपना स्वभाव तो नहीं परन्तु वह अपना ज्ञेय भी नहीं

– ऐसा कहते हैं। आहाहा! गजब बात है न? सूक्ष्म बात है भगवान! आहाहा! **पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। सो ऐसा तो नहीं है।..** ऐसा नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई! आहाहा! शरीर में रोग आया तो आत्मा ज्ञायक है और रोग ज्ञेय है – ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : अजीब बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात है। कभी-कहीं सुना है वहाँ, तम्बाकू और बीड़ी में यह कुछ है नहीं! सेठ! यहाँ तो कहते हैं तम्बाकू और बीड़ी और स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, वह ज्ञायक का ज्ञेय है – ऐसा है ही नहीं। आहाहा! गजब बात की है न! अपना तो नहीं, ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा में स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, लक्ष्मी और व्यवहाररत्नत्रय का राग-वह छह द्रव्य में आता है, वे छह द्रव्य ज्ञेय हैं, जाननेयोग्य हैं, प्रमेय हैं और आत्मा प्रमाण करनेवाला है – ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : मीठी-मधुर बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु ऐसी है, बापू! यहाँ तो पर से समेटने की बात है। आहाहा! कठिन काम है भाई! अनन्त काल में यह अभेद और अविरुद्ध इसने जाना नहीं है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि पुद्गल से लेकर भिन्नरूप (छह द्रव्य, उनमें) अनन्त केवली, पंच परमेष्ठी ज्ञान में ज्ञेय है – ऐसा भी नहीं। मीठालालजी! क्योंकि आत्मा जो छह द्रव्य का और पंच परमेष्ठी का ज्ञान करता है, वह तो ज्ञान की पर्याय उनके कारण से हुई नहीं, उन ज्ञेय के कारण से हुई नहीं; वह अपने से हुई है तो अपने ज्ञान की पर्याय अपना ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा तो नहीं है। जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है.. 'अहं अयं यः ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' आहाहा! मैं **'अयं' जो कोई 'ज्ञानमात्रः भावः अस्मि' चेतना सर्वस्व..** जानना-देखना। **चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ।** आहाहा! **'सः ज्ञेयः' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ..** चेतना सर्वस्व मैं हूँ। इन छह द्रव्य का ज्ञेयपना मुझे यह भी नहीं। मैं तो चेतना सर्वस्व जो पर्याय, अपनी वह अपने में ज्ञेय है। आहाहा! कठिन बातें गजब हैं। अन्तिम श्लोकों में तो एकदम.. ज्ञान की पर्याय ज्ञायक है, आत्मा और वह ज्ञेय तो है या नहीं छह द्रव्य, केवलज्ञान में ज्ञेय है या नहीं?

मुमुक्षु : व्यवहार से।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह व्यवहार है, इसका अर्थ क्या? है नहीं। भगवान लोकालोक को जानते हैं - ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। तब क्या लोकालोक को नहीं जानते हैं? आहाहा! कि अपनी ज्ञानपर्याय में, अपने में लोकालोक का ज्ञान अपने कारण से हुआ, वह पर्याय अपना ज्ञेय है, लोकालोक ज्ञेय नहीं। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! यह तो धीर का काम है, भाई! यह कहीं एकदम.. आहाहा!

'सः ज्ञेयः न एव' वह मैं ज्ञेयरूप हूँ परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ। कैसा ज्ञेयरूप नहीं हूँ—'ज्ञेयः ज्ञानमात्रः'.. वस्तु-अपने जीव से भिन्न, आहाहा! भगवान चेतनास्वरूप से भिन्न **अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र।** मैं नहीं। आहाहा! छह द्रव्य का जानपना मात्र मैं नहीं; मैं तो मेरी ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय बना करके जाननेवाला हूँ। ऐसी सूक्ष्म बातें! अब लोगों को व्यवहार से होता है, दया, दान, व्रत, भक्ति से निश्चय होता है, यह तो बात कहीं रह गयी परन्तु व्यवहार ज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक है, यह भी दूर हो गया। आहाहा! है?

मुमुक्षु : बहुत सूक्ष्म है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सूक्ष्म है। छाल की भाल कहते हैं न भैया! छाल का भाल। छोड़ते ऐसी छाल है। मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षु : आप ही समझा सकते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! उस बीड़ी के प्रेम में, उसके नामा में (खाता-बही में) कैसे निकाल सकते हो। सेठ! यह नामा निकाल सकता है न? एकदम-एकदम करे, इसके पास इतना है और इसके पास इतना...

मुमुक्षु : आदत हो गयी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आदत हो गयी है। आहा! यहाँ तो यह ले-दे सकते तो नहीं परन्तु उसको जानते हैं - ऐसा भी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सेठ! कानपुर जाकर तम्बाकू के पैसे देते हैं, वह तो नहीं। दृष्टान्त घर के सेठ का देते हैं न? परन्तु वह पैसा आया पचास हजार या लाख, वह ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा भी नहीं है। क्योंकि ज्ञेय को जानने की

पर्याय मेरी है। अत: मैं ज्ञेय और मैं ज्ञान हूँ, मैं चैतन्य सर्वस्व हूँ, उसमें पर का ज्ञेयपना आता ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

तत्त्वदृष्टि सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! इसने अनन्त काल में अभ्यास पर का, पर्याय का, राग का अभ्यास किया। आहाहा! जन्म-मरण से रहित होने की चीज़ कोई अलौकिक है और वह पुरुषार्थ से प्राप्त होती है। परन्तु पुरुषार्थ क्या? आहाहा! यह शास्त्र है, वह मेरा ज्ञान है और यह ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं और मेरे ज्ञान की पर्याय में शास्त्र का जो ज्ञान है - ऐसा ज्ञान आया, वह उस कारण से नहीं आया, वह ज्ञेय के कारण से नहीं आया। अपनी पर्याय में अपने ज्ञेय के कारण से ज्ञान आया है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। पर के साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसा कहते हैं। ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध भी नहीं। आहाहा! ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध कहने में आता है न? तो सम्बन्ध तो व्यवहार है। आहाहा!

निश्चय से तो यह छह द्रव्यों का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से हुआ है, वह छह द्रव्य की अस्ति के कारण इस पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। मेरी पर्याय में इतनी अस्ति की ताकत है कि पर की अस्ति है तो मैं छह द्रव्य की पर्याय का ज्ञान करता हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! अब ऐसी बातें! तो कहते हैं '**सः ज्ञेयः न एव**' पर के ज्ञानमात्र ज्ञेय, वह मैं नहीं; पर का ज्ञानमात्र ज्ञेय, वह मैं नहीं। आहाहा! यह कलश-टीका तो घर में रखी होगी - रखी है न? पुस्तक तो वहाँ घर में है न? रखी होगी। छोटे सेठ पढ़े - ऐसी बात है भाई! यह तो भगवान की बात है न, भगवानदास! आहाहा! गजब बात है और इन दिगम्बर सन्तों के अतिरिक्त यह पद्धति कहीं नहीं है। समझ में आया? यह वस्तु की स्थिति, भगवान!

यह छह द्रव्य हैं, उनका ज्ञान हुआ, वह ज्ञेयकृत हुआ तो वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण से हुई है? वह तो अपनी पर्याय हुई है। वह तो अपनी पर्याय, वह अपना ज्ञेय है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! आहाहा! व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा था। बारहवीं गाथा में (कहा था)। उसका अर्थ यह कि उस प्रकार के ज्ञान की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। वह राग है, व्यवहाररत्नत्रय का (राग है), उसका ज्ञान यहाँ अपनी पर्याय में ऐसा ही अपने से स्व-परप्रकाशक की पर्याय अपने से उत्पन्न होती है।

वह अपनी पर्याय, अपना ज्ञेय है। व्यवहार भी ज्ञेय नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। यह तो धीर के काम हैं, बापू! यह कोई उतावलिया होकर... उतावल से आम नहीं पकते। आम बोने के बाद थोड़ी धीरज चाहिए। आम समझे न? केरी, केरी, केरी का बीज बोवे तो तुरन्त फल आता है? तो थोड़ी धीरज चाहिए.. इसी प्रकार भगवान आत्मा.. आहाहा! तेरी ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य जानने में आते हैं तो वे ज्ञेय हैं तो यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय इतनी प्रगट हुई है, वह अपना ज्ञान और अपना ज्ञेय, पर्याय है। आहाहा! समझ में आया?

अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपना मात्र नहीं - ऐसा कहते हैं। क्या कहा यह? अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह का जानपनामात्र नहीं। उसका जानपना मात्र नहीं; मैं अपनी पर्याय का जानपना मात्र मैं हूँ। सर्वस्व तो मुझमें है। अरे!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय.. मैं जाननेवाला और सर्वज्ञ परमेश्वर मेरे ज्ञान में ज्ञेय.. परमेश्वर मेरा है, यह बात तो नहीं। आहाहा! पंच परमेष्ठी मेरे हैं - ऐसा तो नहीं परन्तु पंच परमेष्ठी मेरे में ज्ञेय है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! उन पंच परमेष्ठी का यहाँ जो ज्ञान हुआ, वह उनका नहीं हुआ है, वह अपनी पर्याय की सामर्थ्य से हुआ है, वह अपनी पर्याय अपने में ज्ञेय है। आहाहा! ऐसा काम है। दृष्टि को समेट लिया। अपने में ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता, ये तीन भेद भी निकाल देंगे बाद में। यहाँ तो अभी... समझ में आया? पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक - ऐसा तो निकालते हैं; पश्चात् पर्याय ज्ञेय है और मैं ज्ञान हूँ तथा मैं ज्ञाता हूँ, यह तीन भेद भी उसमें नहीं है।

ज्ञाता, वह ज्ञाता है और ज्ञाता, वह ज्ञान है तथा ज्ञान, वह ज्ञेय है। आहाहा! ऐसी चीज़! आहाहा! सन्तों ने मार्ग सरल कर दिया है। सरल कर दिया है। सरल किया। अत्यन्त अल्प भाषा में मार्ग बहुत सरल कर दिया है। यह अनुभवप्रकाश में आता है। आहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं ज्ञायक, समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय.. मेरे अतिरिक्त सब पर छह द्रव्य मेरे ज्ञेय हैं। आहाहा! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, परमाणु से लेकर स्कन्ध, कर्म। तो कर्म मेरा ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ। आहाहा! कर्म मुझमें तो नहीं, मेरा तो नहीं परन्तु कर्म ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा!

यहाँ पुकार करते हैं, कर्म से ऐसा और कर्म से ऐसा हो। अरे, सुन तो सही! नाथ! तेरी ज्ञान की सामर्थ्यता इतनी है कि उसमें पर की अपेक्षा है नहीं। आहाहा!

ऐसा तो नहीं है। तो कैसा है? ऐसा है—'ज्ञानज्ञेयज्ञातृ-मद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः' जानपनारूप शक्ति... मेरी जानपनारूप शक्ति और **जाननेयोग्य शक्ति...** वह मेरी, जानपनेरूप शक्ति मेरी और जाननेयोग्य शक्ति भी मेरी। आहाहा! ऐसा मार्ग है। अपने आप तो यह समझ में आये ऐसा नहीं है। पोपटभाई! पोपटभाई आ गये। उस पैसे में रुक गये थे न। आहाहा!

यहाँ तो प्रभु कहते हैं कि लक्ष्मी तो तेरी नहीं परन्तु तेरा ज्ञेय नहीं, वह तो जगत की जड़ चीज़ है परन्तु वह ज्ञेय है और तू ज्ञायक है – ऐसा भी नहीं। कब? तेरी ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय और तू ज्ञान तथा तू तेरा ज्ञाता। समझ में आया?

जानपनेरूप शक्ति मेरी, जाननेयोग्य शक्ति भी मेरी। मैं पर्याय का ज्ञान और ज्ञेय मैं बनाता हूँ, मेरी पर्याय ज्ञेय, मैं ज्ञान और एक-एक शक्ति हुई दो। अब ज्ञाता, ज्ञाता **अनेक शक्ति से बिराजमान..** जाननशक्ति एक, ज्ञेयशक्ति-प्रमेयशक्ति एक अन्दर। आहाहा! क्योंकि द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रमेयशक्ति का व्यापकपना है तो वह प्रमेय-ज्ञेय पर्याय है, वह भी मैं और ज्ञान भी मैं और अनन्त शक्तिसम्पन्न ज्ञाता भी मैं; यह और एक-एक शक्ति। आहाहा! क्या कहा, बहुत सरस बात है, भाई! तुझे पर के सामने देखना नहीं है और पर को.. आहाहा! यह वीतराग की वाणी, भगवान त्रिलोकनाथ समवसरण में बिराजते हैं और वे तेरा ज्ञेय और तू ज्ञायक, आहाहा! उनसे तो तेरी ज्ञानपर्याय होती नहीं परन्तु उनको जानता है – ऐसा भी यहाँ नहीं। समझ में आया? उस सम्बन्धी जो अपनी ज्ञानपर्याय में ज्ञान हुआ, उस ज्ञेय को आत्मा जानता है। वह ज्ञेय भी अपना और ज्ञान भी अपना और अनन्त शक्ति का सम्पन्न ज्ञाता भी अपना। आहाहा! अरे! इसे कहाँ जाना? बाहर में भटक-भटक भटकत द्वार-द्वार लोकन के – आता है न? झांझरी बोले थे न उस दिन 'भटकत द्वार-द्वार लोकन के कूकर आशाधारि' वह कुत्ता जब दस बजे का समय हो, फिर जाली होती है न जाली – कुत्ता जाली, बन्द हो वहाँ। रोटी और खाता हो वहाँ गन्ध आती है कुत्ते को, कुत्ते को। जाली होती है न, कुत्ता जाली बन्द हो वहाँ खड़ा होता है, उस रोटी की गन्ध आती है न, अभी मुझे मिलेगी। दाल, भात, साक की उसे गन्ध आती है। आहाहा!

इसी प्रकार जहाँ हो वहाँ भिखारी माँगा करता है, कहते हैं मेरी ज्ञान की पर्याय यहाँ से होगी, यहाँ से होगी। आहाहा! 'आशा औरन की क्या कीजे, ज्ञान सुधारस पीजे' आत्मा के आनन्द का सुधारस पी न, प्रभु! आहाहा! वह ज्ञेय भी तू, ज्ञान भी तू और ज्ञाता भी तू। तू ज्ञान-जानने की एक शक्ति; ज्ञेय-जनवाने की एक शक्ति और ज्ञाता-अनन्त शक्तिरूप बिराजमान है। आहाहा! अरे! यहाँ तो कहते हैं मेरा गुरु और मेरा भगवान, मेरा देव-मेरा मन्दिर..

मुमुक्षु : चेतना सर्वस्व मैं हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : चेतना सर्वस्व हूँ मैं तो.. चेतना सर्वस्व मैं हूँ। सर्वस्व मैं हूँ। वह ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं। आहाहा! ऐसा मार्ग समझ में नहीं आये, इसलिए फिर लोगों को व्यवहार क्रियाकाण्ड में लगा दिया। उससे कल्याण होगा - ऐसी प्ररूपणा शुरु हो गयी। अर र! वह तो मिथ्यात्व की प्ररूपणा है। मिथ्यात्व के पोषण की प्ररूपणा है। बाकी पता कैसे पड़े कि यह भावलिंगी है या द्रव्यलिंगी? परन्तु प्ररूपणा ऐसी स्पष्ट है, इससे पता नहीं पड़ता कि यह मिथ्यादृष्टि है? वह तो स्थूल बात है। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम परज्ञेयरूप से ज्ञान में है, वे उसको वहाँ धर्म का कारण बताते हैं, उससे तो धर्म होगा - ऐसी तो प्ररूपणा / कथन है - वह मिथ्यात्व है। उसमें सूक्ष्म कहाँ है, उसमें? समझ में आया? कठिन लगेगा, भाई!

कहा नहीं था? कल कहा था, नहीं? आज सबेरे कहा था। भाई! इस व्यवहार का निषेध करते हैं, वह तेरा निषेध नहीं है। तू ऐसा है ही नहीं तो फिर निषेध क्या? तू आत्मा है न भगवान! ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञातारूप से तू आत्मा है तो तुम्हारा अनादर कहाँ आया? आहाहा! यह तो स्व का आदर आया। समझ में आया? व्यवहार का निषेध, वह अपनी पर्याय में-व्यवहारज्ञेय और यह ज्ञान-ऐसा है नहीं। तेरा स्वरूप ऐसा है नहीं। तू ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग आवे; होवे, वह दूसरी बात है। होवे तो छह द्रव्य हैं अनन्त, अनादि से वे कहाँ-और वे सत्‌रूप हैं, असत्‌रूप नहीं। ब्रह्मसत्य और जगत मिथ्या - ऐसा नहीं है। वह तो अपनी अपेक्षा से मिथ्या; बाकी छह द्रव्य तो अनादि से पड़े हैं। आहाहा! एक-एक द्रव्य में अनन्त गुण, एक-एक परमाणु में अनन्त गुण। आहाहा!

वे ज्ञान में ज्ञेय कहना, यह कहते हैं हमें खटकता है, वह नहीं। आहाहा! तो उस ज्ञान में व्यवहार मेरा मानना, यह तो कहीं रह गया।

भगवान! यह मार्ग तो तेरे हित कार्य की बात है, प्रभु! अपने में सूझ पड़ जाये ऐसी चीज़ है। समझ में आया? आहाहा! किसी को पूछना नहीं पड़ेगा। आहाहा! जानपना शक्ति एक, जाननेयोग्य शक्ति एक, दो अनेक शक्ति से बिराजमान वस्तु ऐसे तीन भेद '**मद्वस्तुमात्रः' मेरा स्वरूपमात्र है,..** ये तीनों मेरा स्वरूप है। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं, ये तीन स्वरूप मैं हूँ। परज्ञेय मैं हूँ – ऐसा तो नहीं है। आहाहा! और देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा का भाव भी शुभभाव है और शुभभाव ज्ञेय तथा आत्मा ज्ञायक – ऐसा है ही नहीं। आहाहा! प्रभु! तेरी बात तो देख। बलिहारी वीतराग.. वीतराग.. वीतराग.. वीतराग..

यहाँ तो कहा है कि बाह्य निमित्त ज्ञेय भी वे नहीं,... तुझे लाभ करे, यह तो नहीं, वह तो तेरी चीज़ तो नहीं – सर्वज्ञ, अनन्त तीर्थंकर, अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध, अनन्त आचार्य, उपाध्याय, साधु, उसमें आता है न?

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं, आहाहा!

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती सिद्धाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती आयरियाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व त्रिकालीवर्ती साहुणं।

भविष्य में अरिहन्त और सिद्ध होगे, वे अभी वन्दन में आ गये। समझ में आया? व्यक्तिगत नहीं परन्तु ऐसे समूह में आ गये। त्रिकालीवर्ती भी पंच परमेष्ठी ज्ञेय हैं और तू ज्ञायक है। तेरे तो ये पंच परमेष्ठी नहीं परन्तु वे ज्ञेय और तू ज्ञायक है – ऐसा भी नहीं। आहाहा! कठिन काम है। उस सम्बन्धी का तुझे ज्ञान हुआ, वह तेरी पर्याय तुझे ज्ञेय हुई। आहाहा! क्योंकि प्रमेय नाम का गुण तुझमें है और तेरा ज्ञान उसका प्रमाण करके प्रमेय को जानता है। पर प्रमेय को जानता है – ऐसा यहाँ है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह परिणमन–परिणामकत्व शक्ति आ गयी। परिणमन–परिणामकत्व, पर को ज्ञेय होना और

अपने में प्रमाण होना। उसमें एक शक्ति है परन्तु ज्ञेय होना, वह व्यवहार से कहा है। आहाहा! भाई! शक्ति में ऐसा आया था। आहाहा! परिणमन-परिणामकत्वशक्ति प्रमाण अपना ज्ञानस्वरूप अपने का प्रमाण होना और पर के ज्ञान में प्रमेय होना, वह व्यवहार कहने में आया है। शक्ति है परन्तु वह व्यवहार है। आहाहा! तेरा प्रमेय पर के ज्ञान में आया - ऐसा है ही नहीं। पर का प्रमेय तेरे ज्ञान में आता है - ऐसा है ही नहीं। आहाहा! कितनी धीरज से अन्दर जाना?

ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। कैसा ज्ञेयरूप हूँ? ज्ञानशक्ति मैं, ज्ञेयशक्ति मैं, और ज्ञाताशक्ति -अनन्त गुण की शक्ति मैं। ऐसा मैं ज्ञेयरूप हूँ। परज्ञेयरूप हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा! गजब बात करते हैं न? वीतराग के अतिरिक्त, केवली परमात्मा के अतिरिक्त, सन्तों के अतिरिक्त यह बात कौन करे? आहाहा! जगत को ठीक पड़े या न पड़े, समाज समतौल रहे न रहे, वस्तुस्थिति यह है। भाई! तेरी ज्ञानपर्याय तेरा ज्ञेय है, परज्ञेय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तीन भेद, मेरा स्वरूप मात्र है तीन भेद तो। मैं वस्तुस्वरूप ऐसा ही है - ऐसा कहते हैं। तीन रूप एक ही वस्तु मैं हूँ। तीन में वस्तु तो मैं एक ही हूँ। आहाहा! ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता तीन भी वस्तुमात्र तो मैं एक हूँ। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! अरे! कहाँ निवृत्ति-फुरसत नहीं, एक तो धन्धे के कारण फुरसत नहीं, फिर व्यवहार के क्रियाकाण्ड के कारण फुरसत नहीं। आहाहा!

पर में अपनी मान-प्रतिष्ठा बढ़े, उसमें दरकार की है। आहाहा! उसे यह ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता वस्तुमात्र, वह मैं सर्वस्व हूँ। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञायक भी मैं। मुझे पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह इसे निर्णय करना पड़ेगा। भगवान! भले पहले विकल्प से निर्णय करे, परन्तु निर्णय ऐसा करे कि मैं ज्ञेय-जाननेयोग्य भी मैं, जाननेयोग्य भी मैं और जाननेवाला भी मैं और अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञाता भी मैं। तीन वस्तुमात्र मैं हूँ - वस्तुमात्र एक है, तीन मिलकर वस्तु एक है। आहाहा! अन्तिम के श्लोक हैं न? एकदम अभेद वर्णन (किया है)। वस्तु-शास्त्र का पूरा सार, समयसार का निचोड़ है निचोड़। जानने की शक्ति तेरी है या ज्ञेय की है? जो अनन्त ज्ञेय हैं, उन ज्ञेय को जानने की शक्ति तेरी है या उनकी है? जानने की शक्ति मेरी है तो उसमें परज्ञेय कहाँ आया? वह तो अपनी ज्ञान की शक्ति में परज्ञेय का ज्ञान अपने कारण से अपना ज्ञेय होकर

आया और अपना ज्ञान, वह ज्ञेय है, वह अपने को जानता है। आहाहा! और ज्ञाता भी मैं, अनन्त शक्ति का पिण्ड भी मैं। तीनों होकर वस्तु तो एक है। देखो, भाषा तो ऐसी है न?

तीन भेद '**मद्वस्तुमात्रः**' **मेरा स्वरूपमात्र है...** वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह कोई भगवान ने बनाया नहीं है। भगवान ने तो जाना था, वैसा कहा, वैसा वाणी द्वारा आया। भगवान भी कहते हैं कि तुम मेरे सामने मत देखना और हम तेरे ज्ञेय हैं, वह भी पर हुआ। आहाहा! मैं तेरे ज्ञान में जाननेयोग्य हूँ – ऐसा भी नहीं। आहाहा! तेरे ज्ञान में मैं, मेरा है – ऐसा तो नहीं है परन्तु तेरे ज्ञान में मैं ज्ञेय हूँ – ऐसा भी नहीं है, तेरे ज्ञान में ऐसा है नहीं। तेरे ज्ञान में तो ज्ञान की पर्याय ज्ञेयरूप से परिणमति है, वह ज्ञेय है और उसी समय का ज्ञान उस ज्ञेय को जानता है – ऐसी अनन्त शक्ति का पिण्ड ज्ञाता, वही ज्ञेय, वही ज्ञान, वही ज्ञाता (है)। आहाहा! हद कर दिया।

यहाँ तो अभी बाहर से यह मेरे, यह मेरे। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का न करे तो दिगम्बर धर्म नहीं – ऐसी पुकार पण्डित करते हैं। भाई! इन्दौर में पुकारते हैं। यहाँ का विरोध करने के लिये (ऐसा कहते हैं)। भगवान! यहाँ का विरोध नहीं होता। यह तो आत्मा है, प्रभु, उसका विरोध है भाई! तुझे पता नहीं, बापू! तुझे नुकसान होता है, भाई! ऐसे परिणाम का फल कठोर है, नाथ! तुझे सहन करना पड़ेगा, भाई! वह कोई भी दुःखी हो, यह कुछ ठीक है? आहाहा! परद्रव्य का कर्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नहीं (ऐसा उन लोगों का कहना है) यहाँ तो कहते हैं कि पर का जाननेवाला माने, वह दिगम्बर नहीं। ऐई!

प्रभु! तेरा मार्ग तो ऐसा है। प्रभु! तू भगवन्तस्वरूप है। तेरी शक्ति में दूसरे की आवश्यकता नहीं है। तुझे पर को जानने में पर की आवश्यकता नहीं है, तुझे तेरे जानने में तेरी शक्ति की आवश्यकता है। अब इसमें विषय और कषाय का रस कहाँ रहा? विषय और कषाय का भाव, वह परज्ञेयरूप से है, वह ज्ञेय और आत्मा ज्ञान – ऐसा नहीं है। आहाहा! यह भगवान ज्ञानस्वरूपी आत्मा है न? तो यह विषयकषाय का परिणाम हुआ, उसका ज्ञेय हुआ और ज्ञान आत्मा, ज्ञान में तो है नहीं, ज्ञान का तो है नहीं। आहाहा! परन्तु वे परिणाम ज्ञेय और आत्मा ज्ञान – ऐसा भी नहीं है। आहाहा! क्या गम्भीरता! एक-एक श्लोक के एक-एक पद की (गम्भीरता)!! आहाहा!

भावार्थ इस प्रकार है कि मैं अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ,... देखो ! मैं मेरे स्वरूप को वेद्य-वेदक-जाननेयोग्य और जाननेवाला - ऐसा मैं जानता हूँ। आहाहा ! जाननेयोग्य और जाननेवाला मैं ही हूँ। आहाहा ! वेद्य-वेदकभाव से जानता हूँ **इसलिए मेरा नाम ज्ञान,...** इस कारण से मेरा नाम ज्ञान, मैं ज्ञेय को जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञान हूँ (-ऐसा नहीं है)।

ज्ञान द्वारा मैं जाननेयोग्य हूँ, देखो ! ज्ञेय बनाया **मैं आप द्वारा जानने योग्य हूँ,...** मेरे द्वारा मैं जाननेयोग्य हूँ, पर द्वारा जाननेयोग्य हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा ! शास्त्र से ज्ञान तो होता नहीं परन्तु शास्त्र ज्ञेय और आत्मा ज्ञायक - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! यह जोरदार बात है। तथापि शास्त्र का पढ़ना-अभ्यास करना, वह बात आती है। स्वलक्ष्य से आती है, तथापि शास्त्र का ज्ञान, शास्त्र ज्ञेय और आत्मा का ज्ञान - ऐसा है नहीं। आहाहा ! जिस ज्ञान की पर्याय में, जो ज्ञान नहीं था, ऐसी वाणी सुनकर वह ज्ञान आया तो कहते हैं ऐसा है नहीं। वह ज्ञान की पर्याय तेरा ज्ञेय है, उसमें से ज्ञान आया है, ज्ञेय में से ज्ञान आया नहीं। आहाहा ! ऐसा सूक्ष्म, इसलिए लोगों को कठिन पड़ता है परन्तु प्रभु ! मार्ग तो यह है। अरे ! जन्म-मरण के उद्धार का पन्थ तो यह है। इसमें किसके सामने देखना है ? आहाहा ! समझ में आया ?

मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा पैसा, मेरा मकान.. आहाहा ! प्रभु ! यह तो वस्तु में है नहीं परन्तु वे ज्ञेय हैं - ऐसा भी वस्तु में नहीं। समझ में आया ? आहा ! ऐसी चीज़ है। फिर निकाल दे लोग ऐसा कहकर कि यह तो निश्चय से की बात, यह तो निश्चय की बात है। निश्चय अर्थात् सत्य - परम सत्य का स्वरूप वह यह है। समझ में आया ? मेरा नाम ज्ञान; मैं आप द्वारा जाननेयोग्य हूँ; पर द्वारा जाननेयोग्य हूँ - ऐसा नहीं। आहाहा ! मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे द्वारा जाननेयोग्य है। आहाहा ! समझ में आया ? इसलिए मेरा नाम ज्ञेय। लो ! मेरा नाम ज्ञेय, परज्ञेय नहीं। नये लोगों को ऐसा कठिन लगता है कि यह क्या कहते हैं ? यह क्या है ? बापू ! वीतराग का मार्ग-मार्ग तो यह है। भाई ! उसमें पर का कोई अवकाश नहीं है।

मुमुक्षु : तथापि एक का एक कहा करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक का एक कहा करते हैं और वह स्थापना किया करते हैं वापस, आहाहा ! भाई ! सत्य तो यह है, यह सत्य का स्थापन है। समझ में आया ?

मैं जाननेयोग्य हूँ तो मैं ज्ञेय, मैं जाननेवाला तो मैं ज्ञान। आहाहा! **यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ,...** ऐसी दो शक्ति तो है – ज्ञेय भी मैं और ज्ञान भी मैं। ये दो तो शक्ति है। दो शक्ति से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, **इसलिए मेरा नाम ज्ञाता।** है। आहाहा! **दो शक्ति से लेकर...** ज्ञानशक्ति और ज्ञेयशक्ति भी मैं, और दो शक्ति से लेकर अनन्त शक्तिरूप ज्ञाता भी मैं। आहाहा! ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं। तीनों अपनी वस्तु – चीज़ एक है। आहाहा! **ऐसा नामभेद है,...** अब क्या कहते हैं कि अपने जाननेयोग्य ज्ञेय मैं, जाननेवाला ज्ञान मैं और अनन्त शक्ति ज्ञाता–ऐसे तीन का नाम भेद है। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं... ज्ञेय कोई अलग चीज़ है – ऐसा नहीं। अपनी चीज़ अपना ज्ञेय, ज्ञान अलग चीज़ है और ज्ञाता अलग है – ऐसा नहीं। वह का वह ज्ञेय, वह का वह ज्ञान और वह का वह ज्ञाता.. आहाहा! समझ में आया? वस्तु की स्वतन्त्रता की परिपूर्णता की यह पराकाष्ठा है। आहाहा!

कोई निन्दा करे तो निन्दा, वह तो शब्द है और कोई तेरी प्रशंसा करे कि तू बड़ा और ऐसा और वैसा, तो वह तो जड़ की पर्याय है, वह तेरी प्रशंसा नहीं परन्तु वह तेरा ज्ञेय भी नहीं। आहाहा! वह प्रशंसा ज्ञेय और मैं ज्ञायक – ऐसा है ही नहीं तो मेरी प्रशंसा करते हैं और यह मेरी निन्दा करते हैं – ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नहीं। **कैसा हूँ? 'ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्' जीव ज्ञायक हैं, जीव ज्ञेयरूप है...** स्वयं ज्ञेयरूप स्वयं ज्ञान और स्वयं ज्ञाता। आहाहा! **ऐसा जो वचनभेद...** वचनभेद से भेद दिखता है। आहाहा! अपना ज्ञेय, अपना ज्ञान और अपना ज्ञाता, यह वचनभेद से तीन भेद है। आहाहा! वस्तु तो है वह है। ज्ञेय भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञाता भी मैं; तीनों एक ही वस्तु (है), उसमें तीन वस्तु नहीं। आहाहा! परवस्तु तो नहीं परन्तु इस वस्तु में तीन भेद भी नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! शान्तिभाई! कभी सुना नहीं होगा इतने वर्षों में! यह मार्ग है। गजब बात है! समयसार में यह बात अलौकिक–लोकोत्तर बात है। वहाँ कहा कि पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक – ऐसा तो नहीं। पर मेरा और मैं उसका, यह तो है ही नहीं परन्तु पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक – ऐसा है नहीं और मैं ज्ञेय, और ज्ञायक तथा ज्ञाता, यह भी भेद नहीं। आहाहा!

मैं ज्ञेय हूँ और यह ज्ञान है और यह ज्ञाता है – ऐसा भेद पड़ता है, वह भी विकल्प

है। गजब बात है। बाहर के विवाद-जयनारायण! जयनारायण! - व्यवहार करते-करते निश्चय होगा तो कहता है - प्रमाण है। आहाहा! ए.. पोपटभाई! ये सेठिया भी ऐसा करते थे। अन्दर कुछ भान नहीं हो तो क्या करे? यह पता नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं ज्ञेय और मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता, यह वचनभेद है। आहाहा! पर ज्ञेय और मैं ज्ञायक, यह तो वस्तु में है नहीं। यह वस्तु में है नहीं परन्तु वस्तु में ये तीन भेद हैं, वे नामभेद हैं। आहाहा! दृष्टि के विषय में तीन भेद भी नहीं। मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान, मैं ज्ञाता - ये तीन नहीं। आहाहा! जोरदार वस्तु है। लोगों को लगता है बेचारों को, ख्याल नहीं होता न, इसलिए उन्हें ऐसा लगता है। अपने को ख्याल नहीं आता, इसलिए विरोध करते हैं। यह वस्तु की स्थिति है, ऐसी ख्याल में नहीं आती है तो दूसरे प्रकार से दूसरा कहते हैं, उसकी धारणा से तो विरोध करते हैं। प्रभु! यह विरोध तेरा है, नाथ! आहाहा! दूसरे का कौन विरोध करे? दूसरी चीज़ में कहाँ तेरा विरोध जाता है कि विरोध करे। आहाहा!

प्रभु! यह तेरी चीज़ है न? तुम ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान। आहाहा! जीव ज्ञेयरूप है, जीव ज्ञायक है और जीव ज्ञान है, यह कल्लोल वचनभेद है, यह तो कल्लोल है। आहाहा! यह तो वचन के कल्लोल-भेद है; वस्तु में है नहीं। **उससे भेद को प्राप्त होता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है।** आहाहा! गजब बात है। यह ज्ञेय मैं, ज्ञान मैं और ज्ञाता मैं - यह वचनभेद है। व्यवहार के कथनमात्र हैं। आहाहा! वस्तु तो वस्तु है। लो, यह श्लोक पूरा हो गया।

एकावतारी हो गए,

ज्ञान के बिना चाहे जितना राग कम करे अथवा त्याग करें, किन्तु यथार्थ समझ के बिना उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा और वह मुक्तिमार्ग की ओर कदापि नहीं जा सकेगा परन्तु वह विकार और जड़ की क्रिया में कर्तृत्व का अहंकार करके तत्त्व की विराधना से संसारमार्ग में और दुर्गति में फँसता चला जाएगा। यथार्थ ज्ञान के बिना किसी भी प्रकार आत्मा की मुक्तदशा का मार्ग हाथ नहीं आता। **जिन्होंने आत्मभान किया है, वे त्याग अथवा व्रत किए बिना भी एकावतारी हो गए, जैसे कि राजा श्रेणिक।**

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

नोट : श्रीमद् भगवत् अमृतचन्द्रसूरिकृत श्री समयसार शास्त्र की आत्मख्याति टीका पर परम पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के अठारहवीं बार हुए प्रवचनों में से कलश २७१ का प्रवचन (प्रवचन रत्नाकर, भाग-११ में से)

कलश-२७१

ज्ञानमात्र भाव स्वयं ही ज्ञान है, स्वयं ही अपना ज्ञेय है और स्वयं ही अपना ज्ञाता है—इस अर्थ का काव्य कहते हैं :—

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ॥२७१ ॥

श्लोकार्थ :— [यः अयं ज्ञानमात्रः भावः अहम् अस्मि सः ज्ञेय-ज्ञानमात्रः एव न ज्ञेयः] जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिये; **[ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गन्]** (परन्तु) ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह **[ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्-वस्तुमात्रः ज्ञेयः]** ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये। (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता—इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए)।

भावार्थ :— ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है, परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जानने

योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीनों भावों से युक्त सामान्यविशेषस्वरूप वस्तु है। 'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'—इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है ॥२७१ ॥

गाथा - २७१ श्लोकार्थ पर प्रवचन

'यः अयं ज्ञानमात्रः भावः अहम् अस्मि सः ज्ञेय-ज्ञानमात्रः एव न ज्ञेयः' जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र ही नहीं जानना चाहिये;...

देखो, क्या कहते हैं ? जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह छह द्रव्यों के जाननेमात्र ही नहीं जानना। क्या कहा ? लोक में जितने द्रव्य हैं—अनन्त सिद्ध और अनन्त निगोद के जीवों सहित जीव, अनन्तानन्त पुद्‌गल-देह, मन, वाणी, कर्म इत्यादि और धर्म-अधर्म, आकाश, काल - ऐसे छह द्रव्य, उनके द्रव्य-गुण-पर्याय, वे मेरे ज्ञेय और मैं उनका ज्ञायक, ऐसा, कहते हैं नहीं जानना। अब उनका कर्तापना तो कहीं गया, यहाँ तो कहते हैं, उनके (छह द्रव्यों के) जाननेमात्र मैं हूँ - ऐसा नहीं जानना। गजब बात हैं, भाई! परद्रव्यों के साथ ज्ञेय-ज्ञायकपने का सम्बन्ध भी निश्चय से नहीं है, व्यवहारमात्र ऐसा सम्बन्ध है। समझ में आया ? जैन तत्त्वज्ञान बहुत सूक्ष्म है, भाई! यह व्यवहाररत्नत्रय का राग होता है न, धर्मात्मा को ? यहाँ कहते हैं - भगवान आत्मा ज्ञायक और व्यवहाररत्नत्रय का राग उसका ज्ञेय-ऐसा वास्तव में नहीं है। बारहवीं गाथा में व्यवहार 'जाना हुआ' प्रयोजनवान कहा, वह तो व्यवहार से बात है। निश्चय से तो स्व-पर को प्रकाशित करनेवाली अपनी ज्ञान की दशा ही अपना ज्ञेय है। रागादि परवस्तु-परद्रव्यों को उसका ज्ञेय कहना, वह व्यवहार से है; निश्चय से पर के साथ इसे ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध भी नहीं है। अब पर के साथ इसे मेरेपने का-स्वामीत्व का और कर्तापने का सम्बन्ध होने की बात तो कहीं उड़ गयी। समझ में आया ?

आहाहा! कहते हैं - जो यह ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ, वह ज्ञेयों के ज्ञानमात्र नहीं जानना। तो किस प्रकार है ? तो कहते हैं- **[ज्ञेय-ज्ञान-कल्लोल-वल्गन्] (परन्तु) ज्ञेयों के**

आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ वह [ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृमत्-वस्तुमात्रः ज्ञेयः] ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तुमात्र जानना चाहिये। (अर्थात् स्वयं ही ज्ञान, स्वयं ही ज्ञेय और स्वयं ही ज्ञाता—इस प्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप तीनों भावयुक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए)।

ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान की कल्लोलों के रूप में परिणमित होता हुआ.. यह व्यवहार से कहा है, हों! वास्तव में तो ज्ञेयों का-छह द्रव्य का जैसा स्वरूप है, उसे जानने के विशेषरूप परिणमित होना, वह ज्ञान की अपनी दशा है और वह ज्ञान के स्वयं के सामर्थ्य से है। **ज्ञेयों के आकार से होनेवाले ज्ञान..** यह तो कहनेमात्र है, बाकी ज्ञान, ज्ञानाकार ही है; ज्ञेयाकार है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय और मेरे द्रव्य-गुण (द्रव्य-गुण-पर्याय) तीनों होकर मैं ज्ञेय हूँ, ज्ञान हूँ, ज्ञाता हूँ, और ज्ञेय यह लोकालोक-ऐसा किसने कहा? परमार्थ से ऐसा है नहीं; ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा! धर्मी के अन्तर की खुमारी तो देखो! कहते हैं-जगत में मैं एक ही हूँ, जगत में दूसरी चीज़ें हों तो हों, परमार्थ से उनके साथ मुझे जानने का भी सम्बन्ध है नहीं। ऐसी बात! समझ में आया?

आहाहा! यहाँ क्या कहते हैं? कि परज्ञेय (परपदार्थ, देव-शास्त्र-गुरु, पंच परमेष्ठी और व्यवहाररत्नत्रय आदि ज्ञेय), मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसा सम्बन्ध होना तो दूर रहो; मैं ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसे तीन भेदरूप भी मैं नहीं। ये तीनों ही मैं एक हूँ। देखो, यह स्वानुभव की दशा! ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय ऐसे भेद से भेदरूप नहीं होता - ऐसा अभेद चिन्मात्र मैं आत्मा हूँ। मैं ज्ञेय हूँ, मैं ज्ञान हूँ, मैं ज्ञाता हूँ - ऐसे तीन भेद उत्पन्न होते हैं, वह तो राग-विकल्प है परन्तु वस्तु और वस्तु की दृष्टि में ऐसे भेद हैं नहीं, सब अभेद एक है।

भाई! तुझमें तेरा अस्तित्व कितना है, उसका तुझे पता नहीं। तीन लोक के द्रव्य - द्रव्य-गुण-पर्यायें त्रिकालवर्ती जो अनन्तानन्त हैं, उन सबको जाननेवाली तेरी ज्ञान की दशा, वह वास्तव में तेरा ज्ञेय है। वह दशा अकेली नहीं, परन्तु तेरे द्रव्य-गुण-पर्याय, वह सब ज्ञेय है। आहाहा! उन समस्त का (स्वयं का) ज्ञान वह ज्ञान; वह समस्त (स्वयं) ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता - ये तीनों ही वस्तु एक की एक है, तीन भेद नहीं। ऐसी सूक्ष्म बात! ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय तीनों भावसहित वस्तुमात्र स्वयं एक है।

कलश २७१ : भावार्थ पर प्रवचन

आहाहा! बहुत सरस भावार्थ है; वस्तु के मर्म का मक्खन है। कहते हैं - अपने द्रव्य पर दृष्टि देने से स्वयं ही ज्ञाता, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञेय है - ऐसा अनुभव में आता है। छह द्रव्य ज्ञेय, मैं ज्ञान और मैं ज्ञाता - ऐसा अनुभव नहीं होता क्योंकि परमार्थ से पर के साथ ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है ही नहीं। ऐसी बात!

कहते हैं **ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है।**

देखो, क्या कहा? कि जगत के ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेरूप जाननक्रिया, वह ज्ञानस्वरूप है, ज्ञेयस्वरूप नहीं। ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, वह वास्तव में छह द्रव्य ज्ञात नहीं होते परन्तु छह द्रव्य सम्बन्धी अपना जो ज्ञान, वह ज्ञात होता है और वह वास्तव में आत्मा का ज्ञेय है। परद्रव्य ज्ञात होते हैं-ऐसा कहना, वह तो व्यवहार है। ज्ञेय सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय जाननेरूप हुई, वह उसका ज्ञेय है, वह (परज्ञेय) नहीं, क्योंकि अपने में अपनी ज्ञानपर्याय का अस्तित्व है, (पर का नहीं)। आहाहा! छह द्रव्य को जानने की ज्ञान की पर्याय अपनी है, उसे छह द्रव्य का ज्ञान कहना, वह व्यवहार है; ज्ञेय-ज्ञान, ज्ञेय का नहीं परन्तु ज्ञान का ज्ञान है, जाननक्रियारूप भाव ज्ञानस्वरूप है। पण्डित जयचन्दजी यही स्पष्ट करते हैं।

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। बाह्य ज्ञेय, ज्ञान से भिन्न है, वे ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते; ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर, ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है, परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।

आहाहा! देखो, बाह्य ज्ञेय-रागादि से लेकर छहों द्रव्य अपने आत्मा से (अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से) भिन्न हैं। यदि वे भिन्न न हों तो एक हों, परन्तु ऐसा कभी नहीं होता, है नहीं।

राग का ज्ञान हो, उसमें कहीं राग, ज्ञान की पर्याय में आता नहीं। केवली को लोकालोक का ज्ञान हुआ तो लोकालोक कहीं ज्ञान में प्रवेश नहीं कर गया। घट का जाननेवाला घटरूप नहीं होता तथा घट का जाननेवाला वास्तव में घट को जानता है-ऐसा

नहीं है। स्व-पर को जानने के ज्ञानरूप स्वयं आत्मा ही होता है, घट को जानने के ज्ञानरूप आत्मा होता है; इसलिए घट का ज्ञान नहीं, परन्तु आत्मा का ही ज्ञान है। अपने में तो अपने ही ज्ञान परिणाम का अस्तित्व है, ज्ञेय का नहीं। आत्मा का 'ज्ञ' स्वभाव है और 'ज्ञ' स्वभावी आत्मा में जाननक्रिया हो, वह स्वयं से होती होने से स्वयं की क्रिया है, उसमें परज्ञेय का कुछ है ही नहीं। इस प्रकार ज्ञेयसम्बन्धी अपने ज्ञान का जो परिणमन हुआ, वह ज्ञेय स्वयं, ज्ञान स्वयं ही और स्वयं ही ज्ञाता है। समझ में आया?

ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में आने पर, ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है, परन्तु यह ज्ञान की ही कल्लोलें हैं। देखो, ज्ञान ज्ञेयाकार है-ऐसा नहीं, वह तो ज्ञेय को जानने के प्रति वैसे ज्ञानाकार से ज्ञान स्वयं ही हुआ है, उसमें ज्ञेय का कुछ है ही नहीं। ज्ञेय, ज्ञान में प्रविष्ट है, ऐसा है ही नहीं; अर्थात् ज्ञान, ज्ञेयरूप होता है - ऐसा है ही नहीं। ज्ञान, ज्ञानाकार ही है, ये ज्ञान की ही कल्लोलें हैं।

आहाहा! कैसा भेदज्ञान कराया है! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! जरा धीर होकर सुन। कहते हैं-आत्मा, पर को करे या पर से आत्मा में कुछ हो, यह बात तो जाने दे, यह बात तो है नहीं परन्तु पर ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं, ज्ञान पर को जानता है और परज्ञेय ज्ञान की पर्याय में आते हैं, प्रविष्ट होते हैं - ऐसा भी नहीं है। वस्तु-द्रव्य एक ज्ञायकभावरूप है, वह स्वयं ज्ञान की पर्यायरूप, जाननक्रियारूप होता है, वह अपनी स्व-पर प्रकाशक की क्रिया है। उसमें पर ज्ञात होते हैं - ऐसा कहना, वह व्यवहार है, बस! पर ज्ञात नहीं होता, अपनी जाननक्रिया जाननेरूप है, वह ज्ञात होती है भगवान! तू इतना और ऐसा ही है। दूसरे प्रकार से मानेगा तो तेरे स्वभाव का घात होगा। सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं-लोकालोक ज्ञात हो, इतनी तेरी पर्याय नहीं; तेरी ज्ञानपर्याय को तू जान - ऐसा तेरा स्वरूप है। लोकालोक को जानना - ऐसा कहना, वह तो असद्भूत व्यवहार है, झूठा व्यवहार है।

तो सच्चा व्यवहार क्या है?

यह; स्वयं जानन-जानने के भाववाला तत्त्व होने से लोकालोक के जितने ज्ञेय हैं, उन्हें और अपने को जानने की क्रियारूप अपने में (अपने अस्तित्व में) अपने कारण परिणमता है। वास्तव में तो यह ज्ञान की पर्याय, वह ज्ञेय है। ज्ञान की पर्याय का पर (पदार्थ) ज्ञेय है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है। ऐसी बात है।

ज्ञेयों के आकार अर्थात् ज्ञेयों के विशेष-उनकी ज्ञान में झलक आती है, अर्थात् उन सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में, अपने से परिणमित होता है। वह ज्ञान, ज्ञेयाकार दिखता है - ऐसा कहा परन्तु वह ज्ञेयाकार हुआ नहीं, वह तो ज्ञानाकार-ज्ञान की ही तरंगें हैं। आहाहा! जानन... जानन... जानन अपना स्वभाव है, उसमें परवस्तु का-परज्ञेय का प्रवेश नहीं, तथापि उसका जानना यहाँ (अपने में) होता है, वह वास्तव में उसका (परज्ञेय का) जानना नहीं है; जानने की अपनी दशा है, उसका जानना है। यह तो न्याय से बात है, इसे समझना तो पड़ेगा न! कोई समझा थोड़े ही देगा?

देखो, दर्पण के दृष्टान्त से इस बात को समझते हैं—

जैसे दर्पण के सामने कोयला, अग्नि इत्यादि रखे हों वे दर्पण में दिखायी देते हैं परन्तु वे दर्पण से भिन्न चीज हैं न? दर्पण में तो उन पदार्थों की झलक दिखायी देती है, परन्तु क्या कोयला और अग्नि इत्यादि दर्पण में हैं? दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता का अस्तित्व है। यदि अग्नि इत्यादि उसमें प्रविष्ट हों तो दर्पण अग्निमय हो जाये, उसे हाथ लगाने से हाथ जल जाये, परन्तु ऐसा है नहीं। दर्पण, दर्पण की स्वच्छता के परिणाम से स्वयं ही स्वयं से परिणमित हुआ है; कोयला या अग्नि का उसमें कुछ है ही नहीं। समझ में आया?

यह क्या कहा? लो! फिर से। एक ओर दर्पण है, उसके सामने एक ओर अग्नि और बर्फ है। अग्नि, अग्नि में लवक-झवक होती है। और बर्फ बर्फ में पिघलता जाता है, उस समय दर्पण में भी बस ऐसा ही दिखता है तो क्या दर्पण में अग्नि और बर्फ है? नहीं; अग्नि और बर्फ का होना तो बाहर अपने-अपने में है, दर्पण में उनका होनापना (अस्तित्व) नहीं है। वे दर्पण में प्रविष्ट नहीं हैं। दर्पण में तो दर्पण की उसरूप स्वच्छ दशा हुई है, वह है। अग्नि और बर्फ सम्बन्धी दर्पण की स्वच्छता की दशा, वह दर्पण का स्वयं का परिणमन है अग्नि और बर्फ का उसमें कुछ है ही नहीं; अग्नि और बर्फ ने उसमें कुछ किया ही नहीं, वे तो भिन्न पदार्थ हैं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा स्वच्छ चैतन्य दर्पण है, उसके ज्ञान में ज्ञेयों के आकार की झलक आने पर, ज्ञान ज्ञेयाकार दिखता है। सामने जैसे ज्ञेय हैं, उसी प्रकार की विशेषतारूप अपनी ज्ञान की दशा होने पर, मानो कि ज्ञान, ज्ञेयाकार हो गया हो, ऐसा

दिखता है परन्तु ज्ञान, ज्ञेयाकार हुआ ही नहीं, ज्ञानाकार है; अर्थात् वे ज्ञेय की कल्लोलें नहीं, परन्तु ज्ञान की ही कल्लोलें हैं, ज्ञान की ही दशा है; ज्ञेयों का उसमें कुछ है ही नहीं। समझ में आया?

आहा! ऐसी अपनी अस्तित्व की महिमा जाने बिना, भाई! तू दया, दान, व्रत, तप कर-करके सूख जाये तो भी लेश भी धर्म नहीं होगा। अपने स्वरूप के माहात्म्य बिना धर्म की क्रिया कभी नहीं हो सकती।

छोटी उम्र की बात है, पालेज में पिताजी की दुकान थी, वह बन्द करके रात्रि में महाराज उपाश्रय में आये हों, वहाँ उनके पास जाते थे। वहाँ महाराज गाते -

'भूधरजी तमने भूल्यो रे भटकूँ छूँ भववन मां
कुतरा न भव मां में बीणी खादा कटका, त्यां भूख न वेठया भड़का रे'

अब इसमें तत्त्व का कुछ पता नहीं, परन्तु सुनकर उस समय प्रसन्न-प्रसन्न हो जाते थे। लोक में भी सर्वत्र ऐसा ही चल रहा है न! स्वयं कौन और कैसा है, इसका पता नहीं होता परन्तु व्रत, तप, भक्ति, पूजा आदि करने लगे; ऐसा कि इनसे धर्म होगा, परन्तु धूल में भी धर्म नहीं होता। स्वयं कौन है, इसकी पहिचान बिना धर्म किसमें होगा? बापू! मैं ज्ञानस्वभाव हूँ-ऐसा भूलकर राग के कर्तापने में लगा रहे, वह तो पागलपन है। पूरी दुनिया ऐसी पागल है। समझ में आया?

आहाहा! यहाँ कहते हैं **वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं**। अपने अस्तित्व में दया, दान आदि के भाव या शरीर, मन, वाणी इत्यादि परज्ञेयों का प्रवेश नहीं; वे तो भिन्न-पर हैं; इसलिए जानने की क्रिया भी ज्ञान द्वारा, आत्मा द्वारा ज्ञात होती है। दया के परिणाम हों, उन्हें जाननेवाली क्रिया आत्मा की है और वह उसका ज्ञेय है। परन्तु दया के परिणाम परमार्थ से आत्मा के नहीं और परमार्थ से वे आत्मा का ज्ञेय नहीं।

अब किसी को लगे कि यह तो कैसा धर्म? भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी देना, नंगे को कपड़े देना और बीमार की सेवा करना - ऐसी कोई बात तो समझ में आवे। अरे भाई! ये तो सब राग की क्रियायें हैं, बापू! उस काल में जड़ की क्रिया तो जड़ में होनेयोग्य हुई, वह क्रिया तेरी नहीं और राग की क्रिया भी तेरी नहीं। अरे! उस काल में राग

का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान, राग का नहीं; राग उसमें प्रविष्ट नहीं, जानने की क्रिया तेरे अस्तित्व में हुई है, वह तेरी है और वह वस्तुत: तेरा ज्ञेय है, रागादि परमार्थ से तेरे ज्ञेय नहीं हैं। समझ में आया?

अज्ञानी जीवों को इतना सब (दया, दान आदि को) उल्लंघ कर यहाँ (ज्ञानभाव में) आना बड़े मेरुपर्वत उठाने जैसा लगता है परन्तु इसमें तेरा हित है, भाई!

अब कहते हैं **इस प्रकार स्वयं ही स्वत: जानने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-इन तीनों भावों से युक्त सामान्यविशेषस्वरूप वस्तु है।**

देखो, इस सबका सार कहा। ज्ञात होनेयोग्य परपदार्थ, पर में रहे हैं, और जाननेवाला, जाननेवाले में रहा है। जाननेवाला स्वयं ज्ञानरूप होता हुआ स्वयं को जानता है; इस प्रकार आत्मा स्वयं ही ज्ञात होने योग्य है; ज्ञानमात्र भाव ही अपना ज्ञेय है; परपदार्थ को ज्ञेय कहना, वह व्यवहार है, बस!

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। आहाहा! पर के साथ परमार्थ से आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। जो ज्ञात होती है, वह भी अपनी दशा, जाननेवाला भी स्वयं और ज्ञान भी स्वयं ही। आहाहा! ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय तीनों ही एकरूप। अन्तर में दृष्टि देने पर ऐसे तीन भेद आत्मा के हैं - ऐसा नहीं रहता। परवस्तु ज्ञेय और स्वयं ज्ञाता, यह तो कहीं रह गया। स्वयं ही ज्ञेय, स्वयं ही ज्ञान और स्वयं ही ज्ञाता - ऐसे तीन भेद भी अन्तर्दृष्टि में समाहित नहीं होते; सब अभेद एकरूप अनुभव में आता है। लो, इसका नाम धर्म है; जिसमें सामान्य-विशेष का अभेदपना प्राप्त / सिद्ध हुआ, वह धर्म है।

आहाहा! '**ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ**'—ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है कि ज्ञान भी मैं हूँ, ज्ञेय भी मैं हूँ, ज्ञाता भी मैं हूँ—ऐसे तीनों ही एक मैं—ऐसा जो ज्ञानमात्र भाव, वह मैं हूँ - ऐसा अनुभव करनेवाला पुरुष स्वयं को इस प्रकार अनुभव करता है। ऐसा अनुभव होना वह धर्म है। 'अनुभव' अनु अर्थात् अनुसरण कर, भव अर्थात् भवन होना; आत्मा को / ज्ञानमात्र वस्तु को अनुसरणकर होना, वह अनुभव है और वह धर्म

है। इसके अतिरिक्त राग को अनुसरण कर होनेरूप जो अनेक क्रियायें हैं, वे सब संसार हैं, वे सब रण में शोर मचाने जैसा है।

आहाहा! अनुभव करनेवाला पुरुष ऐसा अनुभव करता है कि जाननेवाला भी मैं, ज्ञान भी मैं और ज्ञात होने योग्य ज्ञेय भी मैं ही हूँ। इन तीनों के अभेद की दृष्टि होने पर उसे स्वानुभव प्रगट हुआ है और उसमें उसे अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद का वेदन प्रगट हुआ होता है। इसे समकित और धर्म कहते हैं। समझ में आया?

देखो, यहाँ सामान्य-विशेष दोनों साथ लिये हैं, क्योंकि प्रमाणज्ञान कराना है। प्रमाणज्ञान में वस्तु त्रिकाली सत्, उसकी शक्तियाँ त्रिकाली सत् और उसकी वर्तमान पर्याय, ये तीनों होकर वस्तु / आत्मा कहा है। उसमें शरीर, मन, वाणी, कर्म और विकार इत्यादि नहीं आते हैं।

सम्यग्ज्ञान ही मुक्ति का सरल मार्ग

आत्मा के स्वभाव को समझने का मार्ग सीधा और सरल है। यदि यथार्थ मार्ग को जानकर उस पर धीरे-धीरे चलने लगे तो पंथ कटने लगे, परन्तु यदि मार्ग को जाने बिना ही आँखों पर पट्टी बाँधकर तेली के बैल की तरह चाहे जितना चलता रहे तो भी वह घूम-घामकर वहीं का वहीं बना रहेगा; इसी प्रकार स्वभाव का सरल मार्ग है, उसे जाने बिना, ज्ञाननेत्रों को बन्द करके चाहे जितना, उल्टा-टेढ़ा करता रहे और यह माने कि मैंने बहुत कुछ किया है; परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि भाई! तूने कुछ नहीं किया, तू संसार में ही स्थित है, तू किञ्चित्मात्र भी आगे नहीं बढ़ा सका। **तूने अपने निर्विकार ज्ञानस्वरूप को नहीं जाना; इसलिए तू अपनी गाड़ी दौड़ाकर अधिक से अधिक अशुभ में से खींचकर शुभ में ले जाता है और उसी को धर्म मान लेता है,** परन्तु इससे तो तू घूम-घामकर पुनः वहीं का वहीं विकार में ही खड़ा रहा है। विकार-चक्र में चक्कर लगाया परन्तु विकार से छूटकर ज्ञान में नहीं आया तो तूने क्या किया? कुछ भी नहीं।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

परिशिष्ट

इस हुण्डावसर्पिणी के पंचम काल में जो जीव आत्म आराधना करते हैं, उसका कैसा फल मिलता है, इस सम्बन्धी कितने ही सन्दर्भ नीचे दिये गये हैं।

◆ श्री समयसारजी शास्त्र, कलश २४० तथा श्लोकार्थ -

(शार्दूलविक्रीडित)

एको मोक्षपथो य एष नियतो दृग्ज्ञप्तिवृत्त्यात्मक-
स्तत्रैव स्थितिमेति यस्तमनिशं ध्यायेच्च तं चेतति।
तस्मिन्नेव निरंतरं विहरति द्रव्यांतराण्यस्पृशन्
सोऽवश्यं समयस्य सारमचिरान्नित्योदयं विंदति॥२४०॥

श्लोकार्थ - दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप जो यह एक नियत मोक्षमार्ग है, उसी में जो पुरुष स्थिति प्राप्त करता है अर्थात् स्थित रहता है, उसी का निरन्तर ध्यान करता है, उसी को चेतता है—उसी का अनुभव करता है, और अन्य द्रव्यों को स्पर्श न करता हुआ उसी में निरन्तर विहार करता है वह पुरुष, जिसका उदय नित्य रहता है - ऐसे समय के सार को (अर्थात् परमात्मा के रूप को) अल्प काल में ही अवश्य प्राप्त करता है अर्थात् उसका अनुभव करता है।

भावार्थ - निश्चयमोक्षमार्ग के सेवन से अल्प काल में ही मोक्ष की प्राप्ति होती है, यह नियम है।

◆ परमाध्यात्मतरंगिणी में सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार के श्लोक ४७ (समयसार शास्त्र के धारावाही श्लोक क्रमांक २४० की संस्कृत टीका में **अचिरात** शब्द का अर्थ करते हुए लिखा है कि *शीघ्रं तदभवे-तृतीयमवादी वा अवश्य नियमतः* (पृष्ठ १६३)

◆ आत्मधर्म मार्च १९९५ के अंक में पृष्ठ ८ पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन में इस प्रकार उल्लेख है - परमाध्यात्म तरंगिणी में पाठ है कि इस काल में साधक मोक्ष नहीं पाता

परन्तु वह तीन भव में मुक्ति पायेगा। क्या कहा... ? कि जिसने इस भव में आत्मा का साधन किया है, वह तीसरे भव में मोक्ष में जायेगा – ऐसा शास्त्र में संस्कृत में श्लोक है। श्लोक में अचिरात शब्द है, उसका अर्थ यह है कि उसी भव में भले मोक्ष न पाये परन्तु तीसरे भव में उस जीव का मोक्ष होता है। ऐसे काल में भी आत्मा की साधना कर रहा है, वह साधना करनेवाला तीसरे भव में मोक्ष पा जाता है। पंचम काल में मोक्ष नहीं है, इसलिए साधना ही नहीं करना – ऐसा नहीं है। (बहिनश्री के वचनामृत बोल नं. ११ पर दिनांक ८-८-१९८० के प्रवचन की टेप में से)

◆ पूज्य गुरुदेवश्री, प्रवचन नवनीत भाग २, पृष्ठ १७९ में उनके दिनांक १८-२-७८ के प्रवचन में कहते हैं कि – समयसार कलश २४० में है न...! 'एको मोक्षपथो' – मोक्षपंथ एक ही है। अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान पूर्णानन्द में एकाग्र होना, वह एक ही मोक्षपंथ है, उससे अल्पकाल में (मुक्ति को प्राप्त करता है।) उसकी जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है कि – कारण कि यह पंचम काल है, इसलिए उसे तीसरे भव में मुक्ति होती ही है।

◆ गोम्मटसार शास्त्र के सारभूत भव्यामृत शतक अथवा श्री नेमिश्वर वचनामृत शतक मूल कन्नड़ भाषा में रचित है। उसमें रचित १०८ पद द्वारा भव्य जीवों को अध्यात्मरस का अमृत पिलाया गया है। अष्टोतरशत् (१०८) पद वाली इस रचना में प्रतिपाद्य वस्तु उत्कृष्ट सार में सार आत्मतत्त्व है। उसे जो जानेगा, मानेगा, वह तीसरे भव में अथवा अधिक से अधिक आठ भव में मोक्ष को पायेगा – ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। उसका हिन्दी में रूपान्तर पाठ निम्नानुसार है –

अष्टोतरपदवाले इसमें सारात् सार आतमरूप है
जाने-माने मुक्त सो होगा तीन जन्म में या आठों में। [१०९]

◆ श्री समयसारजी शास्त्र के कलश २४० पर पूज्य गुरुदेवश्री के १९ वीं बार के दिनांक ०९-०९-१९८० के प्रवचन में कहा है कि अचिरात अर्थात् शीघ्र केवलज्ञान को पायेगा। इससे कहीं पर्याय की क्रमबद्धता टूट नहीं जाती। वे फरमाते हैं कि निश्चयमोक्षमार्ग के सेवन से अल्प काल में ही केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। कारणसमयसार के सेवन से

अल्प काल में ही अवश्य पूर्ण अनुभव मोक्ष प्राप्त हो जाता है। अल्प काल में प्राप्त होता है तो क्रमबद्ध कहाँ गया? अचिरात कहा न तो उसका अर्थ यह है कि जिसने द्रव्यदृष्टि की, समय-समय की क्रमबद्धपर्याय में ऐसे पुरुष को क्रमबद्ध में केवलज्ञान होगा। त्रिकाली तत्त्व क्या है, उस सम्बन्धी जो नित्य उदयरूप समय के सार का निरन्तर ध्यान करता है, उसे अल्प काल में ही मोक्षपद की-निज परमात्मपद की क्रमबद्धपर्याय में क्रमबद्ध में प्राप्ति होती है। निजस्वभाव में जो रमेगा, वह अल्प काल में मोक्ष प्राप्त करेगा - ऐसा नियम है-निश्चय है।

विकार का नाशक है ज्ञान

ज्ञान में विकार ज्ञात होता है, वह तो ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य ही ऐसी विकसित हुई है — ऐसा कहकर ज्ञान और विकार के बीच भेद किया है; उसके बदले कोई यह मान बैठे कि — 'भले विकार हुआ करे, आखिर वह है तो ज्ञान का ज्ञेय ही न?' तो समझना चाहिए कि वह ज्ञान के स्वरूप को ही नहीं जानता। भाई! जिसके पुरुषार्थ का प्रवाह ज्ञान के प्रति बह रहा है, उसके पुरुषार्थ का प्रवाह विकार की ओर से रुक जाता है और उसके प्रतिक्षण विकार का नाश होताा रहता है। साधकदशा में जो-जो विकारभाव उत्पन्न होते हैं, वे ज्ञान में ज्ञात होकर छूट जाते हैं — परन्तु रहते नहीं। इस प्रकार क्रमबद्ध प्रत्येक पर्याय में ज्ञान का झुकाव स्वभाव की ओर होता जाता है और विकार से छूटता जाता है। 'विकार भले हो' —यह भावना मिथ्यादृष्टि की ही है। ज्ञानी तो जानता है कि कोई विकार मेरा नहीं है; इसलिए वह ज्ञान की ही भावना करता है और इसीलिए विकार की ओर से उसका पुरुषार्थ हट गया है। ज्ञान के अस्ति में विकार का नास्ति है।

पहले रागादिक पहचाने नहीं जाते थे और अब ज्ञान, सूक्ष्म रागादि को भी जान लेता है; क्योंकि ज्ञान की सामर्थ्य विकसित हो गई है। ज्ञान सूक्ष्म विकल्प को भी बन्धभाव के रूप में जान लेता है। राग की सामर्थ्य नहीं; किन्तु ज्ञान की ही सामर्थ्य है। ऐसे स्वाश्रय ज्ञान की पहिचान, रुचि, श्रद्धा और स्थिरता के अतिरिक्त अन्य सब उपाय आत्महित के लिये व्यर्थ हैं। अहो! अपने परिपूर्ण स्वाधीन स्वतत्त्व की शक्ति की प्रतीति के बिना जीव अपनी स्वाधीन दशा कहाँ से लायेगा? निज की प्रतीतिवाला निज की ओर झुकेगा और मुक्ति प्राप्त करेगा; जिसे निज की प्रतीति नहीं है, वह विकार की ओर झुकेगा और संसार में परिभ्रमण करेगा। —पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी